श्री लालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला पुष्प ६५

लघुपाराशरी-समीक्षा

(मूल आधार से विकास तक के
सन्दर्भ में एक समग्र परिशीलन)

शोध एवं लेखन
प्रो० शुकदेव चतुर्वेदी
विभागाध्यक्ष
ज्योतिषशास्त्र विभाग

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
(मानितविश्वविद्यालयः)
नवदेहली-११००१६

श्री लालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला पुष्प ६५

लघुपाराशरी-समीक्षा

(मूल आधार से विकास तक के
सन्दर्भ में एक समग्र परिशीलन)

शोध एवं लेखन
प्रो० शुकदेव चतुर्वेदी
ज्योतिषाचार्य, एम०ए०, पी-एच०डी०
प्रोफेसर एवं निदेशक-ज्योतिष पाठ्यक्रम

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
(मानित विश्वविद्यालय)
नई दिल्ली-110016
2004

राष्ट्र संत आचार्य श्री विद्यानन्द जी मुनिराज का आशीर्वचन

प्राच्य विद्याओं एवं भारतीय मनीषा में ज्योतिष एक उपयोगी शास्त्र है। यह हमारे ऋषियों मुनियों के परिपक्व चिन्तन की देन है। हमारे तपस्वियों ने योगसाधना और तपस्या के उच्च शिखर पर **"यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे"** का साक्षात्कार कर व्यष्टि एवं समष्टि अर्थात् जीव एवं ब्रह्माण्ड के घटनाचक्र को जानने और पहचानने के सूत्रों का अवलोकन कर उनका नियमबद्ध प्रतिपादन किया, जिसे ज्योतिषशास्त्र कहते हैं। इस शास्त्र में महर्षि पाराशर का मत एवं उनकी लघुपारांशरी एक मार्मिक, मौलिक एवं मानक रचना है।

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, जो प्राच्यविद्याओं तथा दुर्लभ शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन एवं शोध कार्य के लिये समर्पित संस्था है, ने लघुपाराशरी पर एक पुनश्चर्या पाठ्यक्रम और उसके द्वारा ४२ कारिकाओं के इस अद्भुत ग्रन्थ पर शोध तथा स्पष्ट चर्चा के माध्यम से एक सराहनीय कार्य किया है।

हमारा विश्वास है कि लघुपाराशरी-समीक्षा ज्योतिषशास्त्र के विद्वानों एवं ज्योतिषानुरागियों के लिये समानरूप से पठनीय, संग्रहणीय एवं उपयोगी होगी। मैं इस अवसर पर विद्यापीठ के कुलपति प्रो० वाचस्पति उपाध्याय तथा पुनश्चर्या पाठ्यक्रम के निदेशक एवं लघुपाराशरी-समीक्षा के लेखक प्रो० शुकदेव चतुर्वेदी को हृदय से आशीर्वाद देता हूँ। मुझे आशा है कि विद्यापीठ इस प्रकार के पाठ्यक्रमों एवं मौलिक शोधकार्यों के माध्यम से प्राचीन विद्याओं को जन-जन तक पहुँचाने के अपने सत्संकल्प में सफलता प्राप्त करेगा।

पुरोवाक्

मानव जीवन में कब-कब, कहाँ-कहाँ और क्या-क्या घटित होने वाला है? इसको जानने, पहिचानने और पूर्वानुमान का दिशा-निर्देश करने वाले शास्त्र को ज्योतिषशास्त्र कहते हैं। इस शास्त्र की परम्परा में महर्षि पराशर का स्थान सर्वोपरि है। इनकी तीन रचनाएं मुद्रित एवं प्रकाशित रूप में आज हमें मिलती हैं– १. बृहत्पाराशर-होराशास्त्र, २. मध्यपाराशरी एवं ३. लघुपाराशरी। ४२ श्लोकों में उपनिबद्ध लघुपाराशरी या उडुदायप्रदीप उनकी सबसे गम्भीर एवं मार्मिक रचना है।

दशाफल-सिद्धान्त पर गागर में सागर के समान रचित इस लघुकाय ग्रन्थ पर संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती, तमिल, बांगला एवं अंग्रेजी आदि भाषाओं में २५ से अधिक टीकाओं का मुद्रित एवं प्रकाशित होना तथा विश्वविद्यालयों के ज्योतिष/ज्योतिर्विज्ञान के स्नातकोत्तर कक्षाओं के पाठ्यक्रम में इस ग्रन्थ का पाठ्यग्रन्थ के रूप में निर्धारित होना इसके महत्त्व एवं इसकी उपयोगिता का मुखर साक्ष्य हैं।

संस्कृत के दुर्लभज्ञान को जनसामान्य तक पहुँचाने के अपने उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए विद्यापीठ में हमने प्रो० शुकदेव चतुर्वेदी के निर्देशन में लघुपाराशरी पर दो पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों का आयोजन किया। लघुपाराशरी-समीक्षा प्रो० चतुर्वेदी के अध्ययन, अध्यापन एवं शोध के रूप में जीवनभर की गई उनकी सारस्वत साधना का परिणाम है। इस स्तरीय मौलिक शोधकार्य के लिए मैं उन्हें बधाई देता हूं।

लघुपराशरी की इस समीक्षा में महर्षि पराशर के दशाफल के आधारभूत सिद्धान्तों का न केवल तुलनात्मक वर्णन एवं विवेचन किया गया है, अपितु इसमें उन सिद्धान्तों का विश्व के प्रसिद्ध लोगों की कुण्डलियों पर प्रयोग कर जीवन के यथार्थ को निश्चित करने का महनीय प्रयास किया गया है। वैदिक ज्योतिष के क्षेत्र में इस प्रकार के

शोध का यह अनूठा प्रयोग है, जिसमें सद्दाम हुसैन, बिल क्लिंटन, प्रिंसेज डाइना, क्वीन एलीजाबेथ, बेनजीर भुट्टो, फेडल कास्त्रो, जान मेजर, मार्गरेट थैचर, हेनरी किसिंजर, मिखाइल गोर्वाच्योव, इन्द्रकुमार गुजराल, डॉ कर्ण सिंह, श्रीमती इन्दिरा गांधी एवं श्री अटल बिहारी वाजपेयी जैसे सुप्रसिद्ध व्यक्तियों की कुण्डली की कसौटी पर लघुपराशरी के नियमों को जांच एवं परख कर समीक्षा की गयी है।

इस स्तरीय रचना को विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित कर विज्ञजनों के हाथों में सौंपते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। मेरा विश्वास है कि यह ग्रन्थ ज्योतिष के विद्वज्जनों, छात्रों एवं प्रेमियों को पराशर के दशाफल सिद्धान्तों को आत्मसात् करने में सहायक होगा।

कार्तिक पूर्णिमा वि०सं० २०६०
दि० ८ नवम्बर, २००३ ई.

प्रो० वाचस्पति उपाध्याय

प्रकाशकीय

संस्कृतविद्या के प्रचार-प्रसार के पावन उद्देश्य से स्थापित यह विद्यापीठ अपनी स्थापना के समय से ही विद्वज्जनों शोधकर्त्ताओं तथा छात्रों को सहजता से उपलब्ध कराने की दृष्टि से ग्रन्थों का प्रकाशन कर रहा है। परिणामत: विद्यापीठ की प्रकाशन योजना के अन्तर्गत कई महनीय ग्रन्थ प्रकाशित किये गए; किन्तु उनमें अब तक ज्योतिषशास्त्र या वास्तुशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों का अभाव था, उस अभाव को दूर करने के लिए तथा विद्यार्थियों एवं अध्यापकों की निरन्तर माँग को ध्यान में रखकर माननीय कुलपति प्रो० वाचस्पति उपाध्याय ने ज्योतिषशास्त्र की पुस्तकों के प्रकाशन हेतु स्वीकृति प्रदान करते हुए ज्योतिष विभागाध्यक्ष प्रो० शुकदेव चतुर्वेदी एवं विभागीय अध्यापकों से ग्रन्थ रचना के निमित्त निर्देश दिया। फलत: प्रो० चतुर्वेदी ने प्रस्तुत ग्रन्थ विद्यापीठ की प्रकाशन योजना के लिए प्रदान किया। विभाग के अन्य विद्वान् भी इस दिशा में कार्य कर रहे हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ ज्योतिषशास्त्र के अध्ययन में अत्यन्त लाभदायक है इसी करण इसे विभिन्न विश्वविद्यालयों के ज्योतिष पाठ्यक्रम में भी रखा गया है। प्रो० चतुर्वेदी की विशद समीक्षा के साथ यह ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है, यही इस प्रकाशन की विशेषता है। अत्यन्त विशिष्टजनों की जन्मकुण्डलियों के माध्यम से जिस विश्लेषणात्मक बोध का लाभ पाठक इस ग्रन्थ से कर सकता है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

ग्रन्थ के शोधकर्त्ता लेखक प्रो० शुकदेव चतुर्वेदी के वैदुष्य एवं सौमनस्य के प्रति मैं कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ आप सभी पाठक के ज्ञानवृद्धि में सहायक हो, ऐसी श्रीजगन्नाथ जी के चरणों में प्रार्थना है।

प्रो० रमेशकुमार पाण्डेय
अध्यक्ष
शोध-प्रकाशन विभाग

प्रस्तावना

इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब ज्ञान एवं विज्ञान ने पर्याप्त प्रगति कर ली है, विकास के नये कीर्तिमान स्थापित हो चुके हैं, तब भी समाज में एक तनाव निराशा एवं असंतोष का वातावरण घने-कुहरे की तरह चारों ओर छाया हुआ है। हमारी प्रगति एवं विकास का सटीक मूल्यांकन करने वाले-टैन्शन, फ्रस्टेशन एवं डिप्रेशन जैसे शब्द आज स्वयं मुखर होकर अपने समाधान की तलाश कर रहे हैं। यह तनाव आदि जनजाति से सभ्य जाति में, अशिक्षित वर्ग से सुशिक्षित वर्ग में और विपन्न वर्ग से सम्पन्न वर्ग में उत्तरोत्तर व्यापक एवं अधिक पीड़ादायक बनते जा रहे हैं। अतः आज इसके कारण एवं निवारण का विचार करना आवश्यक ही नहीं किन्तु अनिवार्य है।

प्राच्य विद्यायों के प्रवर्तक ऋषियों ने जीवन सफलता या असफलता के चार मुख्य कारण बतलाये हैं- (i) वंशानुक्रम (ii) वातावरण (iii) प्रयत्न (या कर्म) तथा (iv) काल (समय)। और इन चारों में यह तारतम्य बतलाया गया है, कि वंशानुक्रम से वातावरण, उससे प्रयत्न और उसके काल उत्तरोत्तर बलवान होता है। इस प्रकार इन चारों कारणों में "कालो हि बलवान मतः" काल की प्रबलता के कारण उसको जीवन की सफलता या असफलता का मुख्य कारण माना जाता है।

किन्तु यह विलक्षण एवं आश्चर्यजनक है कि आज के ज्ञान एवं विज्ञान के विकास एवं आविष्कार की सुई इन चार कारणों में से केवल-

(i) वंशानुक्रम (ii) वातावरण एवं (iii) प्रयत्न- इन तीनों के ही आस-पास घूमती दिखाई देती है।

क्योंकि आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के निम्नलिखित विषय जैसे बायोलाजी, साइकोलाजी, एन्थ्रोपोलोजी, मैडीकल-साइन्सेज, जेनेटिक साइन्सेज़ एवं जेनेटिक इंजीनियरिंग आदि का केन्द्र बिन्दु वंशानुक्रम है। जबकि फिजिक्स,

केमिस्ट्री, मैट्रोलाजी, सोशियोलाजी, पालिटिकल साइन्सेज, एग्रीकल्चरल-साइन्स एवं मानविकी के सभी विषयों का विचार "वातावरण" पर केन्द्रित है। और टैकनोलोजी, इंजीनियरिंग, मैनेजमेन्ट एवं प्रोफेशनल स्टडीज के सभी विषयों का विचारणीय बिन्दु "प्रयत्न" है।

आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के सभी विषयों में ले-देकर केवल एक एस्ट्रोनामी-ऐसा विषय है, जो मात्र काल-गणना का विचार करता है। किन्तु यह भी काल के गुण-धर्म, काल का ब्रह्मांड एवं मानव जीवन के साथ सहज एवं सतत सम्बन्ध तथा जन-जीवन पर पड़ने वाले उसके प्रभाव का विचार नहीं करता।

क्या काल को, उसके गुण-धर्मो को, उसके सूक्ष्म किन्तु गम्भीर प्रभाव को और मानव जीवन के साथ उसके सहज एवं सतत सम्बन्ध को जाने एवं पहचाने बिना समय का प्रबन्धन एवं व्यवस्था की जा सकती है? और यदि नहीं तो मानव जीवन उसका उपयोग कैसे किया जा सकता है। वस्तुतः यह एक यक्ष-प्रश्न है। जो इसका उत्तर जानता है, वह अपने जीवन में प्रगति, सफलता एवं संस्तुष्टि पा सकता है, दूसरा नहीं।

आज के जीवन में जो तनाव, असन्तोष, निराशा हड़बड़ी, आपाधापी एवं धींगामुश्ती चारों ओर फैली हुई है, उसका मुख्य कारण यह है कि आज के सुशिक्षित, बुद्धिजीवी एवं शीर्षस्थ लोगों को भी काल (समय) के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं है। क्या काल के सही-सही ज्ञान के बिना आज के ज्ञान एवं विज्ञान को समग्र या परिपूर्ण कहा जा सकता है और नहीं, तो इसे परिपूर्ण मानना, या इस पर गर्व से सीना तानना-क्या एक प्रकार का हठ या दुराग्रह नहीं है।

प्राच्य विद्याओं में वैदिक महर्षियों एवं मनीषी आचार्यो ने एक ऐसे शास्त्र का आविष्कार एवं विकास किया है, जो काल, उसके गुण-धर्म, जन-जीवन पर उसके प्रभाव तथा जीवन के घटना चक्र के साथ उसके सूक्ष्म एवं सतत सम्बन्ध का साङ्गोपाङ्ग विचार कर उसे जानने एवं पहिचानने के लिए सुमान्य नियमों, सिद्धांतों एवं प्रविधियों का प्रतिपादन करता है। इस जीवनोपयोगी शास्त्र का नाम ज्योतिष शास्त्र है।

वस्तुतः वैदिक काल से लेकर आज तक जीवन के घटना-क्रम को काल के परिप्रेक्ष्य में जानने पहिचानने एवं पूर्वानुमान करने के लिए हमारे महर्षियों एवं मनीषी आचार्यों ने जिन तर्कपूर्ण सिद्धांतों प्रविधियों एवं पद्धतियों को नियमों एवं उपनियमों के अनुशासन से प्रतिबद्ध कर अविष्कृत एवं विकसित किया उनके समग्र संकलन को ज्योतिष शास्त्र कहते हैं। यह एक ऐसी विद्या है, जिससे व्यक्ति एवं ब्रह्माण्ड के जीवन में कब-कब, कहाँ-कहाँ और क्या-क्या घटित होने वाला है? इस सबको भली भांति जाना जा सकता है। इस शास्त्र का जीवन के साथ इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है, कि यह जीवन के सभी पहलुओं का विचार कर उसके बारे में सही-सही एवं पर्याप्त जानकारी देकर हमारी सर्वाधिक सहायता करता है। इसलिए यह कहा जा सकता है इस शास्त्र के ज्ञान के बिना आधुनिक ज्ञान-विज्ञान अपूर्ण ही नहीं, अपितु पंगु है।

इस शास्त्र को कालाश्रितं ज्ञानम्[१] कहने वाले ऋषियों के अनुसार राशिचक्र में मेष आदि द्वादश राशियों में सूर्य आदि ग्रहों की गतिविधियों को काल कहते हैं। जैसे घड़ी में एक डायल और उस पर चलने वाली तीन सुइयों के द्वारा हमें घण्टा, मिनिट एवं सैकिण्ड के माध्यम से काल की जानकारी मिलती है- ठीक उसी प्रकार राशिचक्र की बारह राशियों में सूर्य आदि ग्रहों के परिभ्रमण से हमें वर्ष, मास एवं दिन के माध्यम से काल की जानकारी मिलती है, यथा- जितने समय में सूर्य बारह राशियों का भोग करता है, उतने समय को वर्ष[२], जितने समय में सूर्य एकराशि का भोग करता है, उतने समय को सौर मास[३] तथा जितने समय में सूर्य एक अंश का भोग करता है, उतने समय को एक सौर दिन कहा जाता है।

इस प्रकार राशिचक्र की बारह राशियों में सूर्य आदि ग्रहों की गतिविधियों को काल कहते हैं। और विविध राशियों तथा भाव आदि में

---

१. सूर्य सिद्धांत-मध्यमाधिकार श्लो०

२. तत्रैव श्लो०

३. तत्रैव श्लोक०

उनकी स्थिति के अनुसार काल के गुण धर्मों की जानकारी होती है तथा ग्रह, राशि, भाव, युति, स्थिति, दृष्टि एवं बल जैसे आधारभूत तत्त्वों के माध्यम से यह शास्त्र काल के परिप्रेक्ष्य में और उसी के पैमाने पर जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का कारण-कार्य सहित विवेचन कर हमारी सर्वाधिक सहायता करता है।

यह शास्त्र कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद, कार्यकारणवाद एवं सत्कार्यवाद जैसे दार्शनिक सिद्धांतों की कसौटी पर गणित, वेध एवं सर्वेक्षण जैसी वैज्ञानिक विधियों द्वारा मानव एवं ब्रह्माण्ड के जीवन के घटनाचक्र को जाँच एवं परखकर निरूपित करता है। इसलिए इस शास्त्र का जन-जीवन में हमेशा से महत्व है और रहेगा।

दर्शन एवं विज्ञान के साथ इस शास्त्र का तुलनात्मक विश्लेषण किया जाय तो अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है-कि दर्शन एवं भौतिक विज्ञान जहां मानव के सामने वैराग्य, निराशा एवं भयोत्पादकता का वातावरण सृजित कर मानव को किं कर्त्तव्यविमूढ़ बना देता है। वहीं ज्योतिषशास्त्र उसी मानव को निराशा, भय एवं वैराग्य से उन्मुक्तकर कर्त्तव्य के क्षेत्र में लाकर खड़ा कर देता है। और उसे वर्तमान के साथ-साथ भविष्य की जानकारी देकर अपने प्रयत्न से उसे अनुकूल बनाने तथा उसका उपयोग करने की प्रेरणा देता है।

इस शास्त्र के प्रणेताओं के अनुसार इसके तीन स्कन्ध (भाग) माने जाते हैं-सिद्धांत, संहिता एवं होरा। सिद्धांत स्कन्ध में ग्रह-गणित के आधारभूत नियमों, वेधविधियों एवं पंचांग निर्माण की प्रक्रिया का विवेचन किया जाता है। संहिता स्कन्ध में ब्रह्माण्ड में घटित होने वाले घटनाक्रम का ग्रहचार सप्तर्षिचार, मेदिनी, पर्जन्यविद्या, शकुन एवं लक्षण आदि के माध्यम से निरूपण होता है। और होरास्कन्ध में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त मानव-जीवन में घटित होने वाली घटनाओं और उनके शुभाशुभत्व का विचार किया जाता है।
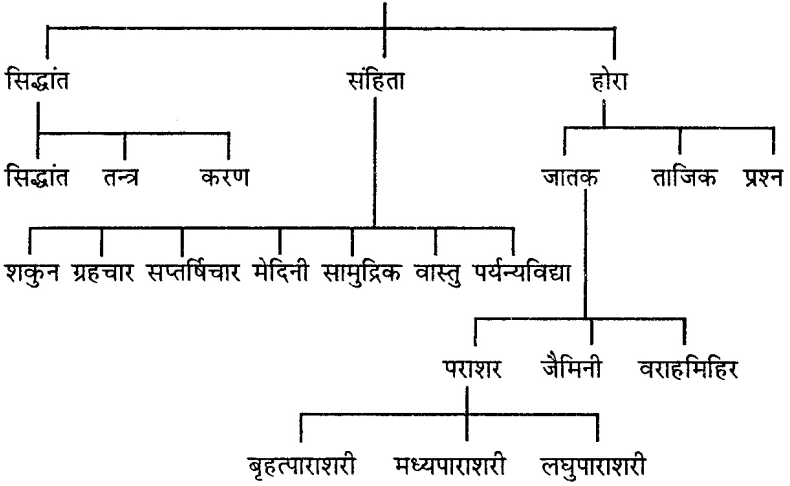
होरास्कन्ध में मुख्य रूप से तीन शास्त्रों का प्रतिपादन किया गया है-

१. जातक शास्त्र २. ताजिक शास्त्र एवं ३. प्रश्न शास्त्र। जातक शास्त्र में वैदिक कर्मवाद के अनुसार जन्म-जन्मान्तरों में अर्जित कर्मों का जीव को इस जीवन में मिलने वाला फल काल के माध्यम से बतलाया जाता है। इस शास्त्र में तीन प्रमुख कुल है- १. पराशर २. जैमिनी एवं ३. वराहमिहिर। इन तीनों में पराशर का मत सर्वमान्य होने के कारण दैवज्ञ समाज का पथप्रदर्शक माना जाता है। महर्षिपराशर की आज तीन कृतियाँ उपलब्ध है- १. बृहत्पाराशरी या बृहत्पाराशर होराशास्त्र, २. मध्यपाराशरी एवं ३. लघुपारशरी।

४२ श्लोकों के लघुमय कलेवर में उपनिबद्ध लघुपाराशरी ग्रहों के शुभाशुभत्व कारक एवं मारक ग्रहों के माध्यम से दशाफल निरूपण का एक मानक ग्रन्थ है। इसके महत्व तथा दैवज्ञ समाज में इसके आदर का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि ग्रन्थ पर संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी, बांगला, अंग्रेजी एवं दक्षिण की भाषाओं में पचास से

अधिक टीकायें हुई है। आज भी ज्योतिष-जगत में लघुपाराशरी का सर्वाधिक प्रचलन है और यह विश्वविद्यालयों के ज्योतिष-पाठ्यक्रम में निर्धारित ग्रन्थों में प्रमुख है।

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ नई दिल्ली में दिनाङ्क २ फरवरी, १९९८ से दिनांक २ अप्रैल १९९८ तक लघुपाराशरी पर एक पुनश्चर्या पाठ्यक्रम सञ्चालित किया गया। इस पाठ्यक्रम के निदेशक के रूप में इसकी अध्ययन सामग्री को लिखते समय तथा दो मास तक चले इस पाठ्यक्रम के प्रश्नोत्तर सत्र में अनेक नये एवं विचारणीय प्रश्न मेरे सामने उपस्थित हुए, जिनका समाधान करने के लिए लघुपाराशरी का तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक अध्ययन किया। लघुपाराशरी समीक्षा-इसकी मूलसंकल्पना तथा आधारभूत सिद्धांतों के तुलनात्मक एवं विवेचनात्मक अध्ययन की दिशा में किया गया प्रथम प्रयास है।

लघुपाराशरी की समीक्षा के लेखन में जिन मनीषी चिन्तकों एवं व्याख्याकारों की कृतियों ने मार्गदर्शन किया, उन सब आचार्यों का श्रद्धा सहित आभार मानते हुए, उनका स्मरण करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। इन चौबीस टीकाकारों में छः संस्कृत टीकाकार, ग्यारह हिन्दी टीकाकार, तीन मराठी टीकाकार, दो गुजराती टीकाकार तथा दो अंग्रेजी टीकाकार हैं। ज्योतिष शास्त्र के मर्मज्ञ इन व्याख्याकारों की सूची इस प्रकार है-

संस्कृत टीकाकार

(i) उद्योतकार

(ii) सज्जनरंजिनीकार

(iii) सुश्लोक शतकप्रणेता

(iv) श्री विनायक शास्त्री 'बेताल'

(v) पं० श्री रामयत्न ओझा

(vi) पं० श्री अच्युतानन्द झा

मराठी टीकाकार

(i) श्री ह० ने० काटवे

(ii) श्री रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन

(iii) श्री वि० गो० नवाथे

गुजराती टीकाकार

(i) श्री तुलाशंकर धीरजराम पण्ड्या

(ii) श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर

हिन्दी टीकाकार

(i) राजज्योतिषी चन्द्रशेखर चतुर्वेदी

(ii) पं० श्री रामेश्वर भट्ट

(iii) श्री माधव प्रसाद व्यास

(iv) पं० श्रीसीताराम झा

(v) पं० महेश मिश्र

(vi) पं० मुकुंद वल्लभ मिश्र

(vii) पं० केदारदत्त जोशी

(viii) श्री वासुदेव गुप्त

(ix) दिवान रामचन्द्र कपूर

(x) मेजर एस० जी० खोत

(xi) प्रो० शुकदेव चतुर्वेदी

अंग्रेजी टीकाकार

(i) प्रो० बी० सूर्यनारायण राव

(ii) डॉ० (श्रीमती) के. एन. सरस्वती

लघुपाराशरी की इस समीक्षा में बृहत्पाराशर होराशास्त्र को मूल आधार ग्रन्थ माना गया है, जिसका अनुसरण करते हुए इस मानक ग्रन्थ की रचना की गयी है। इसके साथ-साथ लघुपाराशरी की परम्परा में विरचित भावकुतूहल, भावार्थ रत्नाकार, भाव प्रकाश, सुश्लोक शतक एवं फलित विकास आदि ग्रन्थों से इसके सिद्धांतों, नियमों एवं उपनियमों की विवेचना में सहायता ली गयी है। इस तरह लघुपाराशरी के मूल आधार से उसके विकास की परम्परा तक किया गया यह समालोचनात्मक अध्ययन-''लघुपाराशरी-समीक्षा'' के शीर्षक से ज्योतिषशास्त्र के विद्वान एवं अनुरागियों के हाथों सौपतें हुए मैं एक तृप्ति एवं हार्दिक संतुष्टि अनुभव कर रहा हूँ।

इस ग्रन्थ की रचना के लिए मैं विद्यापीठ के कुलपति प्रो० वाचस्पति उपाध्याय जी का हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिनकी प्रेरणा से यह शोध कार्य सम्पन्न हुआ। तथा इसके प्रकाशन के लिए विद्यापीठ के शोध एवं प्रकाशन विभाग के अध्यक्ष प्रो० रमेशकुमार पाण्डेय का हार्दिक धन्यवाद ज्ञापन करना चाहता हूँ।

आशा है कि विज्ञ-जन एवं जिज्ञासु पाठक इसका मनन एवं परिशीलन कर ग्रहों के शुभाशुभत्व कारकत्व एवं मारकत्व के माध्यम से दशाफल के निरूपण में आने वाली कठिनाइयों का समाधान प्राप्त करेंगें।

प्रो० शुकदेव चतुर्वेदी

कुण्डली संख्या

१. श्री सद्दाम हुसैन
२. श्री इन्द्र कुमार गुजराल
३. श्री ज्योति बसु
४. श्री बाला साहेब ठाकरे
५. श्री बंशीलाल
६. श्री बिल क्लिंटन
७. श्रीमति प्रिंसेज डायना
८. श्री जार्ज फर्नांडीज़
९. श्री काँशीराम
१०. श्री माधव राव सिंधिया
११. क्वीन एलीजाबेथ II
१२. श्री भजन लाल
१३. श्री विद्याचरण शुक्ल
१४. श्री नारायण दत्त तिवारी
१५. श्रीमति बेनजीर भुट्टो
१६. डॉ. मनमोहन सिंह
१७. श्री राम कृष्ण हेगड़े
१८. श्री रोमेश भंडारी
१९. श्री फेडल कास्त्रो
२०. श्री सुब्रह्मण्यम् स्वामी
२१. श्री जॉन मेजर
२२. श्रीमति मार्गरेट थैचर
२३. श्री एस. डी. देवे गौड़ा
२४. डॉ. कर्ण सिंह
२५. श्री हेनरी किसिंजर
२६. श्रीमति मेनका गाँधी
२७. श्री रामविलास पासवान
२८. श्री मिखाइल गोर्वाच्योव
२९. श्री गुलजारी लाल नन्दा
३०. श्री अब्दुर्रहमान अन्तुले
३१. श्री टी. एन. शेषन
३२. श्री रामजेठमलानी
३३. श्रीमति इन्दिरा गाँधी
३४. श्री शत्रुघ्न सिन्हा
३५. श्री अटल बिहारी वाजपेयी

विषय-सूची

	पृष्ठ-संख्या
राष्ट्र संत आचार्य श्री विद्यानन्द जी मुनिराज का आशीर्वचन	*iii*
पुरोवाक्	*v*
प्रकाशकीय	*vii*
प्रस्तावना	*ix*
कुण्डली संख्या	*xvii*
लघुपाराशरी (मूलपाठ)	1-15
संज्ञाध्याय	16-111
योगाध्याय	112-172
आयुर्दायाध्याय	173-202
दशाफलाध्याय	203-236
मिश्रफलाध्याय	237-250
परिशिष्ट-एक	251-269
परिशिष्ट-दो	270-283
परिशिष्ट-तीन	284-315

लघुपाराशरी

मूलपाठ

सिद्धान्तमौपनिषदं शुद्धान्तं परमेष्ठिनः।
शोणाधरं महः किञ्चिद्वीणाधरमुपास्महे।।१।।

अन्वय- (वयं) औपनिषदं सिद्धान्तं, परमेष्ठिनः शुद्धान्तं शोणाधरं, वीणाधरं, किञ्चिद् महः उपास्महे।

अर्थ - (वयं = हम); औपनिषदं = उपनिषदों द्वारा; सिद्धांत = अन्त में सिद्ध; परमेष्ठिनः = ब्रह्मा की; शुद्धांत =शुद्ध अन्तःकरण, सात्त्विक शक्ति, पत्नी शोणाधरं = गुलाबी होठों वाली किंचिद् = किसी; महः = दिव्य तेजस्वी; वीणाधरं = वीणा धारिणी (माँ सरस्वती) की; उपास्महे = उपासना करते हैं।

वयं पाराशरीं होरामनुसृत्य यथामति।
उडुदायप्रदीपाख्यं कुर्मो दैवविदां मुदे।।२।।

अन्वय - वयं पाराशरीं होरां यथामति अनुसृत्य दैवविदां मुदे उडुदायप्रदीपाख्यं कुर्मः।

अर्थ - वयं = हम; पाराशरीं होरां = पाराशर होराशास्त्र का; यथामति = अपनी बुद्धि के अनुसार; अनुसृत्य = अनुशीलन/अनुसरण कर; दैवविदां = दैवज्ञों की; मुदे = प्रसन्नता/मोद के लिए, उडुदायप्रदीपाख्यं =उडुदायप्रदीप नामक ग्रन्थ की; कुर्मः = रचना करते हैं।

टिप्पणी - उडुदाय प्रदीप का अर्थ है -

उडु = नक्षत्र, दाय = आयुर्दाय, प्रदीप = प्रदर्शक। अर्थात् नक्षत्रदशा के आधार पर आयुर्दाय जानने का पथ-प्रदर्शक।

फलानि नक्षत्रदशाप्रकारेण विवृण्महे।
दशा विंशोत्तरी चात्र ग्राह्या नाष्टोत्तरी मता।।३।।

अन्वय - (वयं) नक्षत्रदशाप्रकारेण फलानि विवृण्महे, अत्र च विंशोत्तरी दशा ग्राह्या, अष्टोत्तरी न मता।

अर्थ - (वयं =हम), फलानि = फलों जीवन के घटनाचक्र का; नक्षत्रदशाप्रकारेण = नक्षत्रदशा के अनुसार; विवृण्महे = विवेचन करेंगे। अत्र च = और यहाँ; विंशोत्तरी दशा = विंशोत्तरी दशा; ग्राह्या = ग्राह्य है; अष्टोत्तरी = अष्टोत्तरी आदि दशा; न मता = अग्राह्य है।

टिप्पणी - नक्षत्रदशा = नक्षत्र पर आधारित दशा; बृहत्पाराशर होराशास्त्र में विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी, योगिनी आदि अनेकों नक्षत्रदशाओं का वर्णन एवं विवेचन मिलता है।

बुधैर्भावादयः सर्वे ज्ञेयाः सामान्यशास्त्रतः।
एतच्छास्त्रानुसारेण संज्ञां ब्रूमो विशेषतः।।४।।

अन्वय - बुधैः सर्वे भावादयः सामान्यशास्त्रतः ज्ञेयाः, एतद् शास्त्रानुसारेण विशेषतः संज्ञां ब्रूमः।

अर्थ - बुधैः = विद्वानों को; सर्वे = सभी; भावादयः = भाव आदि संज्ञाएँ; सामान्यशास्त्रतः = सामान्यग्रन्थों/जातकग्रन्थों से; ज्ञेयाः = जान लेनी चाहिए। एतद् = इस; शास्त्रानुसारेण = ग्रन्थ (लघुपाराशरी) द्वारा; विशेषतः = विशेष; संज्ञां = संज्ञाएँ; ब्रूमः = कहते हैं/बतलाते हैं।

टिप्पणी - भावादयः = भाव आदि अर्थात् -

(i) भाव (ii) ग्रह (iii) दृष्टि (iv) युति (v) स्थिति (vi) बल (vii) राशि एवं (viii) सम्बन्ध आदि।

पश्यन्ति सप्तमं सर्वे शनिजीवकुजाः पुनः।
विशेषतः त्रिदशत्रिकोणचतुरष्टमान्।।५।।

अन्वय - सर्वे (ग्रहाः) सप्तमं पश्यन्ति, पुनः शनिजीवकुजाः त्रिदश-त्रिकोण-चतुरष्टमान् विशेषतः पश्यन्ति।

अर्थ - सर्वे ग्रहाः = सभी ग्रह; सप्तमं = सप्तमस्थ ग्रह को; पश्यन्ति = देखते हैं। पुनः = तथा; शनिजीवकुजाः = शनि, गुरु एवं मंगल; त्रिदश-त्रिकोण-चतुरष्टमान् = तृतीय-दशम, पंचम-नवम एवं चतुर्थ अष्टम में स्थित ग्रह को; विशेषतः = विशेष रूप से पश्यन्ति = देखते हैं।

टिप्पणी - विशेषतः = विशेष रूप से अर्थात् सामान्य रूप से सप्तमस्थ को देखने के साथ-साथ विशेष रूप से शनि, गुरु एवं मंगल उक्त स्थानों में स्थित ग्रह को देखते हैं।

सर्वे त्रिकोणनेतारो ग्रहाः शुभफलप्रदाः।
पतयस्त्रिषडायानां यदि पापफलप्रदाः।।६।।

अन्वय - सर्वे त्रिकोणनेतारः ग्रहाः शुभफलप्रदाः; यदि (ते) त्रिषडायानां पतयः (तदा) पापफलप्रदाः (भवन्ति)।

अर्थ - सर्वे = सभी; त्रिकोणनेतारः = त्रिकोण के स्वामी; ग्रहाः = (सौम्य एवं क्रूर) ग्रह; शुभफलप्रदाः = शुभफलदायक (होते हैं)। यदि = यदि (ते = वे सभी ग्रह); त्रिषडायानां = तृतीय, षष्ठ एवं एकादश भावों के; पतयः = स्वामी हों; (तदा = तब), पापफलप्रदाः = पापफलदायक (भवन्ति = होते हैं)।

टिप्पणी - त्रिकोण = लग्न से पंचम एवं नवमभाव (सर्वसम्मतपक्ष), लग्न, पंचम एवं नवम तीनों भाव (बहुसम्मतपक्ष)।

न दिशन्ति शुभं नृणां सौम्याः केन्द्राधिपा यदि।
क्रूराश्चेदशुभं ह्येते प्रबलाश्चोत्तरोत्तरम्।।७।।

अन्वय - यदि सौम्याः केन्द्राधिपाः नृणां शुभं न दिशन्ति। चेद् एते क्रूराः हि अशुभं (न दिशन्ति)। च (एते हि) उत्तरोत्तरं प्रबलाः।

अर्थ - यदि = यदि, सौम्याः = गुरू, शुक्र पूर्णचन्द्र एवं शुभ युक्त बुध, केन्द्रधिपाः = केन्द्रेश (हो तो); नृणां = मनुष्यों को; शुभं = शुभफल; न दिशन्ति = नहीं देते। चेद् = यदि एते = ये, क्रूराः = सूर्य, मंगल, शनि, क्षीणचन्द्र एवं पापयुक्त बुध (हो तो); हि निश्चित रूप से;

अशुभं = अशुभ फल (नहीं देते)।

च = और, एते = ये (त्रिकोणेश, केन्द्रेश एवं त्रिषडायेश आदि), उत्तरोत्तरं = उत्तरोत्तर; प्रबलाः = प्रबल होते हैं।

लग्नात् व्ययद्वितीयेशौ परेषां साहचर्यतः।
स्थानान्तरानुगुण्येन भवतः फलदायकौ।।८।।

अन्वय - लग्नात् व्ययद्वितीयेशौ परेषां साहचर्यतः (तथा) स्थान्तरानुगुण्येण फलदायकौ भवतः।

अर्थ - लग्नात् = लग्न से; व्ययद्वितीयेशौ = व्यय एवं द्वितीय भाव के स्वामी; परेषां = दूसरे (ग्रहों के); साहचर्यतः = साहचर्य से, (तथा) स्थानान्तरानुगुण्येन = अन्य स्थान (भाव) के गुण-धर्म से; फलदायकौ = (शुभ या अशुभ) फलदायक; भवतः = होते हैं।

टिप्पणी - परेषां साहचर्यतः = साथ-साथ चलने (रहने वाले) अर्थात् साथीग्रह के शुभ-अशुभ प्रभाव के अनुसार।

स्थानान्तरानुगुण्येन = अन्य भाव के (शुभ-अशुभ) गुणधर्म के अनुसार।

भाग्यव्ययाधिपत्येन रन्ध्रेशो न शुभप्रदः।
स एव शुभसंधाता लग्नाधीशोऽपि चेत् स्वयम्।।९।।

अन्वय - भाग्यव्याधिपत्येन रन्ध्रेशो न शुभप्रदः स एव शुभसंधाता चेत् स्वयं लग्नाधीशोऽपि (भवेत्)।

अर्थ - भाग्यव्ययाधिपत्येन = भाग्य का व्ययकारक होने के कारण; रन्ध्रेशः = अष्टमेश; न शुभप्रदः = शुभफलदायक नहीं होता। स = वह; एव = ही; शुभसंधाता = शुभफलदाता (हो जाता है), चेत् = यदि; स्वयं = वही; लग्नाधीशोऽपि = लग्नेश भी (भवेत् = हो)।

टिप्पणी - भाग्यव्ययाधिपत्येन = भाग्य का व्ययकारक होने से अथवा भाग्यस्थान के १२वें स्थान का स्वामी होने से।

शुभसन्धाता = शुभ (फल) से सन्धान करने वाला = जोड़ने वाला

अर्थात् शुभफलदायक।

केन्द्राधिपत्यदोषस्तु बलवान्गुरुशुक्रयोः।
मारकत्वेऽपि च तयोर्मारकस्थानसंस्थितिः।।१०।।

बुधस्तदनु चन्द्रोऽपि भवेत्तदनु तद्विधः।।१० 1/2।

अन्वय - गुरूशुक्रयोः केन्द्राधिपत्यदोषः तु बलवान् अपि च तयो मारकत्त्वेऽपि मारकस्थानसंस्थितिः (बलवती भवति)। तदनु बुधः तद्विधः; तदनु चन्द्रोऽपि (तद्विधः) भवेत्।

अर्थ - गुरूशुक्रयोः = गुरू एवं शुक्र दोनों में केन्द्राधिपत्यदोषः = केन्द्राधिपत्यदोष; तु = निश्चित रूप से; बलवान् होता है। अपि च = निश्चित रूप से; तयोः = गुरू एवं शुक्र के; मारकत्त्वेऽपि = मारकेश (सप्तमेश) होने पर; मारकस्थानसंस्थिति = मारक (सप्तम) स्थान (भाव) में स्थिति (और भी) बलवती होती है। तदनु = इन की अपेक्षा, बुधः = बुध, तद्विधः = केन्द्राधिपत्य दोषी (और); तदनु = बुध की अपेक्षा, चन्द्रोऽपि = चन्द्रमा भी (तद्विधः = केन्द्राधिपत्यदोषी) भवेत् = होता है।

न रन्ध्रेशत्त्वदोषस्तु सूर्याचन्द्रमसोर्भवेत्।।११।।

अन्वय - सूर्याचन्द्रमसोः रन्ध्रेशत्त्वदोषः न भवेत्।

अर्थ - सूर्याचन्द्रमसोः = सूर्य एवं चन्द्रमा में; रन्ध्रेशत्त्व = अष्टमेशजन्य दोषः = दोष, न भवेत् = नहीं होता है।

कुजस्य कर्मनेतृत्त्वे प्रयुक्ता शुभकारिता।
त्रिकोणस्यापि नेतृत्त्वे न कर्मेशत्त्वमात्रतः।।१२।।

अन्वय - कुजस्य कर्मनेतृत्त्वे (या) शुभकारिता प्रयुक्ता (सा) त्रिकोणस्यापि नेतृत्त्वे, न कर्मेशत्त्वमात्रतः।

अर्थ - कुजस्य = क्रूरग्रह के, कर्मनेतृत्त्वे = केन्द्रेश होने पर; (या = जो) शुभकारिता = शुभफलदायकता; प्रयुक्ता = बतलायी गयी है; (सा = वह); त्रिकोणस्यापि = त्रिकोण के भी, नेतृत्त्वे = स्वामी होने पर ही

(होती है); कर्मेशत्त्वमात्रतः = केवल केन्द्रेश होने से ही; न = नहीं होती।

यद्यद्भावगतौ वापि यद्यद्भावेशसंयुतौ।
तत्तत्फलानि प्रबलौ प्रदिशेतां तमोग्रहौ।।१३।।

अन्वय - प्रबलौ तमोग्रहौ यद् भावगतौ, वा आपि यद् यद् भावेशसंयुतौ, तत् तत् फलानि प्रदिशेताम्।

अर्थ - प्रबलौ = प्रबल=; तमोग्रहौ = राहु एवं केतु; यद् यद् भावगतौ = जिस भाव में बैठे हो; वा अपि = अथवा, यद् यद् भावेशसंयुतौ = जिस भावेश के साथ हों, तद् तद् फलानि = वैसा वैसा फल प्रदिशेताम् = देते हैं।

केन्द्रत्रिकोणपतयः सम्बधेन परस्परम्।
इतरैरप्रसक्ताश्चेद् विशेषफलदायकाः।।१४।।

अन्वय - केन्द्रत्रिकोणपतयः चेद् इतरैः अप्रसक्ता परस्परं सम्बधेन विशेषफलदायकाः (भवन्ति)।

अर्थ - केन्द्रत्रिकोणपतयः = केन्द्रश एवं त्रिकोणेश; चेद् = यदि; इतरैः = त्रिषडायाधीश एवं अष्टमेश से; अप्रसक्ता = सम्बन्ध रहित हों (तो), परस्परं = आपसी; सम्बधेन = सम्बन्ध के द्वारा; विशेषफलदायकाः = राजयोगकारक होते हैं।

केन्द्रत्रिकोणेनेतारौ दोषयुक्तावपि स्वयम्।
सम्बन्धमात्राद्बलिनौ भवेतां योगकारकौ।।१५।।

अन्वय - केन्द्रत्रिकोणनेतारौ स्वयं दोषयुक्तौ अपि सम्बन्धमात्राद् बलिनौ योगकारकौ भवेताम्।

अर्थ - केन्द्रत्रिकोणेननेतारौ = केन्द्र एवं त्रिकोण के स्वामी; स्वयं = स्वयं; दोषयुक्तौ अपि = सदोष होने पर भी; सम्बन्धमात्राद् = केवल आपसी सम्बन्ध के कारण; बलिनौ = बलवान् (होते हैं) (और) योगकारकौ = योगकारक; भवेताम् = होते हैं।

टिप्पणी - सम्बन्ध - (i) स्थान सम्बन्ध (ii) युति सम्बन्ध

(iii) दृष्टि सम्बन्ध (iv) एकान्तर सम्बन्ध।

दोष - (i) नीच राशि/शत्रुरात्रि में होना, अस्तंगत होना, निर्बल होना आदि।

(ii) केन्द्राधिपत्यदोष, तृतीयेश या षष्ठेश होना आदि

निवसेतां व्यत्ययेन तावुभौ धर्मकर्मणोः।
एकत्रान्यतरो वाऽपि वसेच्चेद्योगकारकौ।।१६।।

अन्वय - चेद् तौ उभौ व्यत्ययेन धर्मकर्मणोः निवसेतां, एकत्र, अन्यतरो वापि (तदा) योगकारकौ (भवेताम्)।

अर्थ - चेद् = यदि; तौ उभौ = वे (केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश) दोनों; व्यत्ययेन = व्यत्यय से; धर्मकर्मणोः = त्रिकोण और केन्द्र में; निवसेताम् =स्थित हों; एकत्र = साथ-साथ बैठे हों; वापि = अथवा, अन्यतरो = एक दूसरे की राशि में स्थित हो और दूसरा देखता हो; तदा = तो; योगकारकौ भवेताम् = योग कारक होते हैं।

त्रिकोणाधिपयोर्मध्ये येन केनचित्।
बलिनः केन्द्रनाथस्य भवेद्यदि सुयोगकृत्।।१७।।

अन्वय - त्रिकोणाधिपयोः मध्ये येन केनचिद् बलिनः केन्द्रनाथस्य सम्बन्धो भवेत् तदा सुयोगकृता भवति।

अर्थ - त्रिकोणाधिपयोर्मध्ये = पञ्चमेश एवं नवमेश में से; येन केनचिद् = जिस किसी के साथ; बलिनः केन्द्रनाथस्य = दशमेश का; सम्बन्धो भवेत् = सम्बन्ध हो; तदा = तब; सुयोगकृत = सुयोग कारक; भवति = होता है।

दशास्वपि भवेद्योगः प्रायशो योगकारिणोः।
दशाद्वयीमध्यगतस्तदयुक् शुभकारिणाम्।।१८।।

अन्वय - प्रायशः योगकारिणोः दशाद्वयीमध्यगतः तदयुक्शुभकारिणां दशास्वपि योगः भवेत्।

अर्थ - प्रायशः = प्रायः; योगकारिणोः = योगकारक ग्रहों की;

दशाद्वयीमध्यगतः = दशा एवं अन्तर्दशा के भीतर; तद्युक्शुभकारिणां = उनसे सम्बन्ध न करने वाले त्रिकोणेश की; दशास्वपि = प्रत्यन्तर्दशा में; योगः = राजयोग; भवेत् = घटित होता है।

योगकारकसम्बन्धात्पापिनोऽपि ग्रहाः स्वतः।
तत्तद्भुक्त्यनुसारेण दिशेयुर्योगजं फलम्।।१९।।

अन्वय - स्वतः पापिनोऽपि ग्रहाः योगकारकसम्बन्धात् तत्तद्भुक्त्यनुसारेण योगजं फलं दिशेयुः।

अर्थ - स्वतः = स्वभावतः; पापिनोऽपि = पापफलदायक भी; ग्रहाः = ग्रह, योगकारकसम्बन्धात् = योगकारक से सम्बन्ध होने के कारण; तत्तद्भुक्त्यनुसारेण = कारक ग्रह की दशा तथा अपनी अन्तर्दशा में; योगजं फलं = योगज फल; दिशेयुः = देते हैं।

केन्द्रत्रिकोणाधिपयोरेकत्त्वे योगकारिता।
अन्यत्रिकोणपतिना सम्बन्धो यदि किं परम्।।२०।।

अन्वय - केन्द्रत्रिकोणाधिपयोः एकत्त्वे योगकारिता यदि अन्यत्रिकोणपतिना सम्बन्धः परं किम्।

अर्थ - केन्द्रत्रिकोणाधिपयोः = केन्द्र एवं त्रिकोण के स्वामी के; एकत्त्वे = एक होने पर; योगकारिता = योगकारकता होती है। यदि = यदि; (उसका) अन्यत्रिकोणपतिना = दूसरे त्रिकोणेश से; सम्बन्धः = सम्बन्ध (हो तो) परं = इससे श्रेष्ठ; किम् = और क्या होगा?

यदि केन्द्रे त्रिकोणे वा निवसेतां तमोग्रहौ।
नाथेनान्यतरेणापि सम्बन्धाद्योगकारकौ।।२१।।

अन्वय - यदि तमाग्रहौ केन्द्रे त्रिकोणे वा निवसेतां अन्यतरेण नाथेन सम्बन्धात् अपि योगकारकौ (भवेताम्)।

अर्थ - यदि = यदि; तमोग्रहौ = राहु एवं केतु; केन्द्रे = केन्द्र में; त्रिकोणे वा = अथवा त्रिकोण में; निवसेतां = स्थित हों (तब); अन्यतरेण नाथेन = अन्यतर के स्वामी से (केन्द्र में होने पर त्रिकोणेश से और त्रिकोण में होने पर केन्द्रेश से); सम्बन्धात् = सम्बन्ध के कारण;

योगकारकौ भवेताम् = योगकारक होते हैं।

धर्मकर्माधिनेतारौ रन्ध्रलाभाधिपौ यदि।
तयोः सम्बन्धमात्रेण न योगं लभते नरः।।२२।।

अन्वय - यदि धर्मकर्माधिनेतारौ रन्ध्रलाभाधिपौ (तदा) तयोः सम्बन्धमात्रेण नरः योगं न लभते।

अर्थ - यदि = यदि; धर्मकर्माधिनेतारौ = त्रिकोण एवं केन्द्र के स्वामी; रन्ध्रलाभाधिपौ = अष्टम एवं लाभ स्थान के स्वामी (भी हों, तो); तयोः = उनके; सम्बन्धमात्रेण = केवल सम्बन्ध के कारण; नरः = मनुष्य; योगं = राजयोग का फल; न लभते = नहीं प्राप्त करता है।

अष्टमं ह्यायुषः स्थानमष्टमादष्टमं च यत्।
तयोरपि व्ययस्थानं मारकस्थानमुच्यते।।२३।।
तत्राप्याद्यव्ययस्थानाद् द्वितीयं बलवत्तरम्।।२३$^1/2$।।

अन्वय - अष्टमं हि आयुषः स्थानं, अष्टमात् अष्टमं च यत् अपि आयुषः स्थानं। तयोरपि व्ययस्थानं मारकस्थानं उच्यते। तत्रापि आद्यव्ययस्थानात् द्वितीयं बलवत्तरं (भवति)।

अर्थ - अष्टमं = अष्टमभाव; हि = निश्चित रूप से, आयुषः स्थानं = आयु का स्थान (है); अष्टमात् = अष्टमस्थान से; अष्टमं च यत् = जो अष्टम अर्थात् तृतीय भाव है; अपि = निश्चित रूप से; आयुषः स्थान = आयु का स्थान है। तयोरपि = उन दोनों के ही; व्ययस्थानं = बारहवें स्थान - अर्थात् सप्तम एवं द्वितीय भाव को; मारक स्थानं = मारक स्थान; उच्यते = कहते हैं।

तत्रापि = उन दोनों में भी; आद्यव्यय - स्थानात् = सप्तम स्थान से; द्वितीयं = द्वितीय स्थान; बलवत्तरं = बलवान होता है।

तदीशितुस्तत्र गताः पापिनस्तेन संयुताः।।२४।।

तेषां दशाविपाकेषु सम्भवे निधनं नृणाम्।
तेषामसम्भवे साक्षाद् व्ययाधीशदशास्वपि।।२५।।

अन्वय - सम्भवे (सति) तदीशितुः, तत्र गताः पापिनः तेन संयुताः (पापिनः) तेषां दशाविपाकेषु नृणां निधनम्। तेषां सम्भवे साक्षाद् व्ययाधीशदशास्वपि (निधनं भवेत्)

अर्थ - सम्भवे = सम्भावना हो पर, तदीशितुः = द्वितीयेश एवं सप्तमेश की; तत्र गताः पापिनः = द्वितीय-सप्तमस्थ पापीग्रह, तेन संयुता = मारकेश से युक्त पापी ग्रह; तेषां = उनकी; दशाविपाकेषु = दशा-अन्तर्दशा में; नृणां = मनुष्यों की; निधनं = मृत्यु (होती है)। तेषां = उन (पूर्वोक्त मारकेशों) के, असम्भवे = असम्भव होने पर; साक्षाद् = लग्न से; व्ययाधीश दशास्वपि = व्ययेश की दशा में भी (मृत्यु होती है)।

अलाभे पुनरेतेषां सम्बन्धेन व्ययेशितुः।
क्वचिच्छुभानां च दशा ह्यष्टमेशदशासु च।।२६।।

अन्वय - पुनः एतेषां अलाभे (सति) व्ययेशितुः सम्बन्धेन क्वचिद् शुभानां (क्वचिच्च) अष्टमेश दशासु च (निधनं भवति)।

अर्थ - पुनः = और; एतेषां अलाभे = इनके न मिलने पर; व्ययेशितुः = व्ययेश के; सम्बन्धेन = सम्बन्ध के कारण; क्वचिद् = कभी; शुभानां = शुभग्रहों की (क्वचिच्च = और कभी) अष्टमेशदशासु च = अष्टमेश की दशा में मृत्यु होती है।

केवलां च पापानां दशासु निधनं क्वचिद्।
कल्पनीयं बुधैर्नृणां मारकाणामदर्शने।।२७।।

अन्वय - मारकाणां अदर्शने (सति) केवलानां च पापानां दशासु बुधैः क्वचिद् निधनं कल्पनीयम्।

अर्थ - मारकाणां = मारकग्रहों के; अदर्शने = (संभावना काल में) न मिलने पर; केवलानां च पापानां = केवल पापग्रहों की; दशासु = दशा में; बुधैः = विद्वानों को, क्वचिद् = कभी-कभी; निधनं = मृत्यु की कल्पनीयं = कल्पना करनी चाहिए।

मारकैः सह सम्बन्धान्निहन्ता पापकृच्छनिः।
अतिक्रम्येतरान् सर्वान् भवत्येव न संशयः।।२८।।

अन्वय – पापकृत् शनिः मारकैः सह सम्बन्धात् सर्वान् इतरान् अतिक्रम्य निहन्ता भवति, संशयः न।

अर्थ – पापकृत = त्रिषडायाधीश; शनि = शनैश्चर; मारकैः सह = मारकेशों के साथ; सम्बन्धात् = सम्बन्ध होने के कारण; सर्वान् इतरान् = सभी मारको का; अतिक्रम्य =अतिक्रमण कर; निहन्ता = मारक होता है; संशयः न = इसमें सन्देह नहीं है।

न दिशेयुर्ग्रहाः सर्वे स्वदशासु स्वभुक्तिषु।
शुभाशुभफलं नृणामात्मभावानुरूपतः।।२९।।
आत्मसम्बन्धिनो ये च ये वा निजसधर्मिणः।
तेषामन्तर्दशास्वेव दिशन्ति स्वदशाफलम्।।३०।।

अन्वय – सर्वे ग्रहाः स्वदशासु स्वभुक्तिषु नृणां आत्मभावानुरूपतः शुभाशुभफलं न दिशेयुः।

ये च आत्मसम्बन्धिनः ये वा निजसधर्मिणः तेषां अन्तर्दशासु एव स्वदशाफलं दिशेयुः।

अर्थ – सर्वे = सभी, ग्रहाः = ग्रह; स्वदशासु = अपनी महादशा में; स्वभुक्तिषु = अपनी अन्तर्दशा में; नृणां = मनुष्यों को; आत्मभावानुरूपतः = आत्मभावानुरूपी; शुभाशुभफलं = शुभ–अशुभ फल; न दिशेयुः = नहीं देते हैं। ये च = और जो; आत्मसम्बन्धिनः = अपने सम्बन्धी, ये वा = अथवा जो; निजसधर्मिणः = अपने सधर्मी (हैं), तेषां = उनकी; अन्तर्दशासु = अन्तर्दशा में; स्वदशाफलं = अपनी दशा का फल; दिशेयुः = देते हैं।

इतरेषां दशानाथविरूद्धफलदायिनाम्।
तत्तत्फलानुगुण्येन फलान्यूह्यानि सूरिभिः।।३१।।

अन्वय – सूरिभिः दशानाथविरूद्धफलदायिनाम् इतरेषां तत्तत्फलानुगुण्येन फलानि ऊह्यानि।

अर्थ – सूरिभिः = विद्वानों को; दशानाथविरूद्धफलदायिनां = दशाधीश के स्वभाव के विरूद्ध फलदायी; इतरेषां = अन्य ग्रहों की

(भुक्ति में); तत्तत्फलानुगुण्येन = उन दोनों के गुण-धर्मो का आकलन कर; फलानि = दशाफल का; ऊह्यानि = निर्धारण करना चाहिए।

स्वदशायां त्रिकोणेशभुक्तौ केन्द्रपतिः शुभम्।
दिशेत्सोऽपि तथा नो चेदसम्बन्धेन पापकृत।।३२।।

अन्वय - केन्द्रपतिः स्वदशायां त्रिकोणेशभुक्तौ शुभं दिशेत्, सोऽपि तथा नो चेत् असम्बन्धेन पापकृत् (भवति)।

अर्थ - (सम्बन्ध होने पर) केन्द्रपतिः = केन्द्रेश; स्वदशायां = अपनी महादशा में; त्रिकोणेशभुक्तौ = त्रिकोणेश की अन्तर्दशा में; शुभं = शुभफल; दिशेत् = देता है; सोऽपि = वह त्रिकोणेश भी अपनी दशा एवं केन्द्रेश की भुक्ति में शुभ फल देता है। तथा नो चेद् = यदि तथा (वैसा) न हो-अर्थात् उन दोनों में सम्बन्ध न हो तो; असम्बन्धेन = सम्बन्ध न होने के कारण; पापकृत = पाप फलदायक; (भवति = होता है)।

आरम्भो राजयोगस्य भवेन्मारकभुक्तिषु।
प्रथयन्ति तमारभ्य क्रमशः पापभुक्तयः।।३३।।

अन्वय - (यदि) मारकभुक्तिषु राजयोगस्य आरम्भः भवेत् (तदा) पापभुक्तयः तमारभ्य क्रमशः प्रथयन्ति।

अर्थ - (यदि योगकारक ग्रह की दशा में) मारकभुक्तिषु = मारकग्रह की अन्तर्दशा आने पर; राजयोगस्य = राजयोग का; आरम्भो भवेत् = प्रारम्भ होता है (तदा = तब) पापभुक्तयः = पाप ग्रहों की भुक्तियाँ; तमारभ्य = उसका प्रारम्भ कर; क्रमशः प्रथयन्ति = धीरे-धीरे बढ़ाती है।

तत्सम्बन्धिशुभानां च तथा पुनरसंयुजाम्।
शुभानां तु समत्त्वेन संयोगो योगकारिणाम्।।३४।।

अन्वय - (तथा) च तत्सम्बन्धिशुभानां पुनः असंयुजां योगकारिणां शुभानां तु संयोगः समत्त्वेन (स्याद्)।

अर्थ - तथा च = और; तत्सम्बन्धिशुभानां = उस (योग कारक

के) सम्बन्धी शुभ; पुनः = अथवा; असंयुजां = असम्बन्धी शुभग्रह की अन्तर्दशा में; योगकारिणां = योगकारक ग्रहों का फल; समत्त्वेन = सम रूप में; (स्याद् = होता है)

शुभस्यास्य प्रसक्तस्य दशायां योगकारकाः।
स्वभुक्तिषु प्रयच्छन्ति कुत्रचिद्योगजं फलम्।।३५।।

अन्वय - अस्य प्रसक्तस्य शुभस्य दशायां योगकारकाः स्वभुक्तिषु कुत्रचिद् योगजं फलं प्रयच्छन्ति।

अर्थ - अस्य = योगकारक ग्रह के; प्रसक्तस्य = सम्बन्धी; शुभस्य = शुभ ग्रह की; दशायां = महादशा में; योगकारकाः = योगकारक ग्रह; स्वभुक्तिषु = अपनी अन्तर्दशा में; कुत्रचिद् = कभी-कभी या कुछ-कुछ; योगजं फलं = योगजफल; प्रयच्छन्ति = देते हैं।

तमोग्रहौ शुभारूढावसम्बन्धेन केनचित्।
अन्तर्दशानुसारेण भवेतां योगकारकौ।।३६।।

अन्वय - शुभारूढौ तमोग्रहौ केनचित् असम्बन्धेन अन्तर्दशानुसारेण योगकारकौ भवेताम्।

अर्थ - शुभारूढौ = त्रिकोण में स्थित मतान्तर - चतुर्थ दशम में स्थित; तमोग्रहौ = राहु एवं केतु; केनचिद् = किसी से; असम्बन्धेन = सम्बन्ध न होने पर; अन्तर्दशानुसारेण = योगकारक ग्रहों की अन्तर्दशा के अनुसार; योगकारकौ = योगकारक; भवेताम् = होते हैं।

पापा यदि दशानाथाः शुभानां तदसंयुजाम्।
भुक्तयः पापफलदास्तत्संयुक्शुभभुक्तयः।।३७।।
भवन्ति मिश्रफलदा भुक्तयो योगकारिणाम्।
अत्यन्तपापफलदा भवन्ति तदसंयुजाम्।।३८।।

अन्वय - यदि दशानाथाः पापाः स्युः तदा तदसंयुजां शुभानां भुक्तयः पापफलदाः भवन्ति, तत्संयुक्शुभभुक्तयः मिश्रफलदाः भवन्ति, तदसंयुजां योगकारिणां भुक्तयः तु अत्यन्तपापफलदाः भवन्ति।

अर्थ - यदि दशानाथाः = दशा के स्वामी; पापाः = पापग्रह; स्युः = हो; तदा = तब; तदसंयुजां = उनसे असम्बन्धी, शुभानां = शुभ ग्रहों की; भुक्तयः = अन्तर्दशाएं; पापफलदाः = पापफलदायक; भवन्ति = होती हैं। तत्संयुक् शुभभुक्तयः = उनके सम्बन्धी शुभ ग्रहों की अन्तर्दशायें; मिश्रफलदाः = मिश्र फल देने वाली होती हैं। (और) तदसंयुजां = उनके असम्बन्धी; योगिकारिणां = योगकारक ग्रहों की; भुक्तयः = अन्तर्दशायें; तु = तो; अत्यन्तपापफलदाः = अत्यधिक पापफलदायक; भवन्ति = होती हैं।

सत्यपि स्वेन सम्बन्धे न हन्ति शुभभुक्तिषु।
हन्ति सत्यप्यसम्बन्धे मारकः पापभुक्तिषु।।३९।।

अन्वय - मारकः स्वेन सम्बन्धे सत्यपि शुभभुक्तिषु न हन्ति, असम्बन्धे सति अपि पापभुक्तिषु हन्ति।

अर्थ - मारकः = मारकग्रह; स्वेन = अपना; सम्बन्धे सति अपि = सम्बन्ध होने पर भी; शुभभुक्तिषु = शुभग्रह की अन्तर्दशा में; न हन्ति = नहीं मारता। (किन्तु) असम्बन्धे सति अपि = सम्बन्ध न होने पर भी, पापभुक्तिषु = पापग्रह की अन्तर्दशा में; हन्ति = मार देता है।

परस्परदशायां स्वभुक्तौ सूर्यजभार्गवौ।
व्यत्ययेन विशेषेण प्रदिशेतां शुभाशुभम्।।४०।।

अन्वय - सूर्यजभार्गवौ परस्परदशायां स्वभुक्तौ व्यययेन विशेषेण शुभाशुभं प्रदिशेताम्।

अर्थ - सूर्यजभार्गवौ = शनि और शुक्र; परस्पर दशायां = एक दूसरे की दशा में; स्वभुक्तौ = अपनी अन्तर्दशा में; व्यययेन = व्यत्यय से (शुक्र का फल शनि तथा शनि का फल शुक्र); विशेषण = विशेष रूप से; शुभाशुभं = शुभ-अशुभ फल; प्रदिशेताम् = देते हैं।

कर्मलग्नाधिनेतारावन्योन्याश्रयसंस्थितौ।
राजयोगाविति प्रोक्तं विख्यातो विजयी भवेत्।।४१।।

अन्वय - कर्मलग्नाधिनेतारौ अन्योन्याश्रयसंस्थितौ (तदा) राजयोगौ

इति प्रोक्तं विख्यातो विजयी भवेत्।

अर्थ - कर्मलग्नाधिनेतारौ = दशमेश एवं लग्नेश; अन्योन्याश्रयसंस्थितौ = एक-दूसरे के भाव में स्थित हो (तदा = तब) राजयोगौ = दो राज योग; इति प्रोक्तं = कहलाते हैं; (इसमें उत्पन्न); विख्यातः = सुप्रसिद्ध; विजयी = विजय प्राप्त करने वाला होता है।

धर्मलग्नाधिनेतारावन्योन्याश्रयसंस्थितौ।
राजयोगाविति प्रोक्तं विख्यातो विजयी भवेत्।।४२।।

अन्वय - धर्मलग्नाधिनेतारौ अन्योन्याश्रयसंस्थितौ (तदा) राजयोगौ इति प्रोक्तं (तत्र जातः) विख्यातः विजयी (च) भवेत्।

अर्थ - धर्मलग्नाधिनेतारौ = नवमेश एवं लग्नेश; अन्योन्याश्रय-संस्थितौ = एक-दूसरे के स्थान में हो; (तदा = तब) राजयोगौ = दो राजयोग (होते हैं) (इनमें उत्पन्न व्यक्ति); विख्यातः = प्रख्यात; विजयी = विजयी; भवेत् = होता है।

संज्ञाध्याय

1. मंगलाचरण

लघुपाराशरी का प्रारम्भ, प्राच्यविद्याओं परम्परा के अनुसार मंगलाचरण से किया गया है इस मंगलाचरण में ग्रन्थकार ने वाग्देवी की वन्दना इस प्रकार की है-''उपनिषदों द्वारा अन्त में सिद्ध, ब्रह्मा की अन्त:पुरवासिनी, गुलाबी होठों वाली एवं वीणाधारिणी (वाग्देवी) की, जो अनिर्वचनीय तेजस्वरूपा है, हम उपासना करते हैं।''

ग्रन्थारम्भ में ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए मंगलाचरण किया जाता है। किसी कार्य में विघ्न एवं बाधाओं का आना स्वाभाविक है। जो बार-बार आहत करे, उसे विघ्न और जो बार-बार रुकावट करे उसे बाधा कहते हैं। युग एवं उसके परिवर्तनशील स्वभाव को जानने वाले ऋषियों तथा मनीषी आचार्यों को यह बात पहले से ज्ञात था कि समय के परिवर्तन से परिस्थितियों में और परिस्थितियों के परिवर्तन से शास्त्र के नियमों एवं सिद्धांतों में परिवर्तन हो सकता है। अत: प्रतिपादित नियमों एवं सिद्धांतों को सार्वभौम एवं सार्वकालिक बनाने के लिए उन्होंने शास्त्र/ग्रन्थ की रचना से पूर्व अपने-अपने इष्टदेव से प्रार्थना की।

जब भी कोई व्यक्ति विघ्न-बाधाओं से शंकित या ग्रस्त हो अथवा जब कभी भी दुविधा या असुविधा के क्षण हों, तो सभी धर्मों के लोग अपने-अपने धर्म के अनुसार ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, और बहुधा प्रार्थना के परिणामस्वरूप उन्हें विघ्नबाधाओं से मुक्ति मिलती है। अत: विश्वभर में प्रत्येक अच्छे एवं महत्वपूर्ण कार्य से पहले ईश्वर की प्रार्थना का प्रचलन आज भी देखने को मिलता है। वस्तुत: मंगलाचरण, उस प्रार्थना का नाम है, जो किसी महत्वपूर्ण कार्य से पहले की जाती है। और

यह प्रार्थना मंगल-कामना पर आधारित होने के कारण मंगलाचरण कहलाती है।

लघुपाराशरी के मंगल-श्लोक में ग्रन्थकर्त्ता ने ज्ञान की अधिष्ठात्री वाग्देवी की वन्दना की है। उपनिषदों में गम्भीर चिन्तन एवं विवेचन के बाद, जिस ज्ञान का प्रतिपादन किया गया है, उसके सगुण स्वरूप या उस ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी को सरस्वती कहते हैं। तात्पर्य यह है कि 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'तत्त्वमसि' 'अयमात्मा ब्रह्म' 'सोऽहम्' एवं 'अहं ब्रह्मास्मि'[१]-प्रभृति श्रुतियों के द्वारा ब्रह्म के जिस नित्य, शुद्ध, अनादि, अनन्त एवं अनिवर्चनीय स्वरूप का निरूपण किया गया है, उस तत्त्वज्ञान की सगुण मूर्ति को वाग्देवी कहा जाता है। मंगल-श्लोक में देवी के अनिवर्चनीय तेज स्वरूपा, रक्तवर्णाधरोष्ठा तथा वीणाधारिणी आदि सभी विशेषण वाग्देवी के सगुण स्वरूप के बोधक हैं।

2. पाराशरी होरा

महर्षि पाराशर भारतीय ज्योतिष के प्रवर्तकों में अग्रगण्य हैं। इस शास्त्र के प्रवर्तक अन्य ऋषियों के वचन यत्र तत्र विविध प्रसंगों में मिलते हैं। किन्तु उनका कोई ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है। ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तकों में से केवल महर्षि पाराशर ही ऐसे है, जिनका मानक ग्रन्थ होरा शास्त्र, पाराशरी होरा या वृहद्पाराशर होराशास्त्र के नाम से आज भी उपलब्ध है। उत्तर से लेकर दक्षिण तक तथा पूर्व से लेकर पश्चिम तक सम्पूर्ण भारत में इस ग्रन्थ का प्रचलन एवं मान्यता इस बात की साक्ष्य है कि पाराशरी होरा भारतीय ज्योतिषशास्त्र का मानक एवं प्रामाणिक ग्रन्थ है। फलित ज्योतिष में परवर्ती सभी ग्रन्थ पाराशरी होरा का अनुकरण एवं अनुसरण करते हुए दिखलाई देते हैं। इस प्रकार पाराशर के विचार, नियम एवं सिद्धांत परवर्ती आचार्यों के आदर्श ही नहीं उनके लिए उपजीव्य भी हैं।

---

१. देखिए- वृहदारण्यकोपनिषद्

काल की प्रचलित एवं सर्वाधिक उपयोगी इकाई-'अहोरात्र' (दिन-रात) शब्द के प्रथम वर्ण 'अ' तथा अन्तिम वर्ण 'त्र' का लोप होने से 'होरा' शब्द निष्पन्न होता है।[१] वस्तुतः होराशास्त्र कालाश्रितज्ञान है, जो मेषादि-द्वादश राशियों में ग्रहों की गतिविधियों के माध्यम से जीवन के घटनाक्रम का पूर्वानुमान करने में हमारी सर्वाधिक सहायता करता है। होराशास्त्र की बहुसम्मत परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है-"कि जीवन के घटनाक्रम को काल के गुण धर्मों के आधार पर जानने और पहिचानने के लिए हमारे महर्षियों एवं मनीषी आचार्यों ने जिन तर्कपूर्ण नियमों, सिद्धांतों एवं प्रविधियों को आविष्कृत एवं विकसित किया-उनके समग्र संकलन को होराशास्त्र कहते हैं।" यह एक ऐसी विद्या है- जिसके द्वारा जातक (व्यक्ति) के जीवन में कब-कब, कहाँ-कहाँ और क्या-क्या घटित हो रहा है या होने वाला है? उसे सही-सही रूप से पहले से ही जाना जा सकता है।

एक सौ अध्यायों में विरचित पाराशरी होरा फलित ज्योतिष का ऐसा अनूठा एवं स्तरीय ग्रन्थ है, जिसमें इस शास्त्र के आधारभूत सिद्धांतों का विस्तार से साङ्गोपाङ्ग वर्णन एवं विवेचन किया गया है। जातक शास्त्र का ऐसा कोई भी विषय नहीं है, जो पराशर के विचार और दृष्टि से अछूता रह गया है। इसीलिए वराह मिहिर आदि सभी आचार्य एवं भट्टोत्पल प्रभृति सभी व्याख्याकार पराशर के विचारों एवं सिद्धांतों को शिरोधार्य करते हैं। कुछ लोगों के मन में यह भ्रान्त धारणा है कि जैमिनी का मत पाराशर के मत से भिन्न है। किन्तु यह भ्रान्तिमात्र है। वस्तुतः जैमिनी के सभी नियम एवं सिद्धांत पाराशर की परम्परा में समग्र रूप से समाहित है।

जैसे वेदों की ऋचाओं का स्वतः प्रामाण्य है। उसी प्रकार फलित शास्त्र में पाराशर के वचन भी स्वयं सिद्ध हैं, उन्हें प्रमाणित सिद्ध करने के लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। यही कारण है कि

---

१. होरेत्यहोत्रविकल्पमेके वाञ्छन्ति पूर्वापरवर्णलोपात्।
बृहज्जातक अ० १ श्लोक ३ ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स, वाराणसी।

पाराशर का प्रभाव केवल परवर्ती जातक ग्रन्थों तक सीमित नहीं रहा, अपितु वह ताजिक एवं प्रश्नग्रन्थों पर भी समान एवं स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

3. होराशास्त्र की दार्शनिक-पृष्ठभूमि

होराशास्त्र की रचना वैदिक कर्मवाद एवं पुनर्जन्मवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर हुई है। वैदिक दर्शनों के अनुसार आत्मा अमर है, इसका कभी नाश नहीं होता। केवल कर्मों के अनादि प्रवाह के कारण यह आत्मा अनेक योनियों में विचरण करता है। प्राणी मात्र के शरीर में स्थित यह आत्मतत्त्व-नित्य, निष्क्रिय स्वतन्त्र, वशी, विभु एवं निर्विकार होते हुए भी कर्मबन्ध के प्रभाववश-विनाशशील, सक्रिय, परतन्त्र, दुःखी, जन्म-मृत्यु, जरा एवं व्याधियों से युक्त प्रतीत होता है।

आत्मा का अनादिकालीन कर्म-प्रवाह के कारण सूक्ष्म शरीर, कार्मण-शरीर एवं भौतिक-शरीर के साथ संबंध रहता है। जब एक समय में आत्मा भौतिक शरीर का त्याग करता है, तब यह सूक्ष्म शरीर में रहता है और कार्मण-शरीर की सहायता से कर्मानुबन्ध के अनुसार पुनः नया भौतिक-शरीर प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार जन्म-मृत्यु का अनवरत-चक्र तब तक चलता रहता है, जब तक कर्मवाह रुक नहीं पाता। और जब चित्तवृत्तियों का निरोध होने पर समाधिस्थ हो जाने से कर्मप्रवाह रुक जाता है, तब संचित कर्मों का फल भोगकर आत्मा जन्म-मृत्यु के बंधन से मुक्त हो जाता है। इसको ही मोक्ष कहते हैं। यदि मुक्ति न हो तो जन्म-मृत्यु का अनवरत-क्रम प्रलय काल तक चलता रहता है।

भौतिक शरीर की एक प्रमुख विशेषता यह है, कि इसमें प्रवेश करते ही आत्मा जन्म-जन्मान्तरों के संचित संस्कारों की निश्चित-स्मृति को खो देता है। यही नहीं इस भौतिक-शरीर में आते ही वह निष्क्रिय होते हुए सक्रिय, स्वतन्त्र होते हुए भी परिस्थितियों से परतन्त्र, वशी होते हुए भी दुःखदायक भावों से आक्रान्त, विभु या सर्वगत होते हुए भी सीमित और निर्विकार होते हुए भी सुख-दुःख आदि विकारों का अनुभव

करने लगता है। नित्य, शुद्ध एवं बुद्ध आत्मा को इस स्थिति में पहुँचाने वाला एकमात्र कारण है-कर्मानुबन्ध।

कार्य को करने के बाद कर्ता को अनिवार्य एवं अपरिहार्य रूप से मिलने वाला परिणाम-कर्मानुबन्ध कहलाता है और यही कर्मानुबन्ध कृतकर्मों के शुभाशुभत्व के अनुसार आत्मा को इष्टानिष्ट योनियों में ले जाता है। वस्तुतः आत्मा की स्वतन्त्रता या वशीत्व केवल कार्य करने में है-वह चाहे तो अच्छा या बुरा कोई भी कार्य करे। परन्तु कार्य करने के तुरन्त बाद वह उसके अपरिहार्य फल से अनुबन्धित हो जाता है। तात्पर्य यह है कि आत्मा कर्म करने या न करने में वशी है, किन्तु कर्म करने के बाद उसका फल भोगने में वह वशी नहीं हैं। क्योंकि किये गये कर्मों का फल भोगे बिना उनका क्षय नहीं होता।[१]

आत्मा[२] के द्वारा जन्म-जन्मान्तरों में किये गये शुभ या अशुभ कर्मों का परिणाम उसको इस जीवन में किस क्रम से, कब-कब और क्या

---

१. नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। -सुभाषित भाण्डागार।

२. यद्यपि आत्मा निष्क्रिय है तथापि वह शरीर मन एवं इन्द्रियों को चैतन्य प्रदान करने के कारण कर्ता कहा गया है। वास्तविकता में मन अचेतन तथा क्रियाशील है और आत्मा क्रियाशून्य तथा चैतन्य प्रदान करने वाला है। तात्पर्य यह है कि आत्मा के सम्पर्क मात्र से चेतना प्राप्त कर मन समस्त क्रिया-कलापों को करता है। किन्तु यदि आत्मा मन को चेतना प्रदान न करे तो क्रियाशील मन भी निष्क्रिय हो जाता है। इसलिए मन की क्रियाशीलता में आत्मा का सम्पर्क हेतु है। परिणामतः मन के द्वारा किये गये कर्मों का वही कर्ता तथा उन कर्मों के फल का उपभोक्ता है। यदि आत्मा को कर्ता न माना जाय तो सुख-दुःख, गति-अगति, ज्ञान-शास्त्र, जन्म-मृत्यु एवं बन्धन-मोक्ष आदि कुछ भी नहीं होगा। इसीलिए वैदिक दर्शनों में कर्मवाद के सिद्धांतानुसार आत्मा को कर्त्ता माना गया है। जैसे-कुम्हार के बिना मिट्टी, डण्डा एवं चाक आदि के रहने पर भी घड़ा नहीं बनता या राजमिस्त्री के बिना ईंट, सीमेंट लोहा एवं लकड़ी आदि के होने पर भी मकान नहीं बनता। ठीक उसी प्रकार मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों के समूह मात्र से न तो शरीर बनता है और न ही शरीर में गतिशीलता आती है। अतः शरीर की उत्पत्ति में आत्मा कारण है और वह तन एवं मन के द्वारा किये गये कर्मों का उपचारत्वेन कर्ता भी है।

मिलेगा? इसको जानने का एकमात्र साधन है- होराशास्त्र। जैसे दीपक अन्धकार में रखे हुए पदार्थों का बोध करा देता है, ठीक उसी प्रकार यह शास्त्र जन्म-जन्मान्तरों में किये गये शुभ या अशुभ कर्मों के परिणामों को हृदयंगम करा देता है।[१]

महर्षि पराशर ने अपने होराशास्त्र में जन्मकुण्डली, द्वादश भाव एवं राशियों में स्थित ग्रहों, विविध ग्रहयोगों, ग्रहों की दशा एवं उनके गोचरीय परिभ्रमण आदि के अनुसार मानव जीवन में आने वाले सुख-दुःख, उन्नति-अवनति, लाभ-हानि, इष्टानिष्ट एवं भाग्योदय आदि जीवन के समस्त घटनाचक्र को जानने और पहिचानने के अनेक सामान्य नियम बतलाये हैं। यह फलित ज्योतिष शास्त्र का सबसे महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी ग्रन्थ है। वस्तुतः होरा शास्त्र दैवज्ञ की वह दिव्य दृष्टि है, जिससे वह विधाता के द्वारा मनुष्य के ललाट पर लिखी भाग्य-पंक्ति (भाग्य के लेखा-जोखा) को आसानी से पढ़कर हृदयंगम कर सकता है।[२]

4. उडुदाय प्रदीप

महर्षि पाराशर के सुयोग्य शिष्यों ने उनके होरा शास्त्र का गम्भीरतापूर्वक मनन, परिशीलन एवं अनुसरण कर उडुदाय प्रदीप या लघुपाराशरी की रचना की है। ४२ श्लोकों के लघुतर कलेवर में लिखा गया यह ग्रन्थ गागर में सागर के समान है।

उडुदाय-प्रदीप का अर्थ है-उडु=नक्षत्र/नक्षत्रदशा, दाय=आयुर्दाय, प्रदीप=प्रदर्शक-अर्थात् नक्षत्रदशा के आधार पर मनुष्यों के आयुर्दाय को प्रकाशित करने वाला ग्रन्थ। वस्तुतः इस ग्रन्थ में जन्मनक्षत्र के आधार पर

---

१. यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पंक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव।।
—लघुजातक अ० १ श्लोक २-मास्टर खेलाड़ी लाल एण्ड सन्स, वाराणसी

२. विधात्रा लिखिता याऽसौ ललाटेऽक्षरमालिका।
दैवज्ञस्तां पठेद् व्यक्तं होरा निर्मलचक्षुषा।।
—सारावली अ० २ श्लोक १-मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।

विंशोत्तरी दशा, अन्तरदशा एवं प्रत्यन्तरदशा जानकर, मारकेश ग्रहों का निर्णय कर मनुष्य के जीवन की कालावधि या उसकी आयु का ज्ञान किया जा सकता है।

ज्योतिष शास्त्र के मनीषियों का मत है कि जन्म-जन्मान्तरों में विहित कर्मों का फल भोगने के लिए इस जन्म में प्राणी को जो जीवन-काल मिला है, उसको आयु कहते हैं। यह आयु प्रारब्ध आदि कर्मों के प्रभाववश दीर्घ, मध्य या अल्प होती है।[१]

आयु की ठीक-ठीक जानकारी के बिना जीवन के घटनाचक्र को नहीं जाना जा सकता। किन्तु आयु की सही जानकारी करना भी एक जटिल प्रश्न या गूढ़ पहेली है। पराशर एवं जैमिनी आदि महर्षियों ने इसका हल करने के लिए सुनिश्चित सिद्धांत बतलाये हैं।

उडुदाय प्रदीप में इसी गूढ़ प्रश्न का समाधान करने का प्रयास किया गया है,[२] जिससे दैवज्ञ जातक के जीवन कालावधि-अर्थात् उसकी आयु को भली भाँति जानकर उसके जीवन में घटित होने वाली घटनाओं की यथार्थ रूप में भविष्यवाणी कर सके।

5. अधिकारी

इस ग्रन्थ को पढ़ने का अधिकारी वह व्यक्ति है, जो अनेक होरा/जातक ग्रन्थों के मर्म को जानता हो, ग्रह गणित के सिद्धांतों को समझता हो; संहिता ग्रन्थों का पारंगत हो और वेध विधि में निष्णात हो। यह अधिकारी की शास्त्रीय पृष्ठभूमि है।

इसके साथ-साथ उसके व्यक्तित्व का विचार पाराशरी होरा में इस प्रकार मिलता है- यह शास्त्र शान्त चित्त वाले, गुरु भक्त, सदैव सत्यभाषी एवं आस्तिक (ईश्वर में विश्वास रखने वाले) शिष्य को ही सिखाना

---

१. देखिए-प्रश्नमार्ग अ० ९ श्लोक ४५
-डॉ० शुकदेव चतुर्वेदी, रंजन पब्लिकेशन, दिल्ली।

२. विस्तृत जानकारी के लिए देखिए-अनुच्छेद ४३-४८

चाहिए। कभी भूल कर भी गुरु में भक्ति न रखने वाले, नास्तिक या शठ (धूर्त) व्यक्ति को यह शास्त्र नहीं बतलाना चाहिए; अन्यथा अनेक प्रकार के दु:ख मिलते हैं।[१]

6. प्रयोजन

वृहद् पाराशर होराशास्त्र जैसे आदर्श एवं मानक ग्रन्थ के होने पर भी लघुपाराशरी की रचना का प्रयोजन क्या है? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। वस्तुत: पाराशरी होरा एक सौ अध्यायों तथा लगभग ४५०० श्लोकों में उपनिबद्ध एक विशाल सन्दर्भ ग्रन्थ है। समय की कमी एवं धारणा शक्ति की कमी होने के कारण जन सामान्य के लिए इसका पूरा लाभ नहीं मिल पाता। अत: पाराशर के सुयोग्य शिष्यों ने पाराशरी होरा का गम्भीरतापूर्वक मनन, परिशीलन एवं अनुसरण कर इसका सारतत्त्व लघुपाराशरी के रूप में उपनिबद्ध किया है।

होरा ग्रन्थों में ग्रहों का फल तीन प्रकार का मिलता है- (i)सामान्य फल (ii) योग फल एवं (iii) स्वाभाविक फल। इन तीनों प्रकार के फलों में सामान्य तथा योग फल में विरोधाभास मिलता रहता है, जब कि आत्मभावानुरूपी या स्वाभाविक फल में उतना विरोधाभास नहीं मिलता। लघुपाराशरी में सामान्य फल एवं योग फल को छोड़कर ग्रहों के स्वाभाविक फल का वर्णन एवं विवेचन किया गया है। इस फल के माध्यम से जीवन के घटनाचक्र का विचार सरलता से किया जाता है। अत: लघुपाराशरीकार ने "दैवविदां मुदे" अर्थात् दैवज्ञों की प्रसन्नता को इस रचना का मुख्य प्रयोजन बतलाया है। वस्तुत: कम समय, कम श्रम एवं कम शक्ति लगाकर अधिकतम अभीष्ट को प्राप्त करना प्रसन्नता एवं

---

१. "शान्ताय गुरुभक्ताय सर्वदा सत्यवादिने।
आस्तिकाय प्रदातव्यं तत: श्रेयो ह्यवाप्स्यति।।
न देयं परशिष्याय नास्तिकाय शठाय च।
दत्ते प्रतिदिनं दु:खं जायते नात्र संशय च।।
बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० १ श्लोक ७-८

—मास्टर खेलाड़ी लाल संकटाप्रसाद-वाराणसी।

संतुष्टि देता है। इसलिए मात्र ४२ श्लोकों के लघुतम कलेवर को सरलतापूर्वक हृदयंगम कर उसके आधार पर सही फलादेश करना दैवज्ञ समाज के लिए अनेक समस्याओं से मुक्ति का मार्ग है।

7. फल क्या है?

भारतीय ज्योतिष में फल का अर्थ है- कर्मफल। कर्मफल शब्द का पूर्वपद् लोप होने से फल जन्म-जन्मान्तरों में अर्जित कर्मों के फल का वाचक एवं बोधक है।[१]

जन्म-जन्मान्तरों में अर्जित कर्मों का कर्मवाद् के अनुसार इस प्रकार वर्गीकरण किया जाता है। वैदिक दर्शनों के अनुसार कर्म तीन प्रकार के होते हैं- (i) संचित (ii) प्रारब्ध एवं (iii) क्रियमाण। भारतीय ज्योतिष में संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण-इन त्रिविध कर्मों के फल को जानने के लिए तीन पद्धतियों का आविष्कार एवं विकास किया गया है, जिन्हें योगपद्धति, दशापद्धति एवं गोचरपद्धति कहा जाता है। इस शास्त्र में संचित कर्मों के फल का विचार ग्रहस्थिति या ग्रह योगों के द्वारा होता है; जब कि प्रारब्ध के फल का विचार ग्रह दशा के द्वारा और क्रियमाण कर्मों के फल का विचार गोचर के द्वारा किया जाता है।

इस प्रकार भारतीय ज्योतिष शास्त्र इस जन्म तथा अन्य जन्मों के समस्त कर्मों को उक्त तीन वर्गों में विभाजित कर उनके फल को यथार्थ रूप से जानने के लिए त्रिविध-पद्धतियों का आश्रय लेता है।

सामान्य रूप से जिसे फल या कर्मफल कहा जाता है-वह जीवन का घटनाचक्र ही है। जीवन में जो-जो घटनाएँ, जब-जब और जैसी-जैसी घटित होती रहती हैं, वे सब कर्मफल के ही परिणामस्वरूप हैं। इसलिए जीवन के घटनाचक्र को फल कहते हैं। और ज्योतिष शास्त्र उसको जानने के नियमों, सिद्धांतों एवं पद्धतियों से हमें परिचित कराता है।

---

१. देखिए-बृहज्जातक अ० १ श्लो० ३

8. फल के भेद

लघुपाराशरी के श्लोक संख्या ३ में "फलानि नक्षत्रदशाप्रकारेण विवृण्महे"- कहा गया है कि नक्षत्रदशा (विंशोत्तरी) के आधार पर फलों की विवेचना करेंगे। यहाँ- 'फलानि' बहुवचनान्त शब्द है जो संकेत देता है, कि दशाफल भी तीन प्रकार का होता है- (i) सामान्य फल (ii) योगफल एवं (iii) स्वाभाविक फल।

(i) सामान्यफल

दशाकाल में ग्रहों का जो फल सभी जातकों के लिए उनकी स्थिति, युति, दृष्टि, बल एवं अवस्था आदि के अनुसार निर्धारित किया जाता है- वह सामान्य फल कहलाता है। यह सामान्य फल ४० आधारों के द्वारा निर्णीत होने के कारण ४० प्रकार का होता है। इस फल के निर्णायक प्रमुख आधार इस प्रकार हैं- १. परमोच्च २. उच्च ३. आरोही ४. अवरोही ५. परमनीच ६. नीच ७. मूलत्रिकोण ८. स्वगृही ९. अतिमित्रगृही १०. मित्रगृही ११. समगृही १२. शत्रुगृही १३. अतिशत्रुगृही १४. उच्चनवांश स्थित १५. नीचनवांशस्थ १६. वर्गोत्तमस्थ १७. शत्रुनवांशस्थ १८. शुभ षष्ठांशस्थ १९. पापषष्ठयंशस्थ २०. पारावतांशस्थ २१. क्रूरदेष्काणस्थ २२. शुभदेष्काणस्थ २३. उच्च के साथ २४. शुभग्रह के साथ २५. पापग्रह के साथ २६. नीचग्रह के साथ २७. शुभदृष्ट २८. पापदृष्ट २९. स्थानबली ३०. दिग्बली ३१. कालबली ३२. चेष्टाबली ३३. नैसर्गिकबली ३४. क्रूराक्रान्त ३५. बलहीन ३६. मार्गी ३७. वक्री ३८. अवस्थानुसार ३९. मेषादि राशि के अनुसार एवं ४०. लग्नादि भाव के अनुसार।

(ii) योगफल

होरा ग्रन्थों में अनेक प्रकार के योगों का वर्णन मिलता है। "सर्वेषां च फलं स्वपाके" इस नियम के अनुसार सब योगों का फल उनके ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा में मिलता है। यह फल विशेष फल है। क्योंकि जिस जातक या व्यक्ति की कुण्डली में जो-जो योग होते हैं, उन-उन का फल उस व्यक्ति को उन-उन ग्रहों की दशा/अन्तर्दशा में मिलता है। होराग्रन्थों

में प्रतिपादित समस्त योगों की संख्या और उनके भेदों का कहीं भी एक स्थान पर संकलन नहीं हो पाया है। फिर भी अनेक प्रसिद्ध तथा उपलब्ध होराग्रन्थों के कोष का निर्माण करने के लिए किये गये एक संकलन में प्रमुख योगों की संख्या ८३२ मिलती है। इन योगों के द्विग्रह आदि योग, अरिष्टयोग, अरिष्टभंग योग, आयु योग, षोडशवर्ग योग, संन्यास यौग तथा स्त्री योग आदि का समावेश नहीं है।

इस प्रकार योगों के आधार पर योगों के कारक ग्रहों की दशा/भुक्ति में मिलने वाला योगफल निम्नलिखित २२ आधारों पर निर्णीत होने के कारण २२ प्रकार का होता है। इस फल के निर्णायक आधार इस प्रकार हैं- १. प्रमुख योग (लगभग ८३२) २. द्विग्रह योग ३. त्रिग्रह योग ४. चतुर्ग्रह योग ५. पञ्चग्रह योग ६. षड्ग्रह योग ७. सप्तग्रह योग ८. अष्टग्रह योग ९. अरिष्ट योग १०. अरिष्टभंग योग ११. षोडशवर्ग योग १२. राज योग १३. संन्यास योग १४. स्त्रीजातक योग १५. रोग योग १६. अल्प-मध्य-दीर्घायु योग १७. धन योग १८. दरिद्री भिक्षु-रेका योग १९. व्यवसाय योग २०. कारकांश योग २१. स्वांश योग २२. पद योग एवं २३. उपपद योग।

(iii) स्वाभाविक फल

ग्रहों के सामान्य फल एवं योग फल में बहुधा विरोधाभास मिलता है। क्योंकि कोई भी ग्रह उच्च राशि में होने पर नीच नवांश में हो सकता है, मित्र राशि में स्थित होने के साथ-साथ वह शत्रुनवांश में हो सकता है या केन्द्र में स्थित होने पर पञ्चमहापुरुष योग बनाने के साथ-साथ रेका योग बना सकता है अथवा कुण्डली में मालिका योग के साथ कालसर्प योग हो सकता है। अतः लघुपाराशरीकार ने ग्रहों के सामान्य एवं योगफल का विचार नहीं किया।

लघुपाराशरी में सम्भवतः इन विरोधाभासों को ध्यान में रखकर ग्रहों के स्वाभाविक फल का प्रतिपादन विंशोत्तरी-दशा के आधार पर किया गया है। ग्रहों के स्वाभाविक फल की यह विशेषता है कि उसमें

परिवर्तन तो होता है; किन्तु वह परिवर्तन सकारण होता है और उसकी तर्कपूर्ण व्याख्या की जा सकती है। ग्रहों के सामान्य एवं योगफल में विरोधाभास जितना संयोगिक है, ग्रहों के स्वाभाविक फल में ऐसा संयोगिक विरोधाभास नहीं है।

स्वाभाविक फल में विरोधाभास लगता है पर होता नहीं है- जैसे- "योगकारक ग्रहों से सम्बन्ध होने पर पापी ग्रह भी अपनी अन्तर्दशा में योगज फल देते हैं।[१] यहाँ प्रथम दृष्टि में यह लगता है कि योगकारक की दशा में पापीग्रह की अन्तर्दशा में योगजफल मिलना एक विरोधाभास है। क्योंकि योगकारक एवं पापीग्रह आपस में विरुद्धधर्मी है। किन्तु वास्तविकता में इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध इस विरोधाभास को दूर करने की असीमित क्षमता रखता है। अतः लघुपाराशरी के श्लोक संख्या ३० के अनुसार "कोई ग्रह अपना आत्मभावानुरूपी फल अपनी दशा में अपने सम्बन्धी या सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा में देता है।[२] इस नियम के अनुसार योगकारक ग्रह का आत्मभावानुरूप फल-योगजफल उसकी महादशा में उसके सम्बन्धी (पाप अथवा शुभ) ग्रह की अन्तर्दशा में मिलना तर्कसंगत है। इसलिए यह कहा जा सकता है, कि स्वाभाविक फल में विरोधाभास लगता है-पर वह होता नहीं है।

ग्रहों का आत्मभावानुरूप या स्वाभाविक फल वह फल है, जो ग्रहों के भाव-स्वामित्व, उनके आपसी सम्बन्ध एवं सधर्म आदि पर आधारित होता है। जैसे समय एवं परिस्थितियों के दबाव में कभी-कभी व्यक्ति की मानसिकता में कुछ अन्तर दिखलाई पड़ने पर भी व्यक्ति के स्वभाव में अन्तर नहीं पड़ता। लगभग उसी प्रकार ग्रहों के स्वाभाविक फल में भी बहुधा कोई अन्तर नहीं पड़ता।

---

१. "योगकारकसम्बन्धात्पापिनोऽपि ग्रहाः स्वतः।
तत्तद्भुकत्यनुसारेण दिशेयुर्योगजं फलम्।।" –लघुपाराशरी श्लो० सं० १९

२. "आत्मसम्बन्धिनो ये च ये वा निजसधर्मिणः।
तेषामन्तर्दशास्वेव दिशन्ति स्वदशाफलम्।।" –लघुपाराशरी श्लो० सं० ३०

इस स्वाभाविक फल का निर्णय करने की प्रक्रिया में कभी-कभी कुछ अन्तर अवश्य दिखलाई पड़ते हैं। किन्तु वे प्रक्रिया की गतिशीलता के अंग या प्रक्रिया की अवस्था के स्वाभाविक गुण हैं। वस्तुतः निर्णय की समग्र प्रक्रिया से निर्णीत होकर निकलने के बाद ग्रह का स्वाभाविक फल बदलता नहीं है। यह अलग बात है, कि स्वाभाविक मिश्रित फल में ही कुछ लोग विरोधाभास की कल्पना कर इसमें विरोधाभास देखने लगे। परन्तु मिश्रित मिलाजुला होता है और उसमें भी मिश्रण एक निश्चित मात्रा में होता है। अतः यह मिश्रण तर्क पर आधारित है- यह संयोग पर आधारित नहीं है। यहाँ मिश्रण मात्र संयोग से नहीं, अपितु तर्क या नियम से निर्धारित होती है।

9. नक्षत्र-दशा

जन्म नक्षत्र के आधार पर निर्धारित दशा को नक्षत्रदशा कहते हैं। होराशास्त्र में ग्रहों का फल कब-कब मिलेगा? इसका ज्ञान करने के लिए दशापद्धति का विकास किया गया है।

बृहत्पाराशर होराशास्त्र में दशाओं के अनेक भेद मिलते हैं। इनमें नक्षत्र दशा के दश भेद प्रमुख हैं- १. विंशोत्तरी दशा, २. अष्टोत्तरी दशा, ३. षोडशोत्तरी दशा, ४. द्वादशोत्तरी दशा, ५. पञ्चोत्तरी दशा, ६. शताब्दिका दशा, ७. चतुरशीतिसमा दशा, ८. द्विसप्तविसमादशा, ९. षष्ठिहायनी दशा, १०. षट्त्रिंशत्समादशा।

जन्म-जन्मान्तरों के प्रभाववश उत्पन्न मनुष्यों के जीवन के घटनाचक्र का विचार होराग्रन्थों में प्रतिपादित ग्रहयोगों के आधार पर किया जाता है। ग्रह योग को फलित शास्त्र की भाषा में योग कहते हैं। यह मनुष्यों को पूर्वार्जित कर्मों के फल से मिलता है, अतः योग कहलाता है।[१] जन्मकुण्डली के इन योगों का मनुष्य को उसके जीवन में कब-कब और क्या-क्या

---

१. "ग्रहाणां स्थितिभेदेन पुरुषान् योजयन्ति हि।
फलैः कर्मसमुद्भूतैरिति योगाः प्रकीर्तिताः।।" -प्रश्नमार्ग अ० ९ श्लो० ४८

फल मिलेगा? इसको जानने की सशक्त एवं सक्षम प्रविधि को दशा कहते हैं।

10. लघुपाराशरी में ग्राह्य दशा

यद्यपि पाराशरी होरा में दशाओं के अनेक भेद बतलाये गये हैं। किन्तु आजकल भारतवर्ष में तीन प्रकार की नक्षत्र दशाएँ प्रचलित हैं- १. विंशोत्तरी दशा, २. अष्टोत्तरी दशा, ३. योगिनी दशा। विंशोत्तरी दशा का प्रचलन वैसे तो पूरे देश में है, किन्तु इसका मुख्यतया प्रचलन उत्तर भारत में है। गुजरात, महाराष्ट्र सहित पूरे दक्षिण भारत में अष्टोत्तरी दशा प्रचलित है, जबकि जम्मू, कश्मीर, हिमाचल, गढ़वाल एवं कुमायूँ जैसे पर्वतीय-प्रदेशों में योगिनी दशा का प्रचलन है।

लघुपाराशरी का प्रचलन सम्पूर्ण भारत में है। दक्षिण भारत में यह ग्रन्थ जातक चन्द्रिका के नाम से प्रसिद्ध है। लघुपाराशरी पर संस्कृत, हिन्दी, बाँगला, मराठी, कन्नड़, तमिल एवं तेलगू भाषाओं में अनेक टीकाओं का होना इस ग्रन्थ की पूरे भारत में मान्यता का साक्ष्य है।

लघुपाराशरीकार ने श्लोक संख्या ३ में स्पष्ट रूप से बतलाया है, कि इस ग्रन्थ से फलादेश करने में विंशोत्तरी दशा का ही उपयोग करना चाहिए; क्योंकि यहाँ अष्टोत्तरी आदि दशाएँ ग्राह्य नहीं हैं।[१]

"दशा विंशोत्तरी चात्र ग्राह्य नाष्टोत्तरी मता"- लघुपाराशरीकार का यह कथन उचित ही है क्योंकि इस ग्रन्थ में श्लोक संख्या १३, २१ एवं ३६ में राहु तथा केतु के फल की विवेचना की गयी है। यदि कदाचित् अष्टोत्तरी दशा को ग्राह्य मानकर उसके अनुसार फलादेश किया जाय, तो केतु का फल नहीं बतलाया जा सकता। क्योंकि अष्टोत्तरी दशा में केतु की दशा नहीं होती। इस प्रकार अष्टोत्तरी का ग्रहण करने से केतु का फल व्यर्थ हो जाता है। इसी प्रकार यदि योगिनी दशा को ग्राह्य मान लिया जाय, तो राहु का फल व्यर्थ हो जायेगा। क्योंकि योगिनी-दशा में आठ योगिनियों के स्वामी राहु के अलावा अन्य ग्रह माने जाते हैं। इसलिए

---

१ "दशा विंशोत्तरी चात्र ग्राह्या नाष्टोत्तरी मता। -लघुपाराशरी श्लो० सं० ३

योगिनी एवं अष्टोत्तरी दशा के आधार पर लघुपाराशरी के श्लोक संख्या १३, २१ एवं ३६ में निरूपित राहु एवं केतु का फल नहीं बतलाया जा सकता है। सम्भवतः योगिनी एवं अष्टोत्तरी की इस स्वाभाविक कमी को ध्यान रख कर ही उनका ग्रहण नहीं किया गया और क्योंकि विंशोत्तरी दशा फलादेश की कसौटी पर सर्वथा खरी उतरती है। इसीलिए लघुपाराशरी के फलादेश में विंशोत्तरी दशा ग्राह्य मानी गयी है।

11. विंशोत्तरी दशा

नक्षत्र दशाओं में विंशोत्तरी प्रमुख नहीं, अपितु सर्वथा उपयुक्त है। इसीलिए इस दशा का पूरे भारत में सर्वत्र प्रचलन है। उत्तर भारत में तो दशा का अर्थ ही विंशोत्तरी दशा होता है। यद्यपि जन्मपत्रिका की गणना में अष्टोत्तरी एवं योगिनी दशा के चक्र लगाये जाते हैं, किन्तु फलादेश में विंशोत्तरी दशा का अधिक उपयोग किया जाता है।

जिस दशा में सभी ग्रहों की दशाओं का मान १२० वर्ष होता है, उसे विंशोत्तरी दशा कहते हैं। यह दशा इस युग की मुख्य दशा है।[१] इस दशा में ग्रहों के दशा वर्षों का विभाजन इस प्रकार होता है-सूर्य की दशा = ६ वर्ष, चन्द्रमा की दशा = १० वर्ष, मंगल की दशा = ७ वर्ष, राहु की दशा = १८ वर्ष, गुरु की दशा = १६ वर्ष, शनि की दशा = १९ वर्ष, बुध की दशा = १७ वर्ष, केतु की दशा = ७ वर्ष, एवं शुक्र की दशा = २० वर्ष होती है।[२]

इस दशा का ज्ञान जन्म-नक्षत्र (जन्मकालीन चन्द्र नक्षत्र) के अनुसार किया जाता है, यथा[३]- कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी एवं उत्तराषाढ़ नक्षत्र में जन्म होने पर सूर्य की दशा, रोहिणी, हस्त एवं श्रवण नक्षत्र में जन्म होने पर चन्द्रमा की दशा, मृगशीर्ष, चित्रा एवं धनिष्ठा नक्षत्र में जन्म होने पर मंगल की दशा, आर्द्रा, स्वाति एवं शतभिषा नक्षत्र में जन्म होने

---

१. बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ४७ श्लो० १४

२. तत्रैव श्लो० १५

३. तत्रैव श्लो० १२-१३

पर राहु की दशा, पुनर्वसु, विशाखा एवं पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में जन्म होने पर गुरु की दशा, पुष्य अनुराधा एवं उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में जन्म होने पर शनि की दशा, आश्लेषा, ज्येष्ठा एवं रेवती नक्षत्र में जन्म होने पर बुध की दशा, मघा, मूल एवं अश्विनी नक्षत्र में जन्म होने पर केतु की दशा तथा पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ एवं भरणी नक्षत्र में जन्म होने पर शुक्र की दशा होती है।

विंशोत्तरीदशा-चक्र

दशाधीश	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
	कृति	रोहि	मृग	आर्द्रा	पुनः	पुष्य	आश्ले	मघा,	पू.फा.
जन्मनक्षत्र	उ. फा.	हस्त	चित्रा	स्वाति	विशा	अनु	ज्येष्ठा	मूल	पू.षा.
	उ. षा.	श्रव.	धनि.	शत.	पू.भा.	उ.भा.	रेवती	अश्वि	भर.
दशावर्ष	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०

(i) दशा एवं उसका भुक्त-भोग्य साधन

कृत्तिका नक्षत्र से जन्म नक्षत्र तक गिनकर, उस संख्या में नौ का भाग देने पर आदि शेष रहने पर क्रमशः सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु एवं शुक्र की दशा होती है।[1]; यथा-उदाहरणार्थ मान लीजिए कि किसी व्यक्ति का जन्म पुष्य नक्षत्र में हुआ है। अतः कृतिका से पुष्य तक गणना करने से संख्या ६ हुई, इस संख्या में ९ से भाग देने से लब्धि=० तथा शेष=६ बचा। अतः सूर्य आदि क्रम से गणना करने पर इस व्यक्ति की जन्मकालीन दशा शनि की हुई।

---

१. तत्रैव श्लो० सं० १३

भुक्त-भोग्य साधन का सूत्र[१]

(i) $$\frac{\text{पलात्मक भयात x दशावर्ष}}{\text{पलात्मकभभोग}} = \text{भुक्तदशा}$$

(ii) दशावर्ष-भुक्तदशा = भोग्यदशा

विंशोत्तरी दशा के भुक्त एवं भोग्य मानों का ज्ञान करने के लिए सर्वप्रथम जन्म नक्षत्र के भयात एवं भभोग बना लेने चाहिए।[२] फिर जन्म नक्षत्र के आधार पर विंशोत्तरी दशा चक्र से जन्मकालीन दशाधीश एवं उसकी वर्ष संख्या जान लेनी चाहिए।

तत्पश्चात् पलात्मक भयात को दशा वर्ष संख्या से गुणा कर पलात्मक भभोग से भाग देने पर लब्धि भुक्त वर्ष होते हैं। तदनन्तर शेष को १२ से गुणा कर पलात्मक भभोग का भाग देने से लब्धि भुक्त मास होते हैं और फिर, शेष का ३० से गुणा कर उसमें पलात्मक भभोग का भाग देने पर लब्धि भुक्त दिन होते हैं। इस प्रकार दशा के भुक्त वर्ष, मास एवं दिन का साधन का इनको दशा वर्षों में से घटाने पर दशा के भोग्य वर्ष, मास एवं दिन जाने जा सकते हैं।

भुक्त भोग्य साधन का अन्यसूत्र[३]

(i) $$\frac{\text{स्पष्ट चन्द्रकला}}{\text{८००}} = \text{लब्धि+ शेष}$$

(ii) लब्धि= गतनक्षत्र

(iii) गतनक्षत्र+१= जन्मनक्षत्र

(iv) $$\frac{\text{शेष X दशावर्षसंख्या}}{\text{८००}} = \text{भुक्तदशा}$$

---

१. तत्रैव श्लो० १६

२. "गतर्क्षनाडीखरसेषु शुद्धा सूर्योदयादिष्टघटीषु युक्ता।
भयातसंज्ञा भवतीह तस्य निजर्क्षनाडीसहितो भभोगः।।

३. बृहत्पाराशर होरा शास्त्र अ० ३२ श्लो० ५ –खेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई

(v) दशावर्ष–भुक्तदशा भोग्य= दशा

विंशोत्तरी दशा का भुक्त–भोग्य ज्ञान स्पष्ट चन्द्रमा के आधार पर भी किया जा सकता है। आजकल सभी प्रसिद्ध पञ्चाङ्गों में पाराशर के उक्त सूत्र के आधार पर बनी सारणियाँ प्रकाशित होती हैं। अन्तर केवल इतना है, कि मूलसूत्र से दशा का भुक्तमान आता है जबकि इस सूत्र के आधार पर बनी सारणियों से दशा का भोग्य मान आता है।

(ii) अन्तर्दशा

प्रत्येक ग्रह दशा की दशा में नौ ग्रहों की अन्तर्दशा होती है, यथा–दशाधीश ग्रह में पहले अन्तर्दशा उसी ग्रह की ओर अग्रिम अन्तर्दशाएं–सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु एवं शुक्र के क्रम से चलती हैं।

अन्तर्दशासूत्र[१]

(i) $\frac{\text{दशावर्ष} \times \text{दशावर्ष}}{१०}$ = मासादि अन्तर्दशामान

ज्योतिष के विद्वान् एवं छात्र सभी लोग अन्तर्दशा का साधन करने से परिचित एवं अभ्यस्त हैं। अतः इस विषय में विस्तार की आवश्यकता नहीं है।

(iii) प्रत्यन्तर्दशा

जिस प्रकार प्रत्येक ग्रह की दशा में नौ ग्रहों की अन्तर्दशाएं चलती हैं, उसी प्रकार प्रत्येक ग्रह की अन्तर्दशा में नौ ग्रहों की प्रत्यन्तर दशाएं भी चलती हैं। यहाँ भी सभी ग्रहों की अन्तर्दशा में पहले प्रत्यन्तर दशा उसी ग्रह की ओर अग्रिम प्रत्यन्तर दशाएं सू०, चं०, मं०, रा०, गु०, श०, बु०, के०, शु०,–क्रम से अन्य ग्रहों की चलती है।

---

१. तत्रैव अ०३३ श्लो० १

प्रत्यन्तर्दशा-सूत्र[१]

(i) $\frac{\text{दशावर्ष X अन्तर्दशाधीश वर्ष X प्रत्यन्तर दशाधीश वर्ष}}{\text{४०}}$ =

दिनादि प्रत्यन्तर दशामान

ग्रहों की अन्तर्दशा में उनकी प्रत्यन्तर दशा निकालने एवं लगाने की विधि से भी विद्वज्जन परिचित ही हैं।

12. लघुपाराशरी का प्रतिपाद्य-विषय

इस ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय को रेखांकित करते हुए स्वयं लघुपाराशरीकार ने कहा है-"फलानि नक्षत्र दशा प्रकारेण विवृष्महे।"[२] अर्थात् इस ग्रन्थ में फल (जीवन के घटनाचक्र) का विवेचन नक्षत्रदशा के आधार पर किया जायेगा और इस प्रसंग में विंशोत्तरी दशा ग्राह्य है। तात्पर्य यह है कि लघुपाराशरी में ग्रहों के शुभाशुभत्व, कारक एवं मारक का निर्णय कर उनके द्वारा विंशोत्तरी दशा के आधार पर जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का निरूपण किया गया है। वस्तुतः यह ही इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय है।

कुछ विद्वानों का कहना है कि इस ग्रन्थ में नक्षत्रदशा (विंशोत्तरी) के द्वारा मानव जीवन के समस्त पहलुओं या घटनाक्रम का विवेचन नहीं किया। ग्रन्थकर्ता ने संज्ञाध्याय के प्रारम्भ में श्लोक संख्या ३ में इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न को छेड़कर भी अतिसंक्षेप में इसका समाधान किया है।

इस विषय में निष्कर्ष के रूप में कुछ कहने से पहले एक सम्भावना यह भी है- कि सम्भवतः ग्रन्थकर्ता ने इस विषय पर अधिक व्यापक रूप से लिखा हो, जो कालक्रम से आज उपलब्ध नहीं होता।

आज उत्तर भारत में यह ग्रन्थ लघुपाराशरी या उडुदाय प्रदीप के नाम से उपलब्ध है, जिसमें केवल ४२ श्लोक मिलते हैं। इनमें से श्लोक

---

१. तत्रैव श्लो० ४६

२. लघुपाराशरी श्लो० ३

संख्या ४१ एवं ४२ को कुछ मराठी एवं गुजराती टीकाकार प्रक्षिप्त मानते हैं।[१] जबकि दक्षिण में यही ग्रन्थ जातकचन्द्रिका के नाम से प्रचलित हैं, जिसके मद्रास संस्करण[२] में ७१ श्लोक बंगलौर संस्करण[३] में ७८ श्लोक तथा नागपुर संस्करण[४] में ९२ श्लोक मिलते हैं। इस प्रकार इस एक ही ग्रन्थ का भिन्न-भिन्न कलेवर में मिलना इस बात का साक्ष्य है, कि इस ग्रन्थ के मूल रूप में देश एवं काल के भेद से कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य हुए हैं।

उत्तर भारत में लघुपाराशरी के साथ-साथ मध्य पाराशरी भी प्रकाशित मिलती है। मध्यपाराशरी के मंगलाचरण में कहा गया है कि इस ग्रन्थ में उडुदश (नक्षत्रदशा) पद्धति के तत्त्वों का होराशास्त्रानुसार वर्णन किया गया है।[५] मध्यपाराशरी का यह मंगल श्लोक सम्भवतः यह संकेत देता है कि लघुपाराशरी में नक्षत्रदशा पद्धति के द्वारा मानव जीवन के अधिक पहलुओं का विचार नहीं किया गया और इस न्यूनता की पूर्ति के लिए मध्यपाराशरी की रचना की गयी।

लघुपाराशरी के प्रतिपाद्य सभी विषयों-जैसे ग्रहों का शुभाशुभत्व, कारक एवं मारक निर्णय तथा दशाफल निरूपण आदि का संक्षेप में होना कोई आश्चर्य या अनहोनी बात नहीं है। क्योंकि लघुपाराशरी शब्द का 'लघु' विशेषण ही यह ध्वनित करता है कि इस ग्रन्थ में सब बातें संक्षेप में प्रतिपादित की गयी है, अस्तु।

---

१. मराठी टीकाकार-श्री रघुनाथशास्त्री पटवर्धन एवं श्री ह० ने० काटवे।
—गुजराती टीकाकार-श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर एवं शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंडया।

२. डॉ० (श्रीमति) के० एन० सरस्वती, नरेश अय्यर स्ट्रीट, मद्रास द्वारा सन् १९७८ में प्रकाशित।

३. दि एस्ट्रोलोजिकल आफिस, बंगलौर-१९७६

४. नागपुर प्रकाशन, नागपुर-१९६९

५. "पाराशरं मुनिं नत्वा तस्य होरां निरीक्ष्य च।
वक्ष्ये ह्युडुदशामार्गे सारं शास्त्रानुसारतः।।" —मध्यपाराशरी श्लो० १

13. फलादेश के उपकरण

होराशास्त्र में फल (जीवन के घटनाचक्र) को जानने के लिए दो प्रकार के उपकरणों का प्रयोग किया जाता है- १. प्रधान उपकरण तथा २. सामान्य उपकरण। १. भाव, २. ग्रह एवं ३. राशि- इन तीनों को प्रधान उपकरण कहते हैं जो फल के उत्पादक तो नहीं होते किन्तु उत्पन्न फल में ह्रास या वृद्धि कर देते हैं। जैसे- १. दृष्टि, २. युति, ३. स्थिति एवं ४. बल।
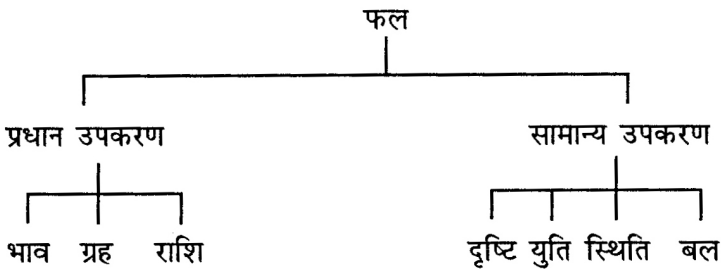
14. होरा ग्रन्थों में भाव आदि का स्वरूप

"बुधैर्भावादय: सर्वे ज्ञेया सामान्यशास्त्रत:" इस श्लोक संख्या ४ में लघुपाराशरीकार ने स्पष्ट निर्देश दिया है कि "विद्वानों को फलादेश के उपकरणों-भाव आदि की जानकारी होराशास्त्र के सामान्य ग्रन्थों से कर लेनी चाहिए।" अत: यहाँ भाव आदि का परिचय इसी के अनुसार प्रस्तुत है-

(i) भाव

कुण्डली में लग्न से प्रारम्भ कर द्वादश भाव होते हैं; जिनके नाम हैं- १. तनु, २. धन, ३. सहज, ४. सुख, ५. सुत, ६, शत्रु, ७. जाया, ८. मृत्यु, ९. धर्म, १०. कर्म, ११. आय एवं १२. व्यय। इन भावों को प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम, एकादश एवं द्वादश भाव भी कहते हैं।[१]

---

१. बृहत्पाराशर होराशास्त्र श्लो० ३७-३८

उक्त भावों में से प्रथम, चतुर्थ, सप्तम एवं दशम भाव को केन्द्र, द्वितीय, पंचम, अष्टम एवं एकादश को पणफर तथा तृतीय, षष्ठ, नवम एवं द्वादश को आपोक्लिम कहते हैं। पंचम एवं नवम भाव को त्रिकोण कहते हैं। इनमें से षष्ठ, नवम एवं द्वादश भाव की त्रिक संज्ञा है। चतुर्थ एवं अष्टम भाव चतुरस्र कहलाते हैं और तृतीय, षष्ठ, दशम तथा एकादश भाव उपचय कहलाते हैं।[१]

(ii) भावेश

प्राचीन–काल में कुण्डली से बारह राशियों स्थित ग्रहों के अनुसार फल बतलाया जाता था। किन्तु इस रीति से फलादेश में अधूरापन होने के कारण भावेशों के अनुसार फल का विचार प्रारम्भ हुआ। इस पद्धति का प्राचीनतम प्रयोग लोमशसंहिता, बृहत्पाराशर होराशास्त्र, शुकसूत्र, मानसागरी, केरलजातक, सर्वार्थ चिन्तामणि, जातक परिजात एवं जातकालंकार में मिलता है। मध्यकाल एवं उसके बाद के समय में यह पद्धति एक मानक तथा आदर्श पद्धति के रूप में स्वीकार कर ली गयी। अतः मध्यकाल एवं परवर्ती सभी जातक ग्रन्थों में फलादेश के लिए इस पद्धति का आश्रय लिया गया है। इतना ही नहीं भारतीय ज्योतिष में भाव, भावेश एवं भावकारक के आधार पर फलादेश करने के लिए अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना हुई, जिनमें लघुपाराशरी, सुश्लोकशतक, भावार्थ रत्नाकार, भावप्रकाश, भावकुतूहल एवं प्रश्न मार्ग प्रमुख हैं।

कुण्डली में लग्न आदि द्वादश भावों में जो राशियाँ स्थित होती हैं, उनके स्वामी ग्रह को उस भाव का स्वामी अर्थात् भावेश माना जाता है। इस नियम के अनुसार भावों में जैसे–जैसे राशियाँ बदलती हैं, वैसे–वैसे भावेश भी बदल जाते हैं, जैसे मेष लग्न में लग्नेश मंगल होता है तो वृष लग्न में शुक्र एवं मिथुन लग्न में लग्न भाव का स्वामी बुध हो जाता है।

---

१. तत्रैव श्लो० ३३–३६

(iii) भावकारक

भाव का अर्थ है- आकाश का निश्चित विभाग। भावकारक की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें भावेश की तरह परिवर्तन नहीं होता। तात्पर्य यह है कि भाव में राशि के परिवर्तन से जैसा भावेश में परिवर्तन हो जाता है वैसा परिवर्तन भाव कारक का नहीं होता। भाव कारक ग्रह अपने भाव का स्थायी या सुनिश्चित प्रतिनिधि होता है। यथा-प्रथम भाव का कारक सूर्य, द्वितीय भाव का गुरु, तृतीय भाव का मंगल, चतुर्थ भाव का चन्द्रमा एवं बुध, पंचम भाव का गुरु, षष्ठ भाव का मंगल एवं शनि, सप्तम भाव का शुक्र, अष्टम भाव का शनि, नवम भाव का सूर्य एव गुरु, दशम भाव के सूर्य, बुध, गुरु एवं शनि, एकादश भाव का गुरु तथा द्वादश भाव का कारक शनि होता है।[१] इस मान्यता के अनुसार शुक्र एवं चन्द्रमा एक-एक भाव का, मंगल एवं बुध दो-दो भाव के, सूर्य तीन भावों का शनि चार भावों का और गुरु पांच भावों का कारक होता है।

पराशर के मतानुसार प्रथम भाव का सूर्य, द्वितीय भाव का गुरु, तृतीय भाव का मंगल, चतुर्थ भाव का चन्द्रमा, पंचम भाव का गुरु, षष्ठ भाव का मंगल, सप्तम भाव का शुक्र, अष्टम भाव का शनि, नवम भाव का गुरु, दशम भाव का बुध, एकादश भाव का गुरु और द्वादश भाव का कारक शनि होता है।[२] इन दोनों मतों में केवल इतना सा अन्तर है कि प्रथम मत में एक ही भाव के अनेक ग्रह कारक होते हैं। जबकि पराशर के मतानुसार प्रत्येक भाव का एक-एक ग्रह कारक होता है।

---

१. "द्युमणिरमरमन्त्री भूसुतः सोमसौम्यौ,
गुरुरिनतनयारौ भार्गवो भानुपुत्रः।
दिनिकरदिविजेज्यौ जीवभानुज्ञमन्दाः,
सुरगुरुरिनसूनुः कारकाः स्युर्विलग्नात्।" -जातकपरिजात अ० २ श्लो० २९

२. तत्रैव अ० ३३ श्लो० ३४

(iv) ग्रह

फलित ज्योतिष में नौ ग्रह माने गये हैं, जिनके नाम हैं- १. सूर्य, २. चन्द्र, ३. मंगल, ४. बुध, ५. गुरु, ६. शुक्र, ७. शनि, ८. राहु एवं ९. केतु।[१] सामान्यतया ग्रह दो प्रकार के होते हैं- १. शुभ तथा २. पाप। सौम्य प्रकृति वाले ग्रहों को शुभ ग्रह तथा क्रूर प्रकृति वाले ग्रहों को पाप ग्रह कहते हैं।

गुरु एवं शुक्र स्वभावतः शुभ ग्रह हैं जबकि चन्द्रमा पूर्ण होने पर[२] और बुध किसी शुभ ग्रह के साथ होने पर शुभ माना जाता है। इस प्रकार शुभ ग्रहों की अधिकतम संख्या चार होती है- १. गुरु, २. शुक्र, ३. शुभ ग्रह से युक्त बुध एवं ४. पूर्णचन्द्रमा।

सूर्य, मंगल एवं शनि स्वभावतः पाप ग्रह हैं, जबकि क्षीणचन्द्रमा एवं पापग्रह से युक्त बुध भी पाप ग्रह कहलाता है।[३] कुछ आचार्य राहु एवं केतु दोनों को पाप ग्रह तथा कुछ अन्य आचार्य राहु को पाप तथा केतु को शुभ ग्रह मानते हैं। किन्तु केतु का शुभ ग्रह मानना सर्वसम्मत नहीं है। इस प्रकार पाप ग्रहों की अधिकतम संख्या सात होती है- १. सूर्य, २. मंगल, ३. शनि, ४. राहु, ५. केतु, ६. पापयुक्त बुध, ७. क्षीणचन्द्रमा।[४]

उक्त नौ ग्रहों में से राहु एवं केतु-इन दोनों को तमोग्रह या छाया ग्रह कहते हैं, क्योंकि अन्य ग्रहों की तरह सौर मण्डल में इनका चमकीला बिम्ब दिखलाई नहीं देता। जबकि अन्य सातों ग्रहों के चमकीले बिम्ब अपनी-अपनी कक्षाओं में घूमते हुए दिखलाई देते हैं। यद्यपि ज्योतिष शास्त्र के सिद्धांत ग्रन्थों में राहु एवं केतु को ग्रह नहीं माना गया है तथापि होराशास्त्र में मानव जीवन एवं उसके घटनाचक्र पर इनके सतत प्रभाव को देखकर इन दोनों को ग्रहों की श्रेणी में रखा गया है।

---

१. तत्रैव अ० श्लो० ११

२. "शुक्लपक्ष की एकादशी से कृष्णपक्ष की पंचमी तक चन्द्रमा पूर्ण होता है।"

३. "कृष्णपक्ष की एकादशी से शुक्लपक्ष की पंचमी तक चन्द्रमा क्षीण होता है।"

४. तत्रैव श्लो० १२

आज हर्शल, नेपच्यून एवं प्लेटो तथा मंगल एवं गुरु की कक्षा के मध्यवर्ती शताधिक ग्रहों की खोज हो चुकी है। इन सब की कक्षा, गति एवं परिभ्रमण के सिद्धांतों का निरूपण भी ज्ञात है। किन्तु इनके फल या प्रभाव को निश्चित रूप से जाना जा सकता है। यही कारण है कि भारतीय ज्योतिष के प्राचीन या नवीन ग्रन्थों में इनके फलादेश का उल्लेख नहीं मिलता।

(v) ग्रहों की राशियाँ

होराशास्त्र में सूर्य आदि सात ग्रह मेष आदि द्वादश राशियों के स्वामी होते हैं यथा-मेष का स्वामी मंगल, वृष का शुक्र, मिथुन का बुध, कर्क का चन्द्रमा, सिंह का सूर्य, कन्या का बुध, तुला का शुक्र, वृश्चिक का मंगल, धनु का गुरु, मकर का शनि, कुम्भ का शनि एवं मीन राशि का स्वामी गुरु होता है।[१]

राशियों के स्वामित्व का निरूपण करने के लिए होराशास्त्र में सूर्य एवं चन्द्रमा को राजा, बुध को युवराज, शुक्र को मन्त्री, मंगल को नेता (सेनापति), गुरु को पुरोहित तथा शनि को सेवक माना गया है।[२]

बारह राशियों में से सिंह से लेकर अनुलोम क्रम से छः राशियाँ सूर्य के प्रभाव क्षेत्र में और कर्क से लेकर प्रतिलोम क्रम से छः राशियाँ चन्द्रमा के प्रभाव क्षेत्र में पड़ती हैं। सभी राशियों में पराक्रम एवं शौर्य का प्रतीक मानकर सूर्य ने सिंह राशि को अपना स्थान चुना और सूर्य के साथ मित्रता के कारण चन्द्रमा ने उसके समीपवर्ती कर्क राशि को अपना स्थान बनाया। फिर सूर्य एवं चन्द्रमा ने अपने-अपने प्रभाव क्षेत्र की राशियों में से अनुलोम एवं प्रतिलोम क्रम से एक-एक राशि अपने युवराज बुध, मन्त्री शुक्र, सेनापति मंगल, पुरोहित गुरु तथा सेवक शनि को दे दी। इस प्रकार सूर्य एवं चन्द्रमा के पास एक-एक तथा मंगल, बुध, शुक्र एवं शनि के पास दो-दो राशियाँ हो गयी।

---

१. तत्रैव अ० ४ श्लो० ६-२४

२. तत्रैव अ० ३ श्लो० १५-१६

(vi) राशियाँ

क्रान्तिवृत्त या राशिचक्र के १२वें भाग को राशि कहते हैं। इसलिए राशियों की संख्या बारह होती है। इनके नाम हैं- १. मेष, २. वृष, ३. मिथुन, ४. कर्क, ५. सिंह, ६. कन्या, ७. तुला, ८. वृश्चिक, ९. धनु, १०. मकर, ११. कुम्भ, १२. मीन।

राशियों का स्वरूप, शुभाशुभत्व, बल एवं अन्य संज्ञाएँ होराग्रन्थों में विस्तारपूर्वक बतलाई गयी हैं।[१] किन्तु लघुपाराशरी में राशियों के माध्यम से भावेश का निश्चय करने के अलावा अन्य सब बातों का उपयोग नहीं किया गया। अतः इस विषय में यहाँ विस्तार की आवश्यकता नहीं है।

(vii) दृष्टि

होराशास्त्र में ग्रहों की दृष्टियाँ दो प्रकार की होती हैं- १. पाद दृष्टि एवं २. पूर्ण दृष्टि। सभी ग्रह अपने स्थान से तीसरे एवं १०वें स्थान को एक पाद दृष्टि से, ५वें एवं ९वें स्थान को द्विपाद दृष्टि से, ४थें एवं ८वें स्थान को त्रिपाद दृष्टि से तथा सप्तम स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं।[२] यह ग्रहों की पाद दृष्टि कहलाती है।

पूर्ण दृष्टि का नियम है कि सभी ग्रह अपने स्थान से सातवें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं और शनि अपने से दूसरे एवं १०वें स्थान को, गुरु ५वें एवं ९वें स्थान को तथा मंगल ४थें एवं ८वें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखता है।[३]

(viii) युति

ग्रहों का परस्पर एक दूसरे के साथ होना या बैठना युति कहलाता है। शुभ ग्रहों की युति से पाप फल का और पाप ग्रहों की युति से शुभ फल का ह्रास या नाश होता है।[४]

---

१. तत्रैव-अध्याय ४

२. तत्रैव अ० २७ श्लो० ३

३. तत्रैव अ० २७ श्लो० ४

४. तत्रैव अ० १२ श्लो० १४-१६

दो या दो से अधिक ग्रहों के साथ-साथ होने या बैठने से द्विग्रहादि योग बनते हैं इन योगों के सात भेद होते हैं। १. द्विग्रह योग, २. त्रिग्रह योग, ३. चतुर्ग्रह योग, ४. पंचग्रह योग, ५. षड्ग्रह योग, ६. सप्तग्रह योग एवं ७. अष्टग्रह योग।[1] इस प्रकार सामान्य उपकरणों में युति ऐसा उपकरण है जो योगों को बनाता भी है और उनके फलों में कभी ह्रास और कभी नाश करता है।

(ix) स्थिति

होराशास्त्र में स्थिति का क्षेत्र बहुत व्यापक हैं। क्योंकि ग्रहों की षोडशवर्ग में, लग्नादि भावों में, मेषादि राशियों में, केन्द्र-त्रिकोण आदि शुभ भावों में, त्रिक आदि अशुभ भावों में या उच्च-मूल त्रिकोण आदि राशियों में स्थिति के बिना फलादेश नहीं किया जा सकता।[2]

वस्तुतः ग्रहों की राशि, भाव एवं विविध वर्गों में स्थिति फलादेश में हमारी हर समय और हर कदम पर सहायता करती है, इसलिए यह फल का सामान्य उपकरण मानी जाती है।

(x) बल

फलादेश के सामान्य उपकरणों में बल एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है। क्योंकि यह फल की मात्रा को निर्धारित करता है, जिसके बिना फलादेश यथार्थ रूप से नहीं किया जाता। ग्रहों के प्रमुख बल छः प्रकार के होते हैं- १. स्थानबल, २. कालबल, ३. दिग्बल, ४. चेष्टाबल, ५. नैसर्गिक बल एवं दृग्बल।[3]

15. लघुपाराशरी में भाव आदि की विशेष संज्ञायें

भाव आदि की जानकारी होराशास्त्र के सामान्य ग्रन्थों से कर लेनी चाहिए। लघुपाराशरीकार के इस कथन के अनुसार अनुच्छेद १३ में इन

---

१. देखिए-सारावली-द्विग्रहाध्याय से अष्टग्रहाध्याय तक।

२. देखिए-बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ४८ एवं ५३-६९

३. तत्रैव अ० २८

सब का विचार किया गया। किन्तु ग्रन्थकर्त्ता ने श्लोक ४ में एक और महत्त्वपूर्ण बात रेखांकित की है- कि हम इस ग्रन्थ में भाव आदि की विशेष संज्ञाओं का निरूपण करेंगे। इस निश्चय के अनुसार लघुपाराशरी में जिन विशेष संज्ञाओं का वर्णन एवं विवेचन किया गया है वह इस प्रकार है-

(i) भाव

इस ग्रन्थ में लग्न आदि द्वादश भावों की निम्नलिखित ५ संज्ञायें मिलती हैं- १. केन्द्र, २. त्रिकोण, ३. त्रिषडाय, ४. द्विर्दादश एवं ५. अष्टम। इनका संक्षेप में विवेचन इस प्रकार है-

(ii) केन्द्र

सामान्य जातक ग्रन्थों के अनुसार यहाँ भी प्रथम, चतुर्थ, सप्तम एवं दशम भाव को प्रथम दृष्टि में केन्द्र माना है। किन्तु लग्न को केन्द्र के साथ-साथ त्रिकोण भी मान लेने के कारण इस भाव में विशेष क्षमता है।[१] अतः चतुर्थ, सप्तम एवं दशम भाव को ही यहाँ केन्द्र माना गया है।

(iii) त्रिकोण

होरा ग्रन्थों के समान यहाँ पंचम एवं नवम को त्रिकोण माना गया है। किन्तु इस ग्रन्थ में इन दोनों के साथ-साथ लग्न को भी त्रिकोण माना गया है।[२] इस प्रकार इस ग्रन्थ में लग्न, पंचम एवं नवम इन तीनों भावों को त्रिकोण माना गया है। ये भाव शुभ होते हैं।[३]

कुछ आचार्यों ने त्रिकोण की शुभता को महत्त्वपूर्ण मानते हुए कुण्डली में चार त्रिकोण की कल्पना की है–

---

१. "लग्नं केन्द्रत्रिकोणत्वात् विशेषेण शुभप्रदम्।"
 -बृ० पा० हो० शा० अ० ३५ श्लो० ३

२. तत्रैव-तदेव

३. तत्रैव अ० ३३ श्लो० ३

(i) प्रथम त्रिकोण

प्रथम, पंचम एवं नवम भाव को पुरुष त्रिकोण कहते हैं।

(ii) द्वितीय त्रिकोण

सप्तम, एकादश एवं तृतीय भाव को प्रकृति त्रिकोण कहते हैं।

(iii) तृतीय त्रिकोण

दशम, द्वितीय एवं षष्ठ भाव को ऐश्वर्य त्रिकोण कहते हैं।

(iv) चतुर्थ त्रिकोण

चतुर्थ, अष्टम एवं द्वादश भाव को वैराग्य त्रिकोण कहते हैं।

कुछ अन्य आचार्यों ने इन त्रिकोणों को धर्म त्रिकोण अर्थ त्रिकोण, काम त्रिकोण एवं मोक्ष त्रिकोण कहा है। किन्तु यदि इन चारों त्रिकोणों को स्वीकार कर लिया जाय तो कुण्डली त्रिकोणमय बन जायेगी, क्योंकि कुण्डली के सभी भाव किसी न किसी त्रिकोण में आ जायेंगे। क्या सभी भावों का एक समान फल होता है? या द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ त्रिकोण के तीनों भाव समान फल देते हैं? नहीं। अतः लघुपाराशरी से फलादेश करने के लिए केवल प्रथम त्रिकोण-अर्थात् प्रथम, पंचम एवं नवम भाव को ही त्रिकोण माना गया है तथा भावों को केन्द्र, त्रिषडाय, द्विर्द्वादश एवं अष्टम कहा गया है, अस्तु।

(iv) त्रिषडाय

लग्न से तृतीय, षष्ठ एवं एकादश भाव को त्रिषडाय कहा जाता है। ये तीनों भाव अशुभ होते हैं।[१]

(v) द्विर्दादश

लग्न से द्वितीय एवं द्वादश भाव को द्विर्द्वादश भाव कहते हैं। ये दोनों भाव न तो शुभ होते हैं और न अशुभ।

---

१. तत्रैव श्लो० ३५-३६

(vi) अष्टम

लग्न से अष्टम भाव आयु या मृत्यु का भाव माना जाता है। किन्तु यह भाव-भाग्य भाव से बारहवां होने के कारण शुभ नहीं माना जाता।[१]

(vii) ग्रह

सूर्य आदि नवग्रहों की इस ग्रन्थ में निम्नलिखित १३ संज्ञाएं मिलती हैं- १. शुभ, २. अतिशुभ, ३. पापी, ४. केवल पापी, ५. परमपापी, ६. सम, ७. कारक, ८. मारक, ९. सम्बन्धी, १०. सधर्मी, ११. विरुद्धधर्मी, १२. उभयधर्मी, १३. अनुभयधर्मी। इनका संक्षेप में निरूपण इस प्रकार है-

(viii) शुभ ग्रह

त्रिकोण का स्वामी शुभ फलदायक होता है। अतः त्रिकोणेश को शुभ माना गया है। इनमें से लग्नेश इतना शुभ होता है कि वह अष्टमेश की अशुभता को दूर कर उसे शुभता दिला देता है।

(ix) अतिशुभ

जो ग्रह केन्द्र एवं त्रिकोण दोनों स्थानों का स्वामी हो वह अतिशुभ माना जाता है जैसे वृष एवं तुला लग्न में शनि कर्क एवं सिंह लग्न में मंगल तथा मकर एवं कुम्भ लग्न में शुक्र।

(x) पापी

तृतीय, षष्ठ एवं एकादश भाव के स्वामी अर्थात् त्रिषडायेश को पापी कहा जाता है।

(xi) केवल पापी

जिसकी एक या दोनों राशियाँ त्रिषडाय में हो अथवा जिस ग्रह की दोनों राशियां त्रिषडाय एवं द्विर्द्वादश स्थान में हों वह ग्रह केवल पापी कहा

---

१. लघुपाराशरी श्लो० ८

जाता है। जैसे मेष लग्न में बुध, मिथुन लग्न में सूर्य, तुला लग्न में गुरु, धनु लग्न में शनि, कुम्भ लग्न में गुरु।

(xii) परमपापी

जिस ग्रह की एक राशि अष्टम भाव में और दूसरी राशि त्रिषडाय में हो, वह परमपापी कहलाती है। जैसे-वृष लग्न में गुरु, मीन लग्न में शुक्र, कन्या लग्न में मंगल एवं वृश्चिक लग्न में बुध।

(xiii) सम

जो ग्रह शुभ या अशुभ दोनों प्रकार का फल नहीं देते वे सम कहलाते हैं। उदाहरणार्थ जो ग्रह केवल द्विर्द्वादश का स्वामी हो और किसी भाव का स्वामी न हो, तो वह सम कहा जाता है जैसे मिथुन एवं सिंह लग्न में चन्द्रमा तथा कर्क एवं कन्या लग्न में सूर्य। तथा द्वितीय या द्वादश में स्थिति अकेला राहु या केतु।

(xiv) कारक

यदि केन्द्र एवं त्रिकोण के स्वामियों में सम्बन्ध हो और उनमें से कोई अष्टम या एकादश का स्वामी न हो, तो ऐसे केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश कारक कहलाते हैं। यदि केन्द्र में स्थित राहु या केतु का केन्द्रेश से सम्बन्ध हो तो वे कारक बन जाते हैं।

(xv) मारक

मारक स्थानों (द्वितीय एवं सप्तम स्थान) के स्वामी, मारक स्थान में स्थित त्रिषडायाधीश एवं द्वितीयेश या सप्तमेश से युत त्रिषडायाधीश प्रमुख मारक ग्रह होते हैं। इसके अलावा संभावना होने पर व्ययेश से सम्बन्धित ग्रह, अष्टमेश एवं पापी ग्रह भी मारकेश बन जाते हैं।

(xvi) सम्बन्धी

सम्बन्ध चार प्रकार के होते हैं- १. स्थान सम्बन्ध, २. युति सम्बन्ध, ३. एकान्तर या अन्ततर दृष्टि सम्बन्ध एवं परस्पर दृष्टि सम्बन्ध।

इन चारों में से किसी भी प्रकार के सम्बन्ध से सम्बन्धित ग्रह आपस में सम्बन्धी कहलाते हैं।

(xvii) सधर्मी

जिन ग्रहों के गुण-धर्म एक समान हों, वे एक-दूसरे के सधर्मी कहे जाते हैं जैसे केन्द्रेशों के केन्द्रेश, त्रिकोणेशों के त्रिकोणेश या कारक, त्रिषडायाधीशों के त्रिषडायेश या अष्टमेश एवं द्विर्द्वादशेश का द्विर्द्वादशेश या ग्रह सधर्मी होता है।

(xviii) विरुद्ध धर्मी

जिन ग्रहों के गुण-धर्म असमान हों, वे एक-दूसरे के विरुद्ध धर्मी होते हैं- जैसे त्रिकोणेश का त्रिषडायाधीश या अष्टमेश, योगकारक का मारक या अष्टमेश एकादशेश।

(xix) उभयधर्मी

जिस भाव में शुभ एवं अशुभ दोनों की सम्भावना रहती है, उनके स्वामी उभयधर्मी होते हैं जैसे चतुर्थेश, सप्तमेश एवं दशमेश। इसलिए लग्नेश के अलावा अन्य केन्द्रेश उभयधर्मी होते हैं।

(xx) अनुभयधर्मी

जिन भावों में शुभ या अशुभ कोई भी गुणधर्म न होता है, उनके स्वामी अनुभयधर्मी होते हैं। जैसे द्वितीय या द्वादश भाव के स्वामी सूर्य या चन्द्रमा।

(xxi) दृष्टि

सभी ग्रह अपने स्थान से सप्तम को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। तथा शनि-तीसरे एवं दशम को गुरु-पंचम एवं नवम को और मंगल-चतुर्थ एवं अष्टम स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखता है। यहाँ पाद दृष्टि ग्राह्य नहीं है।

(xxii) सम्बन्ध

ग्रहों के सम्बन्ध चार प्रकार के होते हैं- १. स्थान, २. युति, ३. एकान्तर एवं ४. दृष्टि। जो ग्रह एक दूसरे की राशि में स्थित हों, उनमें स्थान सम्बन्ध, जो ग्रह साथ-साथ स्थित हों उनमें युति सम्बन्ध, जिन दो ग्रहों में से एक दूसरे राशि में स्थित हो और दूसरा उसे देखता हो, उनमें एकान्तर सम्बन्ध तथा जो ग्रह परस्पर एक-दूसरे को देखते हों उनमें दृष्टि सम्बन्ध होता है।

16. दृष्टि-विचार

ग्रहों की दृष्टि का विचार सभी होरा ग्रन्थों में मिलता है। यह दृष्टि दो प्रकार की होती हैं- १. स्वाभाविक दृष्टि एवं २. विशेष दृष्टि। सभी ग्रह अपने से सप्तमस्थ ग्रह को देखते हैं, यह ग्रहों की स्वाभाविक दृष्टि है तथा शनि तीसरे एवं दशवें स्थान में स्थित ग्रह को, गुरु पांचवें एवं नवम स्थान में स्थित ग्रह को तथा मंगल चौथे एवं आठवें स्थान में स्थित ग्रह को विशेष दृष्टि से देखता है।

होरा ग्रन्थ में दृष्टि फलादेश का सामान्य या सहायक उपकरण मानी गयी है। क्योंकि यह कभी-कभी योग बनाने में सहायता करती है, तो कभी-कभी योग के निश्चित फल में ह्रास या वृद्धि कर देती है। यथा जब योग के प्रमुख तत्त्वों पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो योगजन्य फल बढ़ जाता है और जब इन पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो योगजन्य फल घट जाता है। इतना ही नहीं कभी-कभी दृष्टि योगजन्य फल को विपरीत भी कर देती है। यथा अरिष्ट योगों पर शुभ ग्रहों की दृष्टि से अरिष्टभंग होना तथा राजयोग पर पापग्रहों की दृष्टि से राजयोग का भंग होना इसके उदाहरण हैं। किन्तु लघुपाराशरी में दृष्टि फल का उपकरण नहीं, अपितु सम्बन्ध का उपकरण मानी गयी है। यहाँ दृष्टि का उपयोग-दृष्टिसम्बन्ध एवं एकान्तर (अन्यतर) दृष्टि सम्बन्ध का प्रतिपादन करने के लिए किया गया है।

सामान्य जातक ग्रन्थों में ग्रहों की पाददृष्टि एवं पूर्ण दृष्टि दोनों प्रकार की दृष्टियों का प्रयोग एवं उपयोग मिलता है।[१] किन्तु लघुपाराशरीकार ग्रहों की पाददृष्टि से सहमत नहीं हैं।

होरा ग्रन्थों में दृष्टि ग्रहों के साथ-साथ राशि एवं भावों पर भी होती है, किन्तु लघुपाराशरी में यह केवल ग्रहों पर ही मानी गयी है। इसलिए यहाँ "पश्यन्ति सप्तमं सर्वे" का अर्थ है कि सभी ग्रह अपने से सप्तम स्थान में स्थित ग्रह को देखते हैं न कि सप्तम भाव या सातवीं राशि को।

"एतच्छात्रानुसारेण संज्ञां ब्रूमो विशेषतः" श्लोक ४ में अभिव्यक्त अपने संकल्प के अनुसार ग्रन्थकर्ता ने यहाँ ग्रहों की दृष्टि का विचार करते समय अपने अपने दृष्टि सिद्धांत में तीन विशेषताएं बतलायीं, जो होरा ग्रन्थों में नहीं मिलती। ये विशेषताएं हैं- १. दृष्टि सम्बन्ध का उपकरण मात्र है, २. दृष्टि केवल ग्रहों पर पड़ती है, भाव या राशि पर नहीं और ३. यहाँ पूर्ण दृष्टि ही ग्राह्य है।

17. दृष्टि-सिद्धांत

लघुपाराशरी में निरूपित दृष्टि की विशेषता को समझने के लिए दृष्टि-सिद्धांत पर ध्यान देना आवश्यक है। सामान्यतया हमारी दृष्टि दो प्रकार की होती हैं- १. प्रत्यक्ष दृष्टि, २. अवधानरूपा दृष्टि। प्रत्यक्ष दृष्टि से तात्पर्य है-अपनी आंखों से देखना। इस दृष्टि से हम सामने स्थित दृश्य एवं दृश्य-पदार्थों को देखते हैं। अवधान हमारा ध्यान है। अपने कर्तव्य, दायित्व, निश्चय एवं प्राथमिकताओं की ओर हमारा ध्यान लगातार बना रहता है। चाहे वे हमारे सामने हों या न हों। इस लगातार बने रहने वाले ध्यान को अवधान कहते हैं। इस अवधान के कारणं सामने विद्यमान न

---

१. (i) बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० २७ श्लो० ३-४
(ii) बृहज्जातक अ० २२ श्लो० १३
(iii) सारावली अ० ४ श्लो० ३२

होने पर कुछ चीजें मानस पटल पर टी.वी. के स्क्रीन की तरह साफ-साफ दिखलाई देती हैं।

हमारी दृष्टि प्रकाश (किरण) के सामने एक सरल रेखाकार मार्ग पर चलती है। इसलिए दृष्टि (नेत्र) के एकदम ठीक सामने जो पदार्थ या दृश्य होता है, वही हमें दिखाई देता है। यदि पदार्थ या दृश्य दृष्टि के एकदम ठीक सामने न हो तो उसे देखने के लिए पुतलियों को घुमाना पड़ता है और यदि वह दांये-बांये या विपरीत दिशा में हो तो हमें गर्दन को या कभी-कभी स्वयं को भी घुमाना पड़ता है। तात्पर्य यह है कि दृश्य को देखने के लिए-दृष्टि और दृश्य का एकदम ठीक सामने-सरल रेखाकार मार्ग पर होना अनिवार्य है।

प्रत्येक सरल रेखा पर १८० अंश या ६ राशियाँ होती हैं। अतः दृष्टि मार्ग पर दृश्य एवं दर्शक का अन्तर सदैव ६ राशि या १८० अंश का होता हैं कुण्डली में ६ राशियों के अन्तर पर सप्तम स्थान होता है। अतः कुण्डली में स्थित प्रत्येक ग्रह अपने स्थान से सप्तम स्थान में विद्यमान ग्रह को स्वाभाविक दृष्टि से देखते हैं।[१]

प्राणीमात्र का सतत अवधान अपने सहज कर्म की ओर रहता है। इसी से उसका एक निश्चित दृष्टिकोण, विचारधारा, आदत एवं पहचान बनती है। यद्यपि सहज-कर्म अमूर्त है, फिर भी अवधान की सततता के कारण वह व्यक्ति के मानस-पटल पर मूर्तिवत खड़ा प्रतीत होता है और व्यक्ति को हर समय तथा हर परिस्थिति में उसका लगातार बोध होता रहता है। इस अवधान को ही यहाँ विशेष दृष्टि कहा गया है क्योंकि इसके प्रभाववश सहजकर्म अमूर्त होने पर भी व्यक्ति के चेतन एवं अवचेतन मस्तिष्क में मूर्तवत विद्यमान रहता है। अवधान की यह स्वाभाविक विशेषता है कि उसके लगते ही कोई भी बात-चीत दिल और दिमाग पर छा जाती है।

---

१. लघुपाराशरी श्लो० ५

होरा ग्रन्थों में मंगल को सेनापति, गुरु को पुराहित तथा शनि को सेवक माना गया है।[१] जन्म कुण्डली में द्वादश भावों में से तृतीय भाव श्रम एवं प्रयत्न का तथा दशम भाव आज्ञा का सूचक है। स्वामी की आज्ञा का ध्यान रखना और उसको पूरा करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना सेवक का सहज कर्म है। अतः शनि की तृतीय एवं दशम पर विशेष दृष्टि होती है। कुण्डली में पंचम भाव विद्या एवं शास्त्रों का तथा नवम भाव धर्म का सूचक है। विद्या, शास्त्र एवं धर्म का ध्यान रखना पुरोहित का सहज कर्म है। इसलिए गुरु की पंचम एवं नवम पर विशेष दृष्टि होती है। इसी प्रकार कुण्डली में चतुर्थ भाव सुख-शान्ति का तथा अष्टम भाव आक्रमण एवं उपद्रवों का सूचक है। राज्य में सुख-शान्ति की व्यवस्था रखना तथा बाह्य आक्रमण एवं उपद्रवों से उसकी रक्षा करना सेनापति का सहज-कर्म है। अतः मंगल की चतुर्थ एवं अष्टम पर विशेष दृष्टि होती है। शेष ग्रहों-सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक्र, राहु एवं केतु पर विशेष दायित्व न होने के कारण इनकी विशेष दृष्टि नहीं मानी गयी। ये ग्रह अपने सामने पड़ने वाली वस्तुओं एवं घटनाओं को ही देखते हैं। अतः इनकी सप्तम दृष्टि ही मानी गयी है।

सभी ग्रहों की सप्तम दृष्टि होती है- इस तथ्य की पुष्टि के लिए एक अन्य तर्क भी दिया जा सकता है कि समस्त प्राणियों को विपरीत योनि के प्रति सहज रुझान अवधान रहता है। यह रुझान केवल सांसारिक लोगों में ही पाया जाता हो तो ऐसी बात नहीं है। कठोरतम तपस्या करने वाले, वीतराग, ऋषि-मुनि भी स्त्री रूप माधुरी को देखते ही मोहग्रस्त हो जाते हैं- इस विषय में विश्वामित्र एवं च्यवन आदि के नाम साक्ष्य के रूप में उपस्थित किये जा सकते हैं। क्योंकि पुरुष की कुण्डली में सप्तम भाव उसकी प्रेमिका या पत्नी का तथा स्त्री की कुण्डली में यह भाव उसके प्रेमी या पति का सूचक होता है। यही कारण है कि विपरीत योनि के प्रति सहज रुझान होने के कारण सभी ग्रह सप्तम को स्वाभाविक रूप से देखते हैं।

---

१. बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३ श्लो० १५-१६

18. दृष्टि सिद्धांत में ध्यान रखने योग्य बातें

(i) ग्रहों की दृष्टि के सिद्धांत में पहली महत्त्वपूर्ण बात है- दृष्टि सीमा। लघुपाराशरी के अनुसार ग्रहों की दृष्टि सीमा इस प्रकार विघटित की जा सकती है-

ग्रह	दृष्टि-बिन्दु
सभी ग्रह	स्पष्टग्रह+१८० अंश = सप्तम दृष्टि बिन्दु
शनि	स्पष्टशनि+६० अंश = तृतीय दृष्टि बिन्दु
शनि	स्पष्टशनि+२७० अंश = दशम दृष्टि बिन्दु
गुरु	स्पष्टगुरु+१२० अंश = पंचम दृष्टि बिन्दु
गुरु	स्पष्टगुरु+२४० अंश = नवम दृष्टि बिन्दु
मंगल	स्पष्ट मंगल+९० अंश = चतुर्थ दृष्टि बिन्दु
मंगल	स्पष्ट मंगल+२१० अंश = अष्टम दृष्टि बिन्दु

लघुपाराशरी के श्लोक संख्या पाँच में सप्तम, त्रिदश, त्रिकोण एवं चतुरष्टम तात्पर्य अंशात्मक दूरी से है, जैसे द्रष्टा के ग्रहस्पष्ट में १८० अंश जोड़ने से सप्तम, उसके ६० अंश जोड़ने से तृतीय, उसमें २७० अंश जोड़ने से दशम, उसमें १२० अंश जोड़ने से पंचम, उसमें २४० अंश जोड़ने से नवम, उसमें ९० अंश जोड़ने से चतुर्थ एवं उसमें २१० अंश जोड़ने से अष्टम होता है।

इस प्रकार दृष्टि-बिन्दु निर्धारित कर उससे १५ अंश आगे और १५ अंश पीछे तक क्षेत्र को दृष्टि-सीमा कहा जा सकता है।

(ii) यहाँ एक विचारणीय प्रश्न है कि क्या पूरी दृष्टि सीमा में दृष्टि का प्रभाव एक जैसा समान होता है? या दृष्टि बिन्दु के समीप/दूर होने से दृष्टि के प्रभाव में कोई अन्तर पड़ता है? इस प्रश्न के उत्तर में लघुपाराशरीकार मौन हैं, क्योंकि इस ग्रन्थ में दृष्टि सीमा या दृष्टि बिन्दु का विचार नहीं किया गया।

किन्तु मान लीजिए कि किसी कुण्डली में मंगल कन्या के २ अंश

(५/२°) पर है और गुरु मेष के २९ अंश (०/२९°) पर हो और गुरु मेष के २ अंश (०/२°) पर हो तो भी इस श्लोक के अनुसार मंगल की गुरु पर दृष्टि पड़ती है। किन्तु पहली स्थिति में मंगल से गुरु की दूरी २३७ अंश है, जबकि दूसरी स्थिति में गुरु की दूरी मात्र १८३ अंश है। क्या इन दोनों स्थितियों में मंगल की दृष्टि का प्रभाव एक समान माना जा सकता है? वस्तुतः यहाँ दोनों स्थितियों में मंगल अष्टम दृष्टि बिन्दु (२१० अंश) से २७-२७ अंश की समान दूरी है। किन्तु दूसरी स्थिति में मंगल के सप्तम दृष्टि बिन्दु (१८० अंश) से काफी निकटता है। अतः दोनों उदाहरणों में मंगल की अष्टम दृष्टि के समान होने पर भी द्वितीय उदाहरण में मंगल की सप्तम दृष्टि का प्रभाव गुरु को विशेष रूप से प्रभावित कर सकता है। इस विषय पर ज्योतिष शास्त्र के अनुसन्धाताओं को ध्यान देना चाहिए।

(iii) इस ग्रन्थ में ग्रहों की दृष्टि केवल ग्रहों पर ही मानी गयी है, राशि या भाव पर नहीं। क्योंकि दृष्टि का उपयोग यहाँ मात्र ग्रहों के पारस्परिक सम्बन्धों के निर्धारण में होता है।[१] अन्य किसी बात में नहीं। जबकि होरा ग्रन्थों में दृष्टि योग को उत्पन्न भी करती है और उसके फल की मात्रा ह्रास-वृद्धि या कभी-कभी नाश भी कर देती है।[२] इस प्रकार होरा ग्रन्थों में दृष्टि की भूमिका व्यापक है, जबकि लघुपाराशरी में अत्यन्त सीमित।

19. त्रिकोण क्या है?

त्रिकोण शब्द का अर्थ तिकोना या तीन कोने वाला होता है। कुण्डली में लग्न, पंचम एवं नवम भाव को काल्पनिक रेखाओं से मिला दिया जाय, तो एक त्रिकोण की आकृति उभर कर सामने आती है, यथा-

---

१. लघुपाराशरी श्लो० १६

२. बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० १०, ११, ३७, ४०, ४२ एवं ४३ आदि।
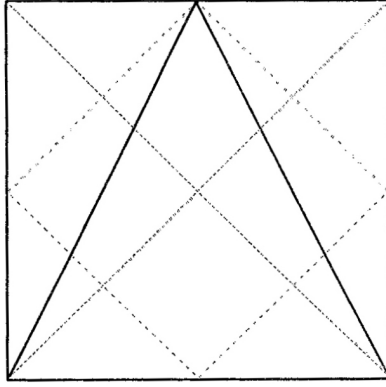
यदि "लग्नात्पंचम भाग्यस्य कोणसंज्ञा विधीयते"[१]- इस सामान्य परिभाषा के अनुसार त्रिकोण शब्द से केवल पंचम एवं नवम भाव का ही ग्रहण किया जाय, और इन्हीं दोनों भावों को लघुपाराशरीकार का अभिप्रेत मान लिया जाय तो यहाँ श्लोक संख्या छः में "त्रिकोणनेतार:"- यह बहुवचनान्त शब्द न होकर "त्रिकोणनेतारो" जैसा द्विवचनान्त प्रयोग होना चाहिए। किन्तु मूल श्लोक में "त्रिकोण नेतार:"- यह बहुवचनान्त पाठ है। अत: त्रिकोण शब्द का अभिप्राय लग्न, पंचम एवं नवम इन तीनों भावों से है।

त्रिकोण शब्द के उक्त अर्थ की पुष्टि लघुपाराशरी में कई प्रसंगों में भी मिलती है। यथा-श्लोक संख्या १५ में कहा गया है कि "केन्द्र एवं त्रिकोण के स्वामी दोषयुक्त होने पर भी केवल सम्बन्धबशात् बलवान होकर योग कारक हो जाते हैं।"[२] और इसका उदाहरण देते हुए आचार्य कहते हैं कि- "यदि लग्नेश एवं दशमेश परस्पर एक दूसरे के स्थान में हों या वे दोनों साथ-साथ हों तो राजयोग कारक होते हैं। इस योग में

१. बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ८ श्लो० ३५

२. केन्द्रत्रिकोणनेतारौ दोषयुक्तावपि स्वयम्।
सम्बन्धमात्राद् बलिनौ भवेतां योगकारकौ।। -लघुपाराशरी श्लो० १५

उत्पन्न व्यक्ति विख्यात एवं विजयी राजा होता है।"[१] यहाँ विचारणीय बात यह है कि यदि 'त्रिकोण' में लग्न का ग्रहण न किया जाय तो लग्नेश एवं दशमेश का एक दूसरे के स्थान में या साथ-साथ बैठना ही केन्द्रेशों का सम्बन्ध होगा। जबकि दो केन्द्रेशों का सम्बन्ध राजयोग कारक नहीं होता इसके विपरीत लग्नेश को त्रिकोणेश मानने से इस उदाहरण में लग्नेश एवं दशमेश का सम्बन्ध-त्रिकोणेश एवं केन्द्रेश का सम्बन्ध होने के कारण राजयोग कारक हो जाता है।

इस अन्त: साक्ष्यों के होने पर भी यदि लग्नेश को केन्द्रेश ही माना जाय, तो कोई शुभ ग्रह लग्नेश होने से शुभ फलदायक नहीं माना जायेगा, अपितु वह केन्द्राधिपत्य दोष से ग्रस्त रहेगा।[२] यथा-

कुण्डली संख्या १-

मं ८ रा
६
गु ९
७
५ बु.
१०
४ सू.
११
१
३
चं १२ श.
के २ शु.

कुण्डली संख्या १ में तुला लग्न का स्वामी शुक्र है, जो निसर्गत: शुभ ग्रह है। अत: वह श्लोक संख्या ७ एवं १० के नियमानुसार केन्द्राधिपत्य दोष युक्त है। इस स्थिति में वह शुभ फलदायक कैसे होगा? जबकि लघुपाराशरी के श्लोक संख्या ९ के अनुसार वह शुभ फल देता है। क्योंकि "यदि अष्टमेश लग्नेश भी हो, तो यह शुभ सन्धाता होता है।[३]

---

१. कर्मलग्नाधिनेतारावन्योन्याश्रयसंस्थितौ।
राजयोगाविति प्रोक्तं विख्यातो विजयी भवेत्।। -लघुपाराशरी श्लो० ४१

२. लघुपाराशरी श्लो० ७ एवं १०

३. "स एव शुभसन्धाता लग्नाधीशोऽपि चेत्स्वयम्।" -लघुपाराशरी श्लो० ९

लघुपाराशरी के इन तीनों अन्तः साक्ष्यों[१] में एकरूपता तभी हो सकती है, जब लग्नेश को त्रिकोणेश माना जाय। ऐसा स्वीकार करने से कुण्डली संख्या १ में केन्द्राधिपत्य का प्रश्न नहीं उठेगा और लग्नेश-त्रिकोणेश होने के कारण अष्टमेशत्व-दोष को दूर कर शुभसन्धाता कहा जायेगा।

अतः हमारी राय में लघुपाराशरी से फलादेश करते समय विद्वानों को लग्न, पंचम एवं नवम भाव को त्रिकोण, चतुर्थ, सप्तम एवं दशम भाव को केन्द्र तथा तृतीय, षष्ठ एवं एकादश भाव को त्रिषडाय मानना चाहिए। ऐसा मानने से इस ग्रन्थ के सभी वचनों में एकरूपता रहेगी। सम्भवतः इस समग्र परिस्थिति को ध्यान में रख कर ही महर्षि पराशर ने लग्न को केन्द्र एवं त्रिकोण दोनों भावों में माना होगा। यथा- "लग्न" केन्द्र त्रिकोणत्वाद् विशेषण शुभप्रदम्।"[२]

20. त्रिकोण का स्वामी शुभफलदायक

होरा शास्त्र में ग्रहों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया गया है- १. शुभ ग्रह तथा २. पाप ग्रह। वहाँ गुरु, शुक्र, पूर्ण चन्द्रमा एवं शुभ ग्रह से युक्त बुध को शुभ ग्रह माना गया है और सूर्य, मंगल, शनि क्षीणचन्द्र पापयुक्त बुध, राहु एवं केतु को पाप ग्रह माना जाता है।[३] होरा शास्त्र के आचार्यो का मत है कि शुभग्रह स्वभावतः शुभफलदायक और पाप ग्रह स्वभावतः पापफलदायक होते हैं।

किन्तु लघुपाराशरी में गुरु, शुक्र, पूर्णचन्द्रमा एवं शुभयुक्त बुध को सौम्यग्रह, सूर्य, मंगल, शनि, क्षीण चन्द्रमा एवं पापयुक्त बुध को क्रूर ग्रह और राहु एवं केतु को तमोग्रह कहा गया है।[४] इस ग्रन्थ में शुभ एवं पापफल-दायकता का निरूपण होराग्रन्थों की लीक से हटकर सर्वथा नये ढंग से किया गया है। इस विषय में लघुपाराशरीकार का सिद्धांत पक्ष यह

---

१. (i) त्रिकोणनेतारः श्लो० ६, (ii) कर्मलग्नाधिनेतारौ श्लो० ४१ तथा (iii) स एव शुभसन्धाता श्लो० ९।

२. बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० ३

३. बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३ श्लो० १२

४. लघुपाराशरी श्लो० ७ एवं १३

है, "सभी ग्रह चाहे वे सौम्य हों या क्रूर यदि त्रिकोण के स्वामी हों, तो शुभ फल देते हैं और यदि वे त्रिषडाय के स्वामी हों, तो पाप फल देते हैं।[१]

(i) शुभता की परिभाषा

किसी भी परिभाषा या लक्षण का अव्याप्ति, अतिव्याप्ति एवं असंभव इन तीनों दोषों से मुक्त होना तथा तर्क पर आधारित होना अनिवार्य होता है। इस शास्त्र में छः तर्क माने जाते हैं- १. गणित, २. उपपत्ति, ३. युक्ति, ४. उदाहरण, ५. कार्य कारण एवं ६. व्यर्थापत्ति। इनमें भी पूर्व-पूर्व बली होते हैं- अर्थात् उक्त तर्कों से गणित सबसे बली तर्क है अग्रिम तर्कों में उत्तरोत्तर बल का ह्रास माना गया है।

शुभ फल को यदि शब्दों के माध्यम से परिभाषित किया जाय, तो वह फल शुभफल कहलाता है जो मन के अनुकूल हो।[२] तात्पर्य यह है कि व्यक्ति जैसा चाहे, वैसा फल मिलना शुभ फल कहा जाता है और व्यक्ति जैसा चाहे, वैसा न मिलना या व्यक्ति जैसा न चाहे, वैसा मिलना पापफल कहलाता है।[३]

यदि इस बात को गणित के द्वारा प्रतिपादित किया जाय तो इसकी गणितीय परिभाषा का विकास इस प्रकार होगा- व्यक्ति या उसका मन क्या चाहता है? संतुष्टि। क्योंकि व्यक्ति जो कुछ चाहता है उसको प्राप्त कर लेने पर मन संतुष्टि का अनुभव करता है। यही संतुष्टि मनोनुकूल भी है और शुभफल का प्रतीक भी है। इसको हम निम्नलिखित समीकरण के द्वारा परिभाषित कर सकते हैं-

$$\text{शुभफल} = \text{संतुष्टि} = \frac{\text{प्राप्ति}}{\text{आकांक्षा}}$$

---

१. तत्रैव श्लो० ६

२. मनोऽनुकूलं शुभम्।

३. मनः प्रतिकूलमशुभम्।

शुभफल का यह सूत्र बतलाया है कि जो तत्त्व प्राप्ति को बढ़ाते हैं या आकांक्षा को बढ़ाते हैं। वे सब शुभफलदायक होते हैं। इसके विपरीत जो तत्त्वप्राप्ति को घटाते या आकांक्षा को बढ़ाते हैं वे पाप फलदायक होते हैं।

प्राप्ति को बढ़ाने में स्वास्थ्य, बुद्धि एवं भाग्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है स्वास्थ्य, बुद्धिमान एवं भाग्यवान व्यक्ति के लिए कुछ भी असंभव नहीं हो पाता, वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है।

(ii) शुभता का प्रतीक-त्रिकोणेश

अनुच्छेद १८ में बतलाया जा चुका है कि-कुण्डली में लग्न, पंचम एवं नवम भाव को त्रिकोण कहते हैं इनका स्वामी त्रिकोण कहलाता है। होरा ग्रन्थों में लग्न शरीर एवं स्वास्थ्य का, पंचम विद्या एवं बुद्धि का तथा नवम धर्म एवं भाग्य का प्रतिनिधि भाव होता है। संसार में सभी कार्यों में शरीर एवं आरोग्यता द्वारा, विद्या एवं बुद्धि द्वारा या धर्म एवं भाग्य द्वारा ही सफलता एवं संतुष्टि मिलती है।

वस्तुतः शरीर एवं आरोग्यता, विद्या एवं बुद्धि और धर्म (कर्तव्यनिष्ठा) एवं भाग्य-ये ऐसे तत्त्व हैं, जिनसे मनुष्य की सभी मनोकामनाएं पूरी हो जाती हैं। अतः इनके प्रतिनिधि भाव (लग्न, पंचम एवं नवम) और उनके स्वामी त्रिकोणेश को शुभफलदायक कहा गया है यथा-

"लग्नमारोग्यमाख्यातं तस्मात्तदधिपः शुभः।
नवमो भाग्यभावोऽस्ति बुद्धिभावश्च पंचमः।
तस्माद् तदाधिपत्येन ग्रहाः सर्वे शुभप्रदाः।।"

21. त्रिकोणेश यदि त्रिषडायाधीश हो तो दोषयुक्त होता है

यदि लघुपाराशरी के श्लोक संख्या छः का इस प्रकार अर्थ किया जाय कि "त्रिकोणेश यदि त्रिषडाय के स्वामी हों तो पापफल देते हैं।[१] तो यह अर्थ उचित नहीं लगता।

---

१. "सर्वे त्रिकोणनेतारः यदि त्रिषडायानां पतयः पापफलप्रदाः।"

कारण यह है कि-सूर्य एवं चन्द्रमा को छोड़कर सभी ग्रहों की दो-दो राशियाँ होती हैं, उनमें से एक राशि सम और दूसरी विषम होती है। कुण्डली के द्वादश भाव भी एक विषय और दूसरा सम के क्रम से होते हैं। अतः यदि लग्न में विषय राशि हो, तृतीय, पंचम, नवम एवं एकादश भाव में विषम राशि ही रहेगी और यदि लग्न में सम राशि हो तो तृतीय, पंचम, नवम एवं एकादश में सम राशि होगी। तात्पर्य यह है कि त्रिकोण में सम या विषम कोई भी राशि हो जो ग्रह त्रिकोणेश होता है वह तृतीय एवं एकादश का स्वामी नहीं हो सकता।

त्रिकोणेश केवल कर्क, कन्या एवं मकर लग्न में षष्ठेश होता है। कर्क लग्न में गुरु, कन्या लग्न में शनि एवं मकर लग्न में बुध त्रिकोणेश होने के साथ-साथ षष्ठेश होते हैं। अतः त्रिकोणेश यदि त्रिषडायाधीश हो तो पापफल देता है। यह बात बतलाने के लिए "पतयः त्रिषडायानां यदि पापफलप्रदाः" ऐसा बहुवचनान्त वाक्य न कहकर "पतयः षष्ठभावस्य" ऐसा एक वचनान्त वाक्य कहना चाहिए था। क्योंकि त्रिकोणेश ग्रह त्रिषडाय का स्वामी नहीं हो सकता। वह तो केवल षष्ठेश हो सकता है।

इसलिए "त्रिकोणेश यदि त्रिषडाय का स्वामी हो तो वह पापफल देता है। यह अर्थ उचित नहीं है। वस्तुतः इस श्लोक में 'यदि' शब्द त्रिषडायाधीशों के पापफल का बोधक है। परिणामतः इसका अर्थ होता है कि सभी ग्रह यदि त्रिषडायाधीश हों तो पापफल देते हैं। क्योंकि पाराशरी होरा में भी यही कहा गया है।[१]

अब प्रश्न यह है कि यदि त्रिकोणेश ग्रह षष्ठेश भी हो तो वह कैसा होगा? इसका उत्तर लघुपाराशरी एवं उसकी परम्परा में विरचित सुश्लोक शतक में दिया गया है, "कि जो केन्द्रेश या त्रिषडायाधीश हो। वह दोषयुक्त होता है।"[२] लघुपाराशरी में भी "केन्द्र एवं त्रिकोण के

---

१. "त्रिषडायाधिपाः सर्वे ग्रहाः पापफलाः स्मृताः।"
—बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० ४

२. "केन्द्रकोणाधिपो योऽहि स भवेत् त्रिषडायपः।
दोषयुक् तु विज्ञेयः पाराशरमुनेर्मतम्।।"—सुश्लोक शतक, संज्ञाध्याय श्लो० १४

स्वामियों के दोषयुक्त होने"[१] की चर्चा श्लोक संख्या १५ में मिलती है। इन अन्तः साक्ष्य एवं बहिः साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि त्रिकोणेश यदि त्रिषडायाधीश हो तो वह दोषयुक्त होता है, न कि पापफल दाता।

उदाहरण

उदाहरण के लिए तीन कुण्डलियाँ विचारणीय हैं-

कुण्डली संख्या २

कुण्डली संख्या ३

७
के. ५ म.
८
६
४
शु.
बु.
९
श. ३ सू.
चं
गु
१०
१२
२
रा. ११
१

कुण्डली संख्या ४

११ गु.
१०
९ के.
१२
सू. शु. बु.
८ शं.
१
मं
७
२
४
६ चं.
रा. ३
५

---

१. "केन्द्रत्रिकोणनेतारौ दोषयुक्तावपि स्वयम्।
सम्बन्धमात्राद् बलिनौ भवेतां योगकारकौ।।"

इन कुण्डलियों में कुण्डली संख्या २ में गुरु, कुण्डली संख्या ३ में शनि एवं कुण्डली संख्या ४ में बुध त्रिकोणेश होने के साथ-साथ षष्ठेश है। ये तीनों कुण्डलियाँ प्रसिद्ध राजनेताओं की हैं। इनमें से कुण्डली संख्या २ के व्यक्ति ने गुरु की दशा में भारत के प्रधानमंत्री का पद सम्भाला। अतः त्रिकोणेश केवल षष्ठेश होने से पाप फल देता है ऐसा नहीं कहा जा सकता। हाँ वह दोषयुक्त अवश्य होता है।

22. पापफल

अनुच्छेद १९ में बतलाया जा चुका है कि मन के प्रतिकूल फल को पापफल कहते हैं। तात्पर्य यह है कि व्यक्ति जैसा चाहता है वैसा न मिलना या वह जैसा न चाहता हो वैसा मिलना पापफल कहलाता है।

इसी अनुच्छेद में शुभफल का सूत्र दिया है-

$$\text{शुभफल} = \frac{\text{प्राप्ति}}{\text{आकांक्षा}}$$

इस सूत्र के आधार पर कहा जा सकता है कि जो तत्त्व प्राप्ति को घटाते या आकांक्षा को बढ़ाते हैं- वे सब पापफलदायक होते हैं।

श्रम से प्राप्ति अवश्य बढ़ती है किन्तु वह आकांक्षा के अनुरूप या उसके अनुपात में नहीं बढ़ती। यदि ऐसा न होता तो संसार के सभी श्रमिक सम्पन्न एवं संतुष्ट हो जाते। वस्तुतः श्रम से प्राप्ति मन्दगति से बढ़ती है जबकि आकांक्षाएं तीव्र गति से बढ़ती हैं। अतः आकांक्षा के अनुपात में प्राप्ति न होने के कारण श्रम पापफल दायक है।

रोग एवं शत्रु प्राप्ति में बाधक होते हैं। ये दोनों प्राप्ति को घटाते हैं। अतः ये पापफलदायक होते हैं।

यद्यपि आय के बढ़ने से संतुष्टि बढ़नी चाहिए ऐसा कुछ लोग कह सकते हैं। किन्तु वस्तुतः जैसे-जैसे आय बढ़ती है वैसे-वैसे आकांक्षाएं और तेजी से बढ़ जाती हैं। क्योंकि आय में वृद्धि क्रमिक गति से होती है जबकि आकांक्षाओं में वृद्धि गुणोत्तर होती है। अतः आय के बढ़ने से

संतुष्टि नहीं बढ़ती अपितु मनुष्य की टैन्शन हाइपरटैन्सन में बदल जाती है। विश्व के सभी विकसित देश और विकसित समाज इसके साक्ष्य हैं। अतः आय भी पापफलदायक है।

इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि श्रम, रोग एवं आय संतुष्टि के बजाय असंतुष्टि देते हैं। अतः ये पापफल दायक हैं। केवल स्वास्थ्य, बुद्धि एवं भाग्य ही ऐसे तत्त्व हैं जो मनुष्य की सभी मनोकामनाओं की पूर्ति कर उसे संतुष्टि दे सकते हैं। इसलिए श्रम, रोग एवं आय के प्रतिनिधि भाव-तृतीय, षष्ठ एवं एकादश तथा उनके स्वामी त्रिषडायाधीश को पापफलदायक कहा गया है।

23. त्रिषडाय का स्वामी पापफल दायक

कुण्डली में तृतीय, षष्ठ एवं एकादश भाव का स्वामी त्रिषडायाधीश कहलाता है। होराशास्त्र में तृतीय परिश्रम का, षष्ठ भाव रोग एवं शत्रु का तथा एकादश भाव आय (अर्थलाभ) का प्रतिनिधित्व करता है।

परिश्रम से तन एवं मन दोनों थक जाते हैं, श्रम करने में मनुष्य को आद्योपान्त असुविधा एवं कष्टानुभूति होती है। अतः मनुष्यमात्र परिश्रम से जी चुराता है। रोग एवं शत्रु से कष्ट के अलावा और कुछ नहीं मिल सकता। अतः परिश्रम, रोग एवं शत्रु व्यक्ति को असन्तोष ही देते हैं। परिणामतः परिश्रम का प्रतिनिधि भाव तृतीय तथा रोग एवं शत्रु का प्रतिनिधि भाव षष्ठ असन्तोषदायक होते हैं। इसलिए तृतीयेश एवं षष्ठेश को लघुपाराशरी में पापफलदायक माना गया है।[१]

भारतीय चिन्तकों का मत आय या अर्थलाभ के बारे में भी सर्वथा मौलिक है। वे अर्थ की उत्पत्ति, प्रयोग-विनियोग एवं नाश का कारण निम्नलिखित १५ अनर्थों को मानते हैं। उनका कहना है कि- १. चोरी, २. हिंसा, ३. झूठ, ४. दम्भ (ढोंग), ५. उच्च महत्वाकांक्षा, ६. क्रोध, ७. स्मद (गर्व), ८. मद, ९. भेद, १०. वैर, ११. अविश्वास,

१. "पतयस्त्रिषडायानां यदि पापफलप्रदाः।" -लघुपाराशरी श्लो० ६

१२. प्रतिस्पर्धा, १३. व्यभिचार, १४. जुआ एवं १५. नशेबाजी। इन १५ अनर्थों के सन्तुलित प्रयोग से अर्थ स्वयं उत्पन्न होता है। उसका प्रयोग एवं विनियोग इन्हीं अनर्थों के लिए होता है और इन अनर्थों के असन्तुलन से वह अपने आप नष्ट हो जाता है। इसलिए वस्तुतः अर्थ-अनर्थमूलक है।[१] और वह प्रारम्भ से समाप्ति तक कष्ट ही कष्ट देता है। इस प्रकार आय भाव भी अनर्थमूलक एवं कष्टप्रद होने के कारण पापफलदायक माना गया है।

24. क्या त्रिकोणेश किसी भाव विशेष में शुभाशुभ फल देता है

स्व० श्री ह० ने० काटवे ने जातकचन्द्रिका की अपनी टीका शुभाशुभ ग्रह-निर्णय विचार में उक्त श्लोक की व्याख्या करते हुए यह मत व्यक्त किया गया है कि "त्रिकोण के स्वामी केन्द्र या त्रिकोण में हो तो अच्छे फल देते हैं-अन्यत्र नहीं।"[२] श्री काटवे का यह कथन युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। क्योंकि कुण्डली में केन्द्र एवं त्रिकोण के अतिरिक्त द्वितीय, तृतीय, षष्ठ, अष्टम, एकादश एवं द्वादश- ये छः भाव होते हैं। इनमें से षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश को त्रिक कहते हैं और त्रिक् में स्थित ग्रह अशुभ फल देते हैं। किन्तु अवशिष्ट-द्वितीय, तृतीय एवं एकादश में स्थित ग्रह अशुभ फल देते अपितु वे शुभ फल देते हैं। इस प्रकार बृहत्पाराशर होराशास्त्र, जिसका अनुसरण कर लघुपाराशरी या जातक चन्द्रिका की रचना की गयी है। उसमें कहीं भी त्रिकोणेश का द्वितीय, तृतीय एवं एकादश भाव में स्थित होने पर अशुभ फल नहीं बतलाया गया है।[३]

---

१. "स्तेयं हिंसाऽनृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमभविश्वाससंस्पर्धाव्यसनानि च।।
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मताः नृणाम्।।" –श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११

२. देखिए-शुभाशुभ ग्रहनिर्णय विचार-जातक चन्द्रिका टीका
–नागपुर प्रकाशन, सन् १९६९ ई० पृष्ठ ११

३. देखिए-(i) बृहत्पाराशर होराशास्त्र-भावेशफलाध्याय (ii) यवन जातक (iii) गर्गजातक एवं (iv) मानसागरी

इस प्रसंग में एक और बात ध्यान देने योग्य है कि त्रिकोणेश किस स्थान में स्थित होने पर शुभ और किस स्थान पर अशुभ फल देता है। यह इस श्लोक[१] का प्रतिपाद्य विषय नहीं है। इस श्लोक में तो त्रिकोणेश को शुभ फलदायक एवं त्रिषडायाधीश का पापफलदायक बतलाया गया है। अतः "त्रिकोण के स्वामी केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हो तो अच्छे फल देते हैं अन्यत्र नहीं यह कथन इस श्लोक के सन्दर्भ में और लघुपाराशरी की दृष्टि में न तो युक्ति-युक्त है और न ही प्रसंगानुकूल है। जिज्ञासु अन्य होराग्रन्थों में इसका फल देख सकते हैं।

25. केन्द्रेश का शुभाशुभत्व

अनुच्छेद १२ (iv) में बतलाया गया है कि ग्रह दो प्रकार के होते हैं- १. सौम्य एवं २. क्रूर। सौम्य को शुभ तथा क्रूर को पाप ग्रह भी कहते हैं। गुरु, शुक्र, पूर्णचन्द्रमा एवं शुभ युक्त बुध ये चारों सौम्यग्रह कहलाते हैं, जबकि सूर्य, मंगल, शनि, क्षीणचन्द्र एवं पापयुक्त बुध-ये पाँचों क्रूर ग्रह कहे जाते हैं। लघुपाराशरी में राहु एवं केतु को तमोग्रह माना गया है।[२]

ग्रहों के आत्मभावानुरूपी फल का प्रतिपादन करने के लिए लघुपाराशरीकार ने ग्रहों के नैसर्गिक शुभाशुभत्व को महत्त्व न देकर भाव के स्वामित्व को ही उनकी शुभता या अशुभता का निर्णायक आधार माना है। वस्तुतः इस ग्रन्थ में सभी जगह होराशास्त्र के सामान्य ग्रन्थों से आगे बढ़कर मौलिक-विचार एवं नये नियमों का तर्कपूर्ण रीति से निरूपण किया गया है।

केन्द्रेश के बारे में लघुपाराशरी के श्लोक[३] संख्या ७ में बतलाया गया है कि- "केन्द्रेश सौम्य ग्रह हो तो वह अपना नैसर्गिक शुभफल नहीं देता और यदि वह क्रूर ग्रह हो तो अपना नैसर्गिक पापफल नहीं देता।"

---

१. "सर्वे त्रिकोणनेतारः ग्रहाः शुभफलप्रदाः।" –लघुपाराशरी श्लो० ६

२. देखिए-लघुपाराशरी श्लो० सं० ७ एवं १३

३. "न दिशन्ति शुभं नृणां सौम्याः केन्द्राधिपा: यदि।
क्रूराश्चेदशुभं० ....।।"

कुण्डली के चतुर्थ, सप्तम एवं दशम स्थान को केन्द्र कहते हैं। यहाँ लग्न के साथ-साथ त्रिकोण माना गया है जैसा कि अनुच्छेद १८ में बतलाया जा चुका है। होराग्रन्थों में चतुर्थभाव सांसारिक सुख का, सप्तम स्त्रीसुख का और दशम भाव राज्य या सत्ता-सुख का प्रतिनिधित्व करता है। संसार में जो व्यक्ति-सांसारिक सुख, स्त्री सुख एवं सत्ता सुख के व्यामोह में फंस जाते हैं वे अपने स्वाभाविक कर्तव्यों से विमुख हो जाते हैं। इसी प्रकार नैसर्गिक सौम्य या क्रूर ग्रह चतुर्थ, सप्तम एवं दशम के स्वामी होते हैं तो अपनी दशा में अत्यन्त स्वाभाविक शुभ या अशुभ फल नहीं देते जैसा कहा गया है-

येषां गृहे सुखं राज्यं धनञ्चापि वराङ्गना।
विस्मरन्ति स्वभावं स्वं ते हि तल्लग्नमानसाः।।

तस्मात् तदाधिपत्येन शुभा नैव शुभं फलम्।
पापाः पापफलं नैव दिशन्तीति परिस्फुटम्।।

और भी-

विस्मरन्ति स्वभावं स्वं जायाराज्यसुखाधिपाः।

लघुपाराशरी के कुछ टीकाकारों[1] एवं अनुयायियों[2] ने श्लोक संख्या ७ के "न दिशन्ति शुभं" तथा "क्रूरश्चेद् अशुभं न दिशन्ति" इन दोनों वाक्यांशों का अर्थ किया है कि "सौम्य ग्रह केन्द्रेश होने पर शुभ फल नहीं देते वे पापफल देते हैं और क्रूर ग्रह केन्द्रेश होने पर पापफल नहीं देते वे शुभ फल देते हैं।" किन्तु कथन न तो युक्तिसंगत है और नही लघुपाराशरी के मूलवचनों से तालमेल रखता है।,

क्योंकि "न दिशन्ति शुभम्"- अर्थात् "शुभं फल नहीं देते"- इस वाक्य में केवल शुभफल का निषेध ही है किन्तु पापफल का विधान

---

१. उद्योतटीका एवं जातक चन्द्रिका प्रो० बी० सूर्यनारायण राव पृ० ८

२. सुश्लोकशतक

नहीं है। इस प्रकार "अशुभं न दिशन्ति"- अर्थात् पापफल नहीं देते इस वाक्य में भी केवल पापफल का निषेध ही है परन्तु शुभ फल का विधान नहीं है। इसलिए "सौम्यग्रह केन्द्रेश होने से शुभफल नहीं देता"- इसका अर्थ पापफल देता है और "क्रूरग्रह केन्द्रेश होने से पापफल नहीं देता- इसका अर्थ शुभफल देता है। ऐसा मानने से अर्थ का अनर्थ हो जायेगा। वस्तुतः यह अर्थ न तो व्याकरण-सम्मत है न प्रसंगानुकूल है और न ही लघुपाराशरी के वचनों के अनुरूप है।

मान लीजिए कि लघुपाराशरीकार का यही अभिप्राय होता कि "सौम्य ग्रह केन्द्रेश होने से पापफल और क्रूर ग्रह केन्द्रेश होने से शुभफल देते हैं" तो ग्रन्थकार को आगे श्लोक संख्या १०, ११ एवं १२ की रचना नहीं करनी पड़ती। श्लोक १० में बतलाया गया है कि "सौम्य ग्रहों में से गुरु एवं शुक्र यदि सप्तमेश होकर सप्तम भाव में बैठे हों तो केन्द्राधिपत्य दोष बलवान होता है।"[१] इससे चतुर्थेश एवं दशमेश सौम्य ग्रह को केन्द्राधिपत्य दोष में न्यूनता स्वयं सिद्ध है। इसी प्रकार श्लोक संख्या १२ में बतलाया गया है कि "क्रूर ग्रह केन्द्रेश होने पर तभी शुभ फलदायक होता है जब वह त्रिकोणेश भी हो। केवल केन्द्रेश होने से वह शुभ फल नहीं देता है।"[२] लघुपाराशरी के इतने स्पष्ट कथन के बावजूद भी पता नहीं किस आधार पर यह अर्थ कि "सौम्य ग्रह केन्द्रेश होने से पापफल और क्रूर ग्रह केन्द्रेश होने से शुभ फल देते हैं।

निष्कर्ष

इस विषय में लघुपाराशरी के सभी नियमों एवं वचनों को ध्यान में रखकर निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि-

---

१. "केन्द्राधिपत्यदोषस्तु बलवान् गुरुशुक्रयोः।
मारकत्वेऽपि च तयोः मारकस्थानसंस्थितिः।।" -लघुपाराशरी श्लो० १०

२. "कुजस्य कर्मनेतृत्वे प्रयुक्ता शुभकारिता।
त्रिकोणस्यापि नेतृत्वे न कर्मेशत्वमात्रतः।।" -लघुपाराशरी श्लो० १२

(i) लग्नेश चाहे वह सौम्य या क्रूर ग्रह हो-केन्द्रेश मानने पर भी शुभ फल देता है।[१]

(ii) सौम्य ग्रह केन्द्रेश हो तो शुभ फल नहीं देते हैं।[२]

(iii) सौम्य ग्रह केन्द्रेश होने के साथ-साथ त्रिषडायाधीश हों तो पाप फल देते हैं।[३]

(iv) सौम्य ग्रह केन्द्रेश होने के साथ-साथ त्रिकोणेश हों तो शुभ फल देते हैं।[४]

(v) क्रूर ग्रह केन्द्रेश हों तो पापफल नहीं देते हैं।[५]

(vi) क्रूर ग्रह केन्द्रेश होने के साथ-साथ त्रिषडायाधीश या अष्टमेश हों तो पापफल ही देते हैं।[६]

(vii) क्रूर ग्रह केन्द्रेश होने के साथ-साथ त्रिकोणेश हों तो शुभ फल देते हैं।[७]

कुछ अन्य टीकाकारों[८] का मत है कि "सौम्य ग्रह केन्द्रेश होकर केन्द्र में स्थित हो तो वह अविचारित रमणीय होता है-अर्थात् इतना शुभ होता है कि इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं होती। और क्रूर ग्रह केन्द्रेश होकर केन्द्र में स्थित हो तो वह विचारित रमणीय होता है अर्थात् विचार करने पर कि वह स्वगृही अतः शुभफलदायक है। सज्जनरंजनी टीकाकार का यह कथन ग्रहों के सामान्य फल का विचार करने के प्रसंग में उचित लगता है। किन्तु लघुपाराशरी में ग्रहों के सामान्य फल का

---

१. लघुपाराशरी श्लो० ९ एवं बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० ३
२. लघुपाराशरी श्लो० ७ एवं बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० २
३. लघुपाराशरी श्लो० ६ एवं बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० ४
४. लघुपाराशरी श्लो० २० एवं बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० १३
५. लघुपाराशरी श्लो० ७ एवं बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० २
६. लघुपाराशरी श्लो० ६ एवं बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० ४
७. लघुपाराशरी श्लो० १२ एवं बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० १४
८. सज्जनरंजनी टीका

विचार नहीं किया गया। यहाँ तो उनके भावानुरूप-स्वाभाविक फल का निरूपण किया गया है।[१] अतः सज्जनरंजनीकार का यह मत लघुपाराशरी के प्रसंग में युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि लघुपाराशरी में शुभ ग्रह केन्द्रेश के केन्द्र में होने पर केन्द्राधिपत्य दोष माना गया है[२] न कि उसे अविचारित रमणीय स्वीकार किया है।

वस्तुतः शास्त्र एक अनुशासित विचारधारा है। इसमें आद्योपान्त एक अनुशासन होता है। यह अनुशासन आधारभूत सिद्धांतों, नियमों एवं उपनियमों को समन्वय के सूत्र से बांधता है। इस अनुशासन के दो प्रमुख तत्त्व होते हैं- १. समन्वय एवं २. व्यर्थापत्ति। समन्वय का कार्य सिद्धांतों एवं नियमों आदि को एक दूसरे से जोड़ना है जबकि व्यर्थापत्ति का काम किसी भी सिद्धांत या नियम को व्यर्थ होने से बचाना है। शास्त्र के इस अनुशासन के परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो "अविचारित रमणीय" एवं "विचारित रमणीय" जैसा कथन लघुपाराशरी के समन्वय को बाधित कर श्लोक संख्या ९ एवं १० को व्यर्थ करने का प्रयत्न करता है, अस्तु।

26. त्रिकोणेश, त्रिषडायाधीश एवं केन्द्रेशों में उत्तरोत्तर प्रबलता

अनुच्छेद १४ (ii) , (iii) एवं (iv) के अनुसार लग्नेश पंचमेश एवं नवमेश को त्रिकोणेश, तृतीयेश, षष्ठेश एवं एकादशेश को त्रिषडायाधीश तथा चतुर्थेश, सप्तमेश एवं दशमेश को केन्द्रेश कहते हैं।

इन तीन-तीन त्रिकोणेशों त्रिषडायाधीशों एवं केन्द्रशों में-पहले से दूसरा और दूसरे से तीसरा उत्तरोत्तर बली होता है। तात्पर्य है कि त्रिकोणेशों में लग्नेश से पंचमेश तथा पंचमेश से नवमेश अधिक बली होता है। इसी प्रकार त्रिषडायाधीशों में तृतीयेश से षष्ठेश तथा षष्ठेश से एकादशेश अधिक बली होता है। और केन्द्रेशों में चतुर्थेश से सप्तमेश तथा सप्तमेश से दशमेश अधिक बली होता है।

---

१. देखिए-अनुच्छेद ८

२. लघुपाराशरी श्लो० १०

कारण यह है कि जीवन में शरीर की तुलना में बुद्धि से और बुद्धि की तुलना में भाग्य से अधिक सफलता मिलती है। अतः इनके प्रतिनिधि भावों के स्वामियों में लग्नेश से पंचमेश तथा पंचमेश से नवमेश को अधिक शुभ फलदायक होने के कारण अधिक बली माना गया है।

इसी प्रकार मानव जीवन में श्रम की तुलना में रोग या शत्रु और इन दोनों की तुलना में आर्थिक प्रपञ्चों से अधिक कष्ट मिलता है। अतः इनके प्रतिनिधि भावों के स्वामियों में तृतीयेश से षष्ठेश तथा षष्ठेश से एकादशेश को अधिक कष्टदायक होने के कारण अधिक बली माना गया है।

ठीक इसी प्रकार मनुष्य सांसारिक सुखों की तुलना में स्त्री प्रसंग में लिप्त होकर तथा स्त्री प्रसंग की तुलना में सत्ता सुख में लिप्त होकर अपने स्वाभाविक कर्मों से विमुख हो जाता है। अतः इनके प्रतिनिधि भावों के स्वामी चतुर्थेश से सप्तमेश तथा सप्तमेश से दशमेश उत्तरोत्तर अधिक बली माने गये हैं।

लघुपाराशरी के श्लोक संख्या सात के- "प्रबलाश्चोत्तरोत्तरम्" इस वाक्य की उक्त व्याख्या से अधिकतम टीकाकार एवं अनुयायी ग्रन्थकार[१] सहमत हैं। किन्तु इसकी उद्योत टीका में टीकाकार ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है कि- "त्रिकोणेश से त्रिषडायाधीश और त्रिषडायाधीश से केन्द्रेश प्रबल होते हैं।"[२] इस विषय में अपनी बात का समर्थन करते हुए उद्योतकार कहते हैं कि- "स्वास्थ्य, बुद्धि एवं भाग्य तथा श्रम, शत्रु एवं आय-ये सब जीवन में सकारात्मक या नकारात्मक साधन ही हैं, साध्य नहीं हैं। साधन का लक्ष्य साध्य तक पहुँचना है और साध्य है- सांसारिक सुख, स्त्री एवं सत्तासुख। अतः त्रिकोणेश एवं त्रिषडायाधीश की अपेक्षा

१. (i) सुश्लोक शतक
(ii) भावार्थरत्नाकर
(iii) भावाकुतूहल
(iv) भावप्रकाश
२. उद्योत टीका पृ० १३

केन्द्रेश प्रबल होता है। त्रिकोणेश एवं त्रिषडायाधीश में से एक सकारात्मक तथा दूसरा नकारात्मक अनुभूतिजन्य साधन है। अतः त्रिकोणेश से त्रिषडायाध ीश प्रबल होता है।

यद्यपि उद्योतकार ने अपनी यह व्याख्या मानवजीवन के व्यवहार पर आधारित की है। किन्तु यदि इस व्याख्या को मान लिया जाय तो केन्द्रेश सबसे बलवान हो जायेगा और दशमेश अधिकतम बली और यदि वह दशमेश क्रूर ग्रह हो तो उसकी बात की क्या है। किन्तु "यह क्रूर ग्रह दशमेश होने पर भी तब तक शुभ फल नहीं दे पाता जब तक वह त्रिकोणेश न हो।"[१]

अतः लघुपाराशरी में "कर्मेशत्व मात्रतः" एवं "त्रिकोणस्यापि नेतृत्वे"- इन वचनों का विचार किया जाय, तो कहा जा सकता है कि उद्योतकार ने अच्छी कल्पना की है किन्तु वह लघुपाराशरी से पूरा सामञ्जस्य स्थापित नहीं कर पाती।

27. द्विर्द्वादशेश का शुभाशुभत्व

द्वितीयेश एवं द्वादशेश की स्वाभाविक शुभाशुभता का निरूपण करते हुए लघुपाराशरी के श्लोक संख्या आठ[२] में बतलाया गया है कि- "द्वितीयेश एवं द्वादशेश स्वभावतः न तो शुभ होता है और न ही पापी। इन दोनों का शुभ या अशुभ होना दो आधारों पर निर्णीत है- १. दूसरे के साहचर्य एवं २. अन्य स्थान का गुण-धर्म।

(i) दूसरों का साहचर्य

द्वितीयेश एवं द्वादशेश की शुभता या अशुभता का निर्धारण दूसरों के साहचर्य पर आधारित होता है। ग्रहों का किसी भाव में बैठना या अन्य ग्रहों के साथ बैठना साहचर्य कहा जाता है। इसलिए द्वितीयेश एवं द्वादशेश

---

१. लघुपाराशरी श्लो० १२

२. "लग्नाद् व्ययद्वितीयेशौ परेषां साहचर्यतः।
स्थानान्तरानुगुण्येन भवतः फलदायकौ।।"

जैसे भाव में बैठे हो या जैसे ग्रह के साथ बैठे हो- वैसा शुभ या अशुभ फल देते हैं।

उदाहरणार्थ-यदि द्वितीयेश या द्वादशेश त्रिकोण में बैठे हों, तो शुभ फल और त्रिषडाय में बैठे हो तो पाप फल देते हैं। यदि सौम्य ग्रह होकर केन्द्र में हों तो शुभ फल नहीं देते और यदि क्रूर ग्रह होकर केन्द्रस्थ हो तो पाप फल नहीं देते। यदि कदाचित् वे अष्टम में हों तो अनिष्ट फल देते हैं।

इसी प्रकार यदि द्वितीयेश या द्वादशेश त्रिकोणेश के साथ हो तो शुभ फल और त्रिषडायेश के साथ हो तो पापफल देता है। यदि वे सौम्य ग्रह केन्द्रेश के साथ हो तो शुभ फल नहीं और यदि क्रूर ग्रह केन्द्रेश के साथ हो तो पाप फल नहीं देते। यदि वे अष्टमेश के साथ हों, तो अनिष्ट फल देते हैं।

"परेषां साहचर्यतः" इस वाक्य का "दूसरे भाव एवं ग्रहों के साहचर्य से" द्वितीयेश एवं द्वादशेश शुभ या अशुभ फल देते हैं-इस अर्थ के जगह "दूसरे ग्रहों के साहचर्य से" वे अपना शुभाशुभ फल देते हैं। ऐसा कुछ टीकाकारों का मत है।[१] किन्तु यदि पूर्वोक्त अर्थ को न माना जाय तो सूर्य एवं चन्द्रमा के द्वितीयेश या द्वादशेश होने पर उनका शुभाशुभत्व निर्धारित नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ मान लीजिए-कि सूर्य या चन्द्रमा किसी कुण्डली में द्वितीयेश या द्वादशेश होकर किसी भाव में अकेले बैठे हों तो किसी ग्रह के साथ न होने और उनकी दूसरी राशि न होने से उनका शुभाशुभत्व निर्धारित नहीं हो पायेगा। इसीलिए सूर्य और चन्द्रमा द्वितीयेश या द्वादशेश के रूप शुभता या अशुभता के निर्णय के लिए यह अर्थ मानना आवश्यक है कि वे दूसरे भाव एवं ग्रहों के साहचर्य से शुभाशुभ फल देते हैं।

---

१. मराठी टीकाकार–
(i) श्री वि० गो० नवाथे
(ii) पं० श्री रघुनाथशास्त्री पटवर्धन
(iii) श्री० ह० ने० काटवे

(ii) अन्य स्थान का गुण-धर्म

संस्कृत में अन्य स्थान को "स्थानान्तर" कहते हैं। उसका गुण-धर्म भी उसके स्वामी को प्रमाणित करता है। इस नियम के अनुसार-द्वितीयेश एवं द्वादशेश की दूसरी राशि जिस भाव में हो उस भाव के शुभाशुभ गुण-धर्म के अनुसार फल देते हैं। उदाहरणार्थ-यदि उनकी दूसरी राशि त्रिकोण में हो तो शुभ फल और त्रिषडाय में हो तो पापफल देते हैं। यदि वे सौम्य ग्रह हो और उनकी दूसरी राशि केन्द्र में हो तो शुभ फल नहीं देते तथा यदि वे क्रूर ग्रह हों और उनकी दूसरी राशि केन्द्र में हो तो वे पाप फल नहीं देते।

(iii) द्वितीयेश एवं द्वादशेश का अपना शुभाशुभत्व न होने का कारण

सूर्य एवं चन्द्रमा तो एक-एक राशि के स्वामी हैं। किन्तु अन्य ग्रह दो-दो राशियों के स्वामी होते हैं। इन दो-दो राशि के स्वामियों का फल उनकी भिन्न-भिन्न राशियों के भिन्न-भिन्न भावों में स्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकता है। किन्तु द्वितीयेश एवं द्वादशेश के फल में ऐसी भिन्नता या मतभेद उत्पन्न न हो सके। इस दृष्टि से द्वितीयेश एवं द्वादशेश का स्वभावतः शुभ या अशुभ फल नहीं माना गया।

वस्तुतः लघुपाराशरी या उडुदाय प्रदीप का मुख्य प्रतिपाद्य विषय आयुर्दाय है।[१] जिसका ज्ञान मारकेश ग्रह के आधार पर किया जाता है। कुण्डली में द्वितीयेश एवं द्वादशेश के मारकेश बनने की अधिकतम सम्भावना होती है। इसलिए द्वितीयेश एवं द्वादशेश के फल में एकरूपता बनाये रखने के लिए यह सर्तकता बरती गयी है कि द्वितीय एवं द्वादश भाव का अपना कोई स्वाभाविक शुभाशुभत्व न मानकर दूसरों के साहचर्य से अथवा अन्य स्थान के गुण-धर्म से शुभाशुभत्व निर्धारित किया गया।

---

१. देखिए-अनुच्छेद ४

(iv) औचित्य

होराग्रन्थों में द्वितीय भाव धन संचय का तथा द्वादश भाव व्यय का प्रतिनिधि भाव होता है। धन-संचय या उसका व्यय अपने आप में न तो अच्छा होता है और न ही बुरा। इसकी अच्छाई या बुराई संचय अथवा खर्च की परिस्थिति, स्थान एवं सहयोगियों पर निर्भर करती है। जैसे-उचित रीति से, अच्छे स्थान पर और सज्जनों के सहयोग से धन कमाया या खर्च किया जाय तो वह अच्छा कहलाता है और यदि अनुचित रीति, भ्रष्ट स्थान पर तथा दुर्जनों के सहयोग से कमाया या खर्च किया जाय तो वह बुरा कहलाता है। ठीक इसी प्रकार द्वितीयेश एवं द्वादशेश जैसे ग्रह या भाव के साहचर्य में हों और उनका अन्य स्थान हो उसके अनुसार वे शुभ या अशुभ फल देते हैं यथा-

"धनेशस्य व्ययेशस्य यादृक् सहचरो भवेत्।
तादृशं च धनं तस्य तादृशश्च व्ययो भवेत्।।"

(v) साहचर्य का अर्थ सम्बन्ध नहीं है

लघुपाराशरी के कुछ व्याख्याकारों[१] ने "परेषां साहचर्यतः" का अर्थ- "अन्येषां ग्रहाणां सम्बन्धतः" मानकर ग्रहों के चारों सम्बन्धों के आधार पर द्वितीयेश एवं द्वादशेश का शुभाशुभत्व निर्धारित किया है। ग्रहों के सम्बन्ध चार प्रकार के होते हैं- १. स्थान सम्बन्ध, २. दृष्टि सम्बन्ध, ३. एकान्तर सम्बन्ध, ४. युति सम्बन्ध। इन चारों सम्बन्धों में केवल युति सम्बन्ध में साहचर्य रहता है। शेष तीनों सम्बन्धों में साहचर्य नहीं होता। साथ-साथ चलने के भाव को साहचर्य कहते हैं। एक साथ बैठे ग्रहों में तो यह साहचर्य हो सकता है किन्तु एक दूसरे को देखने वाले या एक-दूसरे की राशि में दूर-दूर बैठने वाले ग्रहों में यह सहचरता या साहचर्य सम्भव नहीं है। अतः साहचर्य सम्भव नहीं है। अतः साहचर्य का अर्थ सम्बन्ध नहीं हो सकता। वस्तुतः साहचर्य का अर्थ है- "किसी भाव में या किसी ग्रह के साथ बैठना," अस्तु।

---

१. पं० महेश्वर मिश्र-सुबोधिनी व्याख्या गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास, मुम्बई। पृ० ७

(vi) स्थानान्तरानुगुण्य का अर्थ

श्लोक संख्या आठ के शब्द- "स्थानान्तरानुगुण्येन" की व्याख्या करते हुए कुछ व्याख्याकारों[१] ने छः प्रकार के स्थानान्तरानुगुण्य की कल्पना कर उनके आधार पर द्वितीयेश एवं द्वादशेश का शुभाशुभ फल बतलाया है। इनके अनुसार स्थानान्तरानुगुण्य छः प्रकार का होता है-

१. गुण-विचारार्थ आश्रयीभूत ग्रह जिस भाव में हो उसे गुण कहते हैं।

२. अनुगुण-उससे सम्बन्ध करने वाला ग्रह जिस भाव में होता है उसे अनुगुण कहते हैं।

३. सहायक-विचारार्थ आश्रयीभूत ग्रह जिस भाव का अधिपति होता है उसे सहायक कहते हैं।

४. पोषक-उसका सम्बन्धित ग्रह जिस राशि का अधिपति होता है, उसे पोषक कहते हैं।

५. युक्ति-विचाराश्रयी ग्रह की राशि का ईश, जिस राशि में हो, उसे युक्ति कहते हैं।

६. प्रकारक-उससे सम्बन्धित ग्रह का अधीश जिस राशि में हो, उसे प्रचारक कहते हैं।

स्थानान्तरानुगुण्य के इन छः प्रकारों में तीन प्रकार (अनुगुण, पोषक एवं प्रकारक) सम्बन्ध पर आधारित है, तीन प्रकार (गुण, अनुगुण एवं सहायक) भाव पर आधारित है, तथा तीन प्रकार (पोषक, युक्ति एवं प्रकारक) राशि पर आधारित है। इस प्रकार एक "स्थानान्तरानुगुण्य" शब्द को समझने और समझाने के छः प्रकार तथा सम्बन्ध, भाव एवं राशि इन तीनों को आधार बनाया गया है।

---

१. (i) श्री ह० ने काटवे- शुभाशुभ ग्रहनिर्णय विचार
-नागपुर प्रकाशन, नागपुर पृ० १६
(ii) श्री रामयत्न ओझा फलित विकास-वाराणसी
(iii) श्री महेश्वर मिश्र, सुबोधिनी टीका गंगा विष्णु श्रीकृष्णदास, मुम्बई पृ० ८

लघुपाराशरी में अन्य किसी स्थल पर किसी अन्य शब्द के साथ ऐसी जटिलता मिलती है क्या? इस ग्रन्थ में कहीं भी राशि, उसके गुणधर्म या फल का विचार मिलता है और क्या संज्ञाध्याय में भावेशों के शुभाशुभत्व का निर्णय करने के लिए 'सम्बन्ध' का उपयोग किया गया है?- इन सब प्रश्नों पर विचार किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि यहाँ एक शब्द की गुत्थी सुलझाने के लिए उसे और कई गुत्थियों में फंसाकर उलझा दिया गया है।

इस ग्रन्थ में 'सम्बन्ध' की कारक एवं मारक निर्णय में एक प्रमुख भूमिका है। किन्तु भाव के स्वामियों की शुभता या अशुभता का निर्णय करने के लिए न तो लघुपाराशरीकार ने इसका उपयोग किया है और न ही ऐसी कोई परम्परा दिखलाई देती है।

इसलिए इस शब्द का अर्थ जानने एवं पहचानने के लिए इन जटिलताओं से बचकर पाराशरी होरा को देखना चाहिए, जिसका अनुशीलन एवं अनुसरण कर इस ग्रन्थ की रचना की गयी है। बृहत्पाराशर होरा[१] में द्वितीयेश एवं द्वादशेश की शुभता या अशुभता का निर्धारण करने के लिए दो आधार बतलाये गये हैं- १. साहचर्य एवं २. स्थानान्तरानुरोध। वस्तुतः "स्थानान्तरानुगुण्य" एवं "स्थानान्तरानुरोध" ये दोनों शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची हैं। इनका अर्थ है-

(i) स्थानान्तरानुगुण्य = अन्यत् (दूसरा) स्थानं (स्थान को) = स्थानान्तरं (स्थानान्तर) कहते हैं। तस्य (उसका) अनुगुण्यं (गुणधर्म) अर्थात् भावेश के दूसरे भाव का गुणधर्म।

(ii) स्थानान्तरानुरोध = अन्यत् (दूसरा) स्थानं (स्थान को) = स्थानान्तरं (स्थानान्तर कहते हैं) तस्य (उसके) अनुरोधः (अनुसार) अर्थात् भावेश के दूसरे भाव के अनुसार।

इस प्रकार "स्थानान्तरानुगुण्य" का एक सरल और सुस्पष्ट अर्थ है- "दूसरे स्थान के गुण-धर्म के अनुसार शुभ या अशुभ फल देते हैं।

१. "व्ययद्वितीयरन्ध्रेशाः साहचर्यात् फलप्रदाः।
स्थानान्तरानुरोधात्ते ....।। अ० ३५ श्लो० ५"

सारांश में कह सकते हैं कि द्वितीयेश एवं द्वादशेश दूसरों के साहचर्य से या अन्य स्थान के गुण-धर्म के अनुसार शुभ या अशुभ फल देते हैं।

(vii) द्विर्द्वादशेश सूर्य-चन्द्रमा अकेले द्विर्द्वादशस्थ हों

द्विर्द्वादशेश के प्रसंग में एक सबसे महत्त्वपूर्ण बात पता नहीं क्यों इस ग्रन्थ के सभी टीकाकारों एवं व्याख्याकारों ने छोड़ दी- "यह बात है कि सूर्य एवं चन्द्रमा द्वितीयेश या द्वादशेश होकर अकेले द्वितीय या द्वादश में अपने ही स्थान में स्थित हों, तो इनका शुभाशुभ फल क्या होगा? और उसका निर्णय कैसे किया जायेगा?

उदाहरणार्थ मिथुन लग्न की कुण्डली में अकेला चन्द्रमा द्वितीय भाव में हो या सिंह लग्न की कुण्डली में वह अकेला द्वादश भाव में हो। इसी प्रकार कर्क लग्न की कुण्डली में अकेला सूर्य द्वितीय भाव में हो या कन्या लग्न की कुण्डली में अकेला सूर्य द्वादश भाव में हो, तो इन चारों उदाहरणों में द्वितीयेश का न तो दूसरे भाव या ग्रह से साहचर्य ही है और ये नहीं अन्य स्थान के स्वामी हैं, तो इनका फल क्या होगा? ठीक यही स्थिति तब भी सामने आती है, जब अकेला राहु या केतु द्वितीय भाव या द्वादश भाव में बैठा हो, सब इनका शुभाशुभत्व कैसे निर्धारित किया जाय?

इस प्रश्न पर न तो लघुपाराशरीकार ने और इसके टीकाकारों[१] ने किसी प्रकार का प्रकाश डाला है अतः यह एक विचारणीय प्रश्न है।

इस प्रश्न का एक शास्त्रीय उत्तर है, कि इस स्थिति में सूर्य, चन्द्र, राहु एवं केतु समफल देंगे- अर्थात् इनका फल न तो शुभ होगा और नहीं अशुभ किन्तु अन्ततोगत्वा इनका फल क्या और कैसा होगा? इस विषय में लेखक का मत है- कि उक्त परिस्थिति में द्वितीयेश सूर्य या चन्द्रमा शुभफल तथा द्वादशेश सूर्य या चन्द्रमा अशुभ फल देगा। किन्तु यदि

---

१. जिन २४ टीकाओं का लेखक ने अध्ययन किया है।

आयुर्दाय की समाप्ति के आस-पास इनकी दशा अन्तर्दशा आयेगी तो ये मारकेश बन सकते हैं।

(viii) उदाहरण

उदाहरण के लिए दो कुण्डलियाँ विचारणीय हैं-

कुण्डली संख्या ५

कुण्डली संख्या ६

कुण्डली संख्या ५ में द्वितीयेश सूर्य अकेला द्वितीय भाव में तथा कुण्डली संख्या ६ में द्वादशेश चन्द्रमा अकेला द्वादश भाव में स्थित है। अतः द्वितीयेश एवं द्वादशेश की शुभता या अशुभता का निर्णय करने वाले दोनों कारण- (i) दूसरों का साहचर्य एवं (ii) अन्य स्थान का गुण-धर्म-यहां लागू नहीं होते। इस स्थिति में इनका फल कैसा होगा? यह विद्वानों के लिए विचारणीय है।

(ix) दूसरों का साहचर्य एवं अन्य स्थान के गुण-धर्म का एक साथ लागू होना-

बहुधा ऐसा देखने में आता है कि द्वितीयेश या द्वादशेश कुण्डली में किसी ग्रह के साथ होते हैं और वे दो-दो राशियों के स्वामी होते हैं। ऐसी स्थिति में उनकी शुभता या अशुभता के निर्णायक दोनों कारण- (i) दूसरों का साहचर्य और (ii) अन्य स्थान का गुण-धर्म एक साथ लागू होते हैं। उदाहरण के लिए कुण्डली संख्या ७ देखिए-

कुण्डली संख्या ७

कुण्डली संख्या ८

गु ३ शु
सू. २ बु.
मं. १ रा.
१२
११
४
१०
५ चं
७ के.
९ शं
६
८

कुण्डली संख्या ७ में द्वितीयेश मंगल ११ वें भाव में राहु के साथ है और वह सप्तमेश भी है। इसी प्रकार द्वादशेश बुध ९ वें भाव में एकादशेश सूर्य के साथ है और वह नवमेश भी है। इस प्रकार इस

कुण्डली में द्वितीयेश मंगल एवं द्वादशेश बुध- ये दोनों अन्य ग्रहों के साथ भी हैं और द्वितीय एवं द्वादश के अलावा अन्य भावों के स्वामी भी हैं। अतः यहां इनका शुभाशुभत्व साहचर्य तथा अन्य स्थान के गुण-धर्म इन दोनों आधारों पर किया जायेगा। कुण्डली संख्या ८ में द्वितीयेश शुक्र तथा द्वादशेश गुरु साथ-साथ तृतीय भाव में स्थित हैं। ये दोनों किसी दूसरे के साथ नहीं हैं। अतः साहचर्य का नियम लागू नहीं होता। परिणामतः यहाँ इन दोनों के अन्य भावों के गुण-धर्म के आधार पर इनका शुभाशुभत्व निर्धारित होगा।

(x) निष्कर्ष

द्वितीयेश एवं द्वादशेश के शुभाशुभत्व का निर्णय करने के लिए पूर्वोक्त विवेचन का निष्कर्ष इस प्रकार है-

(i) द्वितीयेश एवं द्वादशेश जिस ग्रह के साथ हो उसके अनुसार फल देते हैं।

(ii) यदि सूर्य या चन्द्रमा द्विर्द्वादशेश हो तो वह जिस भाव में स्थित हो, उसके अनुसार फल देते हैं।

(iii) यदि सूर्य एवं चन्द्रमा द्विर्द्वादशेश होकर अपने ही स्थान में हो तो वे सम होते हैं और होरा शास्त्र के सामान्य नियमानुसार फल देते हैं।

(iv) यदि द्वितीयेश या द्वादशेश किसी के साथ न हों तो वे अपने दूसरे भाव के अनुसार फल देते हैं।

(v) यदि वे किसी के साथ हो और दो राशियों के स्वामी हो तो साहचर्य एवं अन्य स्थान के गुण-धर्म दोनों के आधार पर शुभ या अशुभ फल देते हैं।

(vi) और यदि वे दोनों साथ-साथ हों तो अपने-अपने अन्य स्थान के गुण-धर्म के अनुसार फल देते हैं।

(vii) यदि द्वितीय या द्वादश भाव में राहु या केतु अकेले बैठे हों तो वे भी समफलदायक होते हैं और उनका फल होराशास्त्र के सामान्य

ग्रन्थों के द्वारा निर्धारित किया जाता है।

28. अष्टमेष का शुभाशुभत्व

लघुपाराशरी में भावेशों को पाँच वर्गों में वर्गीकृत किया गया है- १. त्रिकोणेश, २. त्रिषडायाधीश, ३. केन्द्रेश, ४. द्विर्द्वादशेश एवं ५. अष्टमेश। इनमें अष्टमेश के अलावा शेष सभी भावेश एकाधिक भावों के स्वामी होते हैं, जबकि अष्टमेश एक ही भाव का स्वामी होता है। अन्य भावेशों से अष्टम भाव का विलक्षण गुण-धर्म होने के कारण ही इस ग्रन्थ में अष्टमेश को पृथक् वर्ग में रखकर स्वतन्त्र रूप से उसके शुभाशुभत्व का निरूपण किया गया है।

बृहत्पाराशर होराशास्त्र[१] में अष्टमेश को द्वितीयेश एवं द्वादशेश के साथ वर्गीकृत किया गया है। किन्तु लघुपाराशरीकार संभवतः द्विर्द्वादशेश एवं अष्टमेश के गुण-धर्मों में समानता नहीं मानते। वस्तुतः द्विर्द्वादशेश स्वभावतः न तो शुभ और न ही अशुभ फल देते हैं, जबकि अष्टमेश सामान्यतया शुभ फल नहीं देता- केवल लग्नेश होने पर ही वह शुभ फल दे पाता है।[२] इस प्रकार इन दोनों के गुण-धर्मों का अन्तर ही अष्टमेश को स्वतन्त्र रूप से पृथक् वर्ग में रखने का कारण है।

(i) अष्टमेश की अशुभता का कारण

अनुच्छेद १८ (ii) के अनुसार त्रिकोणेश शुभ फलदायक होते हैं और अनुच्छेद २५ के अनुसार नवमेश त्रिकोणेशों में सबसे बलवान होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कुण्डली में नवम् या भाग्यभाव सर्वाधिक शुभफलदायक होता है। यह भाव जन्मान्तरों में किये गये पुण्यकर्मों के फल का तथा इस जन्म में किये जाने वाले धार्मिक अनुष्ठानों का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए यह भाव भाग्य ही नहीं, अपितु भाग्य विधाता भी है। कुण्डली के इस सर्वोत्तम भाग्य भाव का

---

१. देखिए- अ० ३५ श्लो० ५

२. "भाग्यव्ययाधिपत्येन रन्ध्रेशो न शुभप्रदः।
स एव शुभसन्धाता लग्नाधीशोऽपि चेत्स्वयम्।।" -लघुपाराशरी श्लो० ९

व्यय (द्वादश) स्थान होने के कारण इस स्थान का स्वामी अष्टमेश शुभफलदायक नहीं माना गया है। यथा-

भाग्ये दृढ़े सर्वसुखं करस्थं,

भाग्ये विनष्टे सकलं विनष्टम्।

भाग्यव्ययाधीशतया हि तस्मात्

प्रोक्तोऽष्टमेशोऽत्यशुभो मुनीन्द्रैः।।

इस प्रसंग में कुछ टीकाकारों का मत है कि जैसे भाग्यभाव का व्ययाधीश होने के कारण अष्टमेश शुभफलदायक नहीं होता, जैसे ही कर्म (दशम) स्थान के कारण नवमेश भी शुभफलदायक नहीं होना चाहिए। किन्तु इस प्रकार की शंका युक्तिसंगत नहीं है। कारण यह है- कि जीवन में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका भाग्य, आयु एवं शरीर की होती है। अन्य चीजों की हानि या ह्रास जीवन को उतना प्रभावित नहीं करता, जितना भाग्य, आयु या शरीर का ह्रास प्रभावित करता है। इसलिए लघुपाराशरी में तीन व्ययेशों[१] की चर्चा की गयी है- १. लग्न का व्यय २. भाग्य का व्यय एवं ३. आयु का व्यय। इसलिए यह कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थ में शरीर, भाग्य एवं आयु के ह्रास एवं नाश का गम्भीरतापूर्वक चिन्तन एवं विचार करने के लिए ही इनके हानिकारक भावेशों- व्ययेश, अष्टमेश, सप्तमेश एवं द्वितीयेश का विस्तृत विवेचन किया गया है।

(ii) "भाग्यव्ययाधिपत्य" का अर्थ

कुछ व्याख्याकारों[२] ने अपनी संस्कृत टीका में-"भाग्यव्ययाधिपत्येन" इस शब्द की इस प्रकार व्याख्या की है- "भाग्यञ्च व्ययञ्चेति

---

१. (i) लग्नाद् व्ययद्वितीयेशौ० श्लो० ८
(ii) भाग्यव्ययाधिपत्येन० श्लो० ९
(iii) तयोरपि व्ययस्थान० श्लो० २३

२. पं० श्री महेश्वर मिश्र--सुबोधिनी व्याख्या

भाग्यव्यये, तयोरधिपत्येन" अर्थात् भाग्य एवं व्यय इन दोनों स्थानों का अधिपति होने के कारण अष्टमेश शुभ फल देता।

किन्तु यहां द्वन्द्व समास मानकर "भाग्य एवं व्यय इन दोनों का अधिपति होने के कारण" - यह अर्थ मानना युक्ति-विरुद्ध है। क्योंकि ऐसा केवल मेष लग्न एवं तुला लग्न में ही संभव है। इन्हीं दो लग्नों में गुरु एवं बुध भाग्येश के साथ-साथ व्ययेश होते हैं। अन्य लग्नों में ऐसा नहीं होता। तब अन्य लग्नों में अष्टमेश का फल क्या होगा? यह प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है। कुछ क्षणों के लिए इस असंगत व्याख्या को मान भी लिया जाय तो इस श्लोक के उत्तरार्ध- "यदि वह लग्नेश हो तो शुभफल देता है"- से अन्वय करने के लिए एक ही ग्रह को तीन राशियों का स्वामी मानना पड़ेगा, जो सर्वथा असम्भव है। अतः श्री मिश्र की उक्त व्याख्या को कैसे माना जा सकता है।

वस्तुतः "भाग्यव्यायाधिपत्येन" शब्द का अर्थ है- "भाग्यस्य (भाग्य का भाव का), व्ययं (बारहवां) = भाग्यव्ययं (भाग्य का बारहवां स्थान)- अर्थात् अष्टम स्थान, तस्य (उसके), अधिपत्येन (स्वामी होने के कारण) भाग्य भाव का व्ययाधीश होने के कारण।

(iii) अष्टमेश की शुभता

सामान्यतया अष्टमेश शुभफल नहीं देता किन्तु यदि वह लग्नेश भी हो तो अशुभफल को छोड़कर शुभफल देता है। श्लोक संख्या नौ में "शुभसन्धाता" का अर्थ है- "अशुभफल को छोड़कर शुभफल से मिलाने या शुभफल दिलाने वाला"। इसलिए जो अष्टमेश लग्न का भी स्वामी हो वह अष्टमेश होने के स्वाभाविक अशुभफल को छोड़कर शुभफल देता है। उदाहरणार्थ- मेष लग्न में मंगल तथा तुला लग्न में शुक्र-लग्न एवं अष्टम दोनों स्थानों का स्वामी होता है। अतः इन दोनों लग्नों में अष्टमेश अनिष्टफल न देकर शुभ फल देता है।

इसका कारण यह है कि कुण्डली में लग्न एक ऐसा भाव है, जिसमें केन्द्रत्व एवं त्रिकोणत्व एक साथ रहते हैं।[१] इस प्रकार लग्नेश भी होता है और त्रिकोणेश भी जो एक ग्रह केन्द्र एवं त्रिकोण दोनों भावों का स्वामी है। वह श्लोक संख्या २० के अनुसार योगकारक हो जाता है।[२] इस प्रकार लग्नेश एक साथ केन्द्र एवं त्रिकोण दोनों भावों का प्रतिनिधित्व करने के कारण विशेष रूप से शुभ फलदायक होता है। और इसीलिए वह अष्टमेश के अशुभफल को न देकर शुभफल देता है।

(iv) "लग्नाधीशोऽपि चेत्स्वयं" -का अर्थ

लघुपाराशरी के कुछ एक टीकाकारों[३] ने "स एव शुभसन्धाता लग्नाधीशोऽपि चेत्स्वयम्" का यह अर्थ किया है कि "वह (अष्टमेश) लग्नेश होकर लग्न में या अष्टम में बैठा हो तो वह शुभ हो जाता है।" न तो मूल श्लोक के पाठ में लग्नेश/अष्टमेश की किसी स्थान में स्थिति की कोई शर्त या संकेत है, और न ही यहां ऐसा कोई प्रसंग ही है। तथापि इन व्याख्याकारों ने लग्नेश की शुभ फलदायकता के लिए उसका लग्न या अष्टम में बैठना एक आवश्यक शर्त के रूप में माना है। इस विषय में उनका एकमात्र तर्क यह है कि "स्वगृही-अष्टमेश शुभ है, अन्यत्र अशुभ ही है।"[४]

किन्तु यह बात शास्त्र-सम्मत नहीं है। क्योंकि लग्नेश का अष्टम में बैठना, अष्टमेश का अष्टम में बैठना या अष्टमेश का लग्न में बैठना- प्राय: सभी होराग्रन्थों में अशुभफलदायक माना गया है।[५] केवल लग्नेश

---

१. "लग्नं केन्द्रत्रिकोणत्वाद् विशेषेण शुभप्रदम्।
बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० ३।।"

२. "केन्द्रत्रिकोणाधिपयोरेकत्वे योगकारिता।"

३. दीवान रामचन्द्र कपूर-लघुपाराशरी भाष्य।
-मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली-१९६४ पृ २२

४. (i) दीवान रामचन्द्र कपूर-लघुपाराशरी भाष्य २३
(ii) मेजर एस० जी० खोत-लघुपाराशरी सिद्धांत पृ० ६१

५. बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० २५ श्लो० ८, ८५ एवं ९२

का लग्न में बैठना ही शुभफलदायक होता है।[१] किन्तु जो ग्रह लग्नेश एवं अष्टमेश है- वह स्वाभाविक रूप से दोनों भावों का एक साथ स्वामी है। अतः "लग्नेश अष्टमेश होकर लग्न या अष्टम में बैठा हो तो वह शुभफल देता है। "यह कथन न तो लघुपाराशरी के मूल पाठ पर और न ही होराशास्त्र के आधारभूत सिद्धांतों से सामञ्जस्य रखता है।

वास्तविकता यह है कि इस ग्रन्थ में ग्रहों की भावों में स्थिति या स्वराशि-उच्चराशि आदि में स्थिति की कहीं कोई चर्चा नहीं की गयी है। यहां केवल भावों के गुण-धर्म के आधार पर उनके स्वामियों की शुभता या अशुभता बतलायी गयी है। इसलिए "स एव शुभसन्धाता लग्नाधीशोऽपि चेत्स्वयम्" इस पंक्ति से यह अर्थ ही उचित लगता है कि "चेत् (यदि), स एव (वह अष्टमेश), स्वयं, लग्नाधीशोऽपि (लग्नेश भी हो तो), शुभसन्धाता (शुभफल दिलाने वाला) होता है। तात्पर्य यह है कि यदि अष्टमेश स्वयं लग्नेश हो तो वह अशुभफल की जगह शुभफल दिलाता है।

इस विषय पर विचारार्थ दो कुण्डलियाँ प्रस्तुत हैं-

कुण्डली संख्या १

२ शु.
मं सू. रा. १२
३ चं
१
११
४ गु
१० श.
५
७
९
६ के.
८

---

१. तत्रैव अ० २५ श्लो० १

कुण्डली संख्या १०

के. ९ चं. | ८ | ७ | ६ | ५ गु.
१० मं. | ४
सू. ११ | १ शु. | रा ३ श.
१२ बु. | २
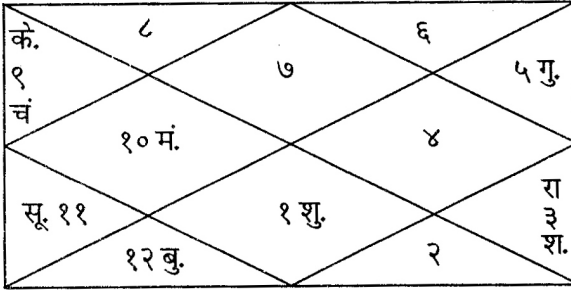
कुण्डली संख्या ९ में लग्नेश एवं अष्टमेश मंगल १२ वें स्थान में स्थित है। ये मान्यवर एक राजनैतिक दल के अध्यक्ष हैं। इनका जन्म मंगली दशा में हुआ था और वह समय सकुशल व्यतीत हो चुका है।

कुण्डली संख्या १० में लग्नेश एवं अष्टमेश शुक्र ७ वें स्थान में स्थित है। ये एक प्रतिष्ठित राजकुल में उत्पन्न व्यक्ति की है, जो काफी समय तक केन्द्रीय सरकार में मन्त्री रहे हैं। इनका भी शुक्र की दशा में जन्म हुआ और वह समय हर दृष्टि से अच्छा रहा।

(v) क्या लग्नेश होने से अष्टमेश का दोष पूर्णरूपेण समाप्त हो जाता है?

अष्टमेश यदि लग्नेश हो तो वह शुभफल देता है- इसका अभिप्रायः यह है कि लग्नेश होने से अष्टमेश का दोष घट जाता है और वह अन्ततोगत्वा शुभफल से मिला देता है। "शुभसन्धाता" का अर्थ शुभता से जोड़ने वाला है। इस स्थिति का गंभीरता पूर्वक विचार किया जाय तो निष्कर्ष यह निकलता है कि अष्टमेश, जो स्वभावतः परम पापी है, लग्नेश होने से शुभफल देता अवश्य है, किन्तु इससे उसके सभी दोष या पाप नहीं धुल जाते।

यदि लग्नेश होने के कारण ही अष्टमेश के सभी दोष नष्ट हो जाते तो लघुपाराशरी या पाराशरी होरा में अष्टमेश को राजयोग का भंग

करने वाला नहीं माना जाता।[१]

वस्तुतः इस संसार में जैसे कोई भी चीज नष्ट नहीं होती, या तो उसकी भौतिक अवस्था में परिवर्तन हो जाता है या उसके गुण-धर्मों में एक निश्चित मात्रा तक परिवर्तन होता है। इस नियत नियम के अनुसार अष्टमेश के लग्नेश होने पर उसमें दोष की मात्रा न्यूनतम और शुभता की मात्रा बढ़ जाने के कारण वह शुभफल देता है।

(vi) क्या लग्नेश होने से षष्ठेश का दोष दूर हो जाता है?

जिस प्रकार अष्टमेश यदि लग्नेश हो तो अन्ततोगत्वा शुभफलदायक हो जाता है। इस प्रसंग में कुछ लोगों का विचार है कि जब लग्नेश होने से अष्टमेश होने पर भी शुभफल मिल सकता है, तो क्या षष्ठेश यदि लग्नेश यदि लग्नेश हो तो वह शुभफलदायक नहीं होगा? क्योंकि षष्ठेश का दोष अष्टमेश से कम मात्रा में होता है।[२]

वृहत्पाराशर होराशास्त्र के एक संस्करण में यह वचन मिलता है- "अलौ षष्ठाष्टदोषो न वृषभोऽपि न दोषभाक्" - अर्थात् वृश्चिक लग्न में षष्ठ एवं अष्टम के स्वामी को दोष नहीं होता और वृष लग्न में भी दोष नहीं होता।[३]

इस विषय में यहां कुछ बातें ध्यान देने योग्य हैं-

(i) यह वचन वृहत्पाराशर होराशास्त्र के केवल मुम्बई संस्करण में मिलता है, जबकि वाराणसी एवं दिल्ली के संस्करण में नहीं मिलता।

(ii) इस वचन में वृश्चिक लग्न में षष्ठेश एवं अष्टमेश को दोषमुक्त बतलाया गया है। यहां षष्ठेश का दोषमुक्त होना तो समझ में आता है, क्योंकि यह इस लग्न में लग्नेश हो जाता है। किन्तु अष्टमेश को

---

१. (i) लघुपाराशरी श्लो० सं० २२
(ii) बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० १५

२. बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० श्लो० ५

३. बृहत्पाराशर होराशास्त्र
—खेमराज श्रीकृष्ण दास, बम्बई—१९९६, अ० १३ श्लो० १२

क्यों और कैसे दोषमुक्त किया गया- यह बात समझ में नहीं आती, क्योंकि वृश्चिक लग्न में अष्टमेश बुध एकादशेश भी होता है।

(iii) यही बात वृष लग्न में भी दिखाई पड़ता है- इस लग्न में षष्ठेश शुक्र तो लग्नेश है किन्तु अष्टमेश गुरु एकादशेश भी है। अतः इस लग्न में अष्टमेश का दोषमुक्त होना तर्क विरुद्ध है।

(iv) क्या महर्षिपाराशर ऐसी विचित्र बात कह सकते हैं? कि अष्टमेश, एकादशेश होने पर भी दोषमुक्त हो जाता है; सम्भवतः कभी नहीं।

अतः वृहत्पाराशर होराशास्त्र के मुम्बई संस्करण का यह वचन "प्रक्षिप्त" लगता है। क्योंकि यह इस ग्रन्थ के सभी संस्करणों में नहीं मिलता, पाराशरी होरा की परम्परा के ग्रन्थों में भी नहीं दिखलाई देता और पाराशर के सिद्धांतों के अनुरूप भी नहीं है।

वास्तविकता यह है कि षष्ठेश यदि लग्नेश हो तो उसका दोष कम अवश्य होता है। यदि तार्किक दृष्टि से विचार किया जाय तो षष्ठेश या अष्टमेश यदि त्रिकोणेश होते हैं, तो उनका दोष एक निश्चित मात्रा में घट जाता है। अतः वृष लग्न में शुक्र, मिथुन लग्न में शनि, सिंह लग्न में गुरु, कन्या लग्न में शनि, वृश्चिक लग्न में मंगल एवं कुम्भलग्न में बुध -षष्ठेश या अष्टमेश होने भी कम दोषी होते हैं जबकि षष्ठेश या अष्टमेश होने से केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश दोषयुक्त हो जाते हैं।[१]

वृहत्पाराशर होरा के मुम्बई संस्करण के इस वचन में यदि इस प्रकार परिवर्तन या पाठ भेद मान लिया जाय-

मुम्बई संस्करण का वचन	**शुद्धपाठ या पाठभेद**
अलौ षष्ठाष्टदोषो न,	अलौ षष्ठपदोषो न,
वृषभोऽपि न दोषभाक्	वृषभोऽपि न दोषभाक्

१. सुश्लोक शतक–संज्ञाध्याय श्लो० १४

तो वृश्चिक एवं वृष लग्न में अष्टमेश को छोड़ देने पर केवल षष्ठेश को दोषमुक्त की बात लघुपाराशरी के सिद्धांत के आसपास आ सकती है।

29. केन्द्राधिपत्य-दोष

श्लोक संख्या सात में बतलाया गया है कि सौम्यग्रह केन्द्र के स्वामी हो तो शुभफल नहीं देते। गुरु, शुक्र शुभयुक्त बुध एवं चन्द्रमा- ये चारों शुभग्रह होते हैं और यदि ये चतुर्थ सप्तम या दशम के स्वामी हों तो अपनी दशा में शुभफल नहीं देते- यह सौम्यग्रहों का शुभफल न देना केन्द्राधिपत्य-दोष कहलाता है।

केन्द्र स्थानों में सप्तम स्थान मारक स्थान होता है।[१] अतः जब गुरु एवं शुक्र सप्तमेश हो तो यह केन्द्राधिपत्य दोष बलवान् होता है। कारण यह है कि गुरु जब सप्तमेश होता है तो उसकी दूसरी राशि भी केन्द्र में ही पड़ती है और शुक्र जब सप्तमेश होता है तो उसकी दूसरी राशि द्वितीय या द्वादश भाव में पड़ी है। इस प्रकार गुरु या शुक्र के सप्तमेश होने पर उनके त्रिकोणेश होने की सम्भावना न होने के कारण ही उनमें शुभफल देने की कोई सम्भावना नहीं रहती। यही बात बुध एवं चन्द्रमा के सप्तमेश होने पर भी दिखलाई देती है। इसलिए शुक्र, गुरु, बुध एवं चन्द्रमा- ये सौम्यग्रह सप्तमेश हों तो इनमें केन्द्राधिपत्य-दोष प्रबल माना गया है। यदि गुरू-शुक्र आदि सौम्यग्रह सप्तमेश होकर सप्तम में बैठे हों तो यह केन्द्राधिपत्य दोष अधिकतम होता है। उदाहरणार्थ- मेष, मिथुन, कन्या, वृश्चिक, धनु, मकर एवं मीन लग्नों में सौम्यग्रह सप्तमेश होते हैं। यदि इन लग्नों में ये सप्तमेश होकर मारक स्थान में बैठने के कारण मारकत्व प्रभाव बढ़ जाता है। इसीलिए यहां केन्द्राधिपत्य-दोष अधिक माना गया है।

---

१. लघुपाराशरी श्लो० २३

(i) केन्द्राधिपत्य-दोष में तारतम्य

केन्द्राधिपत्य दोष सौम्यग्रहों को ही होता है, क्रूर ग्रहों को नहीं। अतः जिन ग्रहों में सदैव सौम्यता या शुभता रहे, उनमें यह दोष अधिक रहता है। और जिनमें शुभता की सम्भावना कम होती है, उनमें यह दोष उसी अनुपात में कम होता है। यही कारण है कि गुरु एवं शुक्र के सदैव शुभग्रह होने के कारण यह दोष उनमें सर्वाधिक रहता है। बुध जब शुभग्रह के साथ हो तो शुभ और जब पापग्रह के साथ हो तो पाप हो जाता है। अतः इसमें शुभग्रह की सम्भावना ५० प्रतिशत होती है। जबकि चन्द्रमा एक मास या ३० दिनों में केवल १० दिन (शुक्लपक्ष की एकादशी से कृष्णपक्ष की पंचमी तक) शुभ होता है। अतः चन्द्रमा में शुभता की सम्भावना ३३ प्रतिशत होती है। इसलिए यह दोष गुरु एवं शुक्र में सर्वाधिक होता है, उससे कम बुध में और उससे भी कम यह दोष चन्द्रमा में होता है।

गुरु एवं शुक्र में भी तारतम्य की दृष्टि से विचार किया जाय तो शुक्र सप्तमेश होने पर द्वितीयेश एवं द्वादशेश होकर प्रबल मारक बनता है, जबकि गुरु सप्तमेश होकर चतुर्थेश या दशमेश होता है। अतः इन दोनों में शुक्र को यह दोष अधिकतम लगता है। उससे कम गुरु में, गुरु से कम बुध में और उससे भी कम केन्द्राधिपत्य दोष चन्द्रमा में होता है।[१]

उदाहरणार्थ-

(i) मेष लग्न में शुक्र द्वितीय एवं सप्तम का स्वामी होता है तथा वृश्चिक लग्न में वह सप्तम एवं द्वादश का स्वामी होता है।

(ii) मिथुन लग्न में गुरु सप्तम एवं दशम का स्वामी होता है। तथा कन्या लग्न में वह चतुर्थ एवं सप्तम का स्वामी होता है।

(iii) धनु लग्न में बुध सप्तम एवं दशम का स्वामी होता है। तथा मीन लग्न में वह चतुर्थ एवं सप्तम का स्वामी होता है।

---

१. बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० १०

(iv) मकर लग्न में चन्द्रमा केवल सप्तम का स्वामी होता है।

इस विवरण से स्पष्ट है कि केन्द्राधिपत्य दोष सप्तमेश होने पर शुक्र को सर्वाधिक होता है और उससे कम गुरु को उससे कम बुध को तथा सबसे कम चन्द्रमा को होता है।

शुभग्रह की मारक त्रिषडाय, अष्टम या केन्द्र में स्थिति के अनुसार केन्द्राधिपत्य दोष की वरीयता क्रम से सूची इस प्रकार बनती है-

(i) शुभग्रह सप्तमेश होकर मारक स्थान में हो।

(ii) शुभग्रह सप्तमेश होकर त्रिषडाय या अष्टम में हो।

(iii) शुभग्रह सप्तमेश होकर सप्तम के अलावा केन्द्र में हो।

(iv) शुभग्रह चतुर्थेश या दशमेश हो किन्तु त्रिकोणेश न हो।

(v) सप्तमेश का त्रिकोणेश से सम्बन्ध हो।

(ii) क्या गुरु एवं शुक्र में केवल केन्द्रेश होने से प्रबल दोष होता है?

लघुपाराशरी के अधिकांश टीकाकारों[१] ने श्लोक संख्या दस में "केन्द्राधिपत्यदोषस्तु बलवान् गुरुशुक्रयोः" की एक स्वतन्त्र बाध्य तथा "मारकत्वेऽपि च तयोः मारकस्थानसंस्थितिः" को अन्य वाक्य मानकर

---

१. (i) लघुपाराशरी–सुबोधिनि व्याख्या–पं० श्री महेश्वर मिश्र, बम्बई, पृ० १२
(ii) लघुपाराशरी–संस्कृत टीका–श्री विनायक शास्त्री बेताल, वाराणसी पृ० ४४
(iii) लघुपाराशरी–संस्कृत हिन्दी टीका–पं० अच्युतानन्द झा, वाराणसी, पृ० ३५
(iv) लघुपाराशरी–संस्कृत हिन्दी टीका–पं० सीताराम झा, वाराणसी, पृ० ४१-४२
(v) जातक चन्द्रिका–प्रो० बी० सूर्यनारायण राव, बंगलौर, पृ० १२
(vi) जातक चन्द्रिका–श्री० ह० ने० काटवे, बंगलौर, पृ० ११
(vii) जातक चन्द्रिका–श्रीमती सरस्वती एवं प्रो० अर्धनारीश्वर, मद्रास, पृ० ८
(viii) लघुपाराशरी-मराठी टीका–श्री वि० गो० नवाथे पृ० १५

इस श्लोक में केन्द्राधिपत्य दोष की प्रबलता के बारे में दो अलग-अलग बातें बतलायी हैं। १. गुरू और शुक्र में केन्द्राधिपत्य दोष बलवान् होता है और २. उनको मारकेश होकर मारक स्थान में बैठना प्रबलतर होता है। वस्तुतः इस श्लोक में एवं संयुक्तवाक्य में केन्द्राधिपत्यदोष की प्रबलता बतलायी है, जो इस प्रकार है-

मारकत्व (सप्तमेश) होने पर गुरु एवं शुक्र में केन्द्राधिपत्यदोष होता है और उनकी मारक (सप्तम) स्थान में स्थिति प्रबल होती है। तात्पर्य यह है कि केवल केन्द्रेश होने के कारण गुरु शुक्र में केन्द्राधिपत्य दोष तो होता है; किन्तु वह बलवान् नहीं होता। केन्द्राधिपत्य दोष की प्रबलता के लिए उनका सप्तमेश होना आवश्यक है।

यदि यह मान लिया जाय, कि केवल केन्द्रेश होने भर से गुरु एवं शुक्र में केन्द्राधिपत्य दोष बलवान् होता है, तो चतुर्थेश या दशमेश होने पर भी गुरु एवं शुक्र में केन्द्राधिपत्य दोष प्रबल रहेगा। इस स्थिति में धनु एवं मीन में गुरु के क्रमशः चतुर्थेश एवं दशमेश होने के कारण उसको यह प्रबल दोष रहेगा और मकर तथा कुम्भ लग्न में शुक्र के दशमेश एवं चतुर्थेश होने के कारण उसको यह दोष प्रबल रहेगा।

किन्तु धनु एवं मीन लग्न में गुरु चतुर्थेश एवं दशमेश के साथ-साथ लग्नेश भी होता है; जबकि मकर एवं कुम्भ लग्न में शुक्र दशमेश एवं चतुर्थेश के साथ-साथ त्रिकोणेश होता है। इसलिए धनु एवं मीन लग्न का गुरु लग्नेश होने के कारण शुभसन्धाता है और मकर एवं कुम्भ लग्न में शुक्र केन्द्र एवं त्रिकोण का एकमात्र स्वामी होने के कारण योगकारक है।[१] उदाहरणार्थ इन कुण्डलियों का अवलोकन करें-

---

१. (i) लघुपाराशरी श्लो० ९ एवं २०

(ii) बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० ३ एवं १३

कुण्डली संख्या ११

कुण्डली संख्या १२

कुण्डली संख्या १३

कुण्डली संख्या १४

कुण्डली संख्या ११ एवं १२ में गुरु केन्द्रेश है तथा कुण्डली संख्या १३ एवं १४ में शुक्र केन्द्रेश है। किन्तु यहां गुरु एवं शुक्र न तो सप्तमेश हैं और न ही सप्तमस्थान में स्थित हैं। अतः इन कुण्डलियों में गुरु एवं शुक्र को केन्द्राधिपत्य दोष प्रबल नहीं है।

कुण्डली संख्या १२ में बुध सप्तमेश होकर सप्तम स्थान में स्थित है। अतः बुध केन्द्राधिपत्य से दोषी है।

(iii) निष्कर्ष

लघुपाराशरी के व्याख्याकारों ने श्लोक संख्या १० की व्याख्या तीन प्रकार से की है-

(i) सौम्य ग्रह केन्द्रेशों में गुरु एवं शुक्र को केन्द्राधिपत्य दोष प्रबल होता है।

(ii) सप्तमेश होने पर गुरु एवं शुक्र को केन्द्राधिपत्य दोष प्रबल होता है।

(iii) सप्तमेश होकर सप्तम स्थान में स्थित होने पर गुरु एवं शुक्र को केन्द्राधिपत्य दोष प्रबल होता है।

इन तीनों मतों में से तीसरा मत अधिक युक्ति-युक्त एवं तर्क-संगत होने के कारण उचित लगता है।

सौम्यग्रह केन्द्रेश हो तो उनका फल इस प्रकार होता है-

(i) सौम्यग्रह केन्द्रेश हो तो शुभफल नहीं देते।

(ii) सौम्यग्रह केन्द्रेश के साथ-साथ त्रिषडायाधीश या अष्टमेश हो तो पापफल देते हैं।[१]

(iii) सौम्यग्रह केन्द्रेश के साथ-साथ त्रिकोणेश हो तो शुभफल देते हैं।[२]

(iv) सौम्यग्रह केन्द्रेश का त्रिकोणेश से सम्बन्ध हो तो योगकारक हो जाते हैं।[३]

(v) सौम्यग्रह सप्तमेश का त्रिकोणेश से सम्बन्ध हो तो पहले योगजन्य एवं बाद में मारकफल मिलता है।[४]

(vi) बुध एवं गुरु चतुर्थेश या दशमेश के साथ-साथ लग्नेश भी हो तो अन्ततोगत्वा शुभफल देता है।

30. सूर्य एवं चन्द्रमा को अष्टमेश-दोष नहीं होता

अनुच्छेद २७ में बतलाया गया है कि भाग्य स्थान का व्ययाधीश होने के कारण अष्टमेश शुभफल नहीं देता। किन्तु वह लग्नेश भी हो तो अशुभफल को छोड़कर शुभसन्धाता (शुभफल से मिलाने वाला) हो जाता है। कुण्डली में भाग्य स्थान प्रबलतम त्रिकोण स्थान है। अतः उसका व्ययाधीश अष्टमेश परमपापी होकर अनिष्टफल देता है।

जो ग्रह दो राशियों के स्वामी होते हैं- वे अष्टमेश होकर किसी अन्य भाव के स्वामी हो सकते हैं। ऐसे ही ग्रहों में अष्टमेश के साथ-साथ लग्नेश होने की संभावना दिखलाई देती है। किन्तु सूर्य एवं चन्द्रमा एक-एक राशि के स्वामी होते हैं। इसलिए सूर्य एवं चन्द्रमा जब अष्टमेश होते हैं तो किसी अन्य भाव के स्वामी नहीं हो सकते।

---

१. सुश्लोक शतक-संज्ञाध्याय श्लो० १५

२. लघुपाराशरी श्लो० २०

३. तत्रैव श्लो० १५

४. तत्रैव श्लो० ३३

इस प्रकार जो ग्रह अष्टमेश होकर लग्नेश हो जाते हैं वे अन्ततोगत्वा शुभ फलदायक होते हैं।

किन्तु सूर्य एवं चन्द्रमा अष्टमेश होकर लग्न आदि किसी भी भाव के स्वामी नहीं होते। अतः इन दोनों में अष्टमेशत्व दोष (अनिष्टफलदायक) नहीं माना गया। इस विषय को और अधिक स्पष्ट करने के लिए यह कहा जा सकता है कि धनु एवं मकर लग्न में चन्द्रमा एवं सूर्य अष्टमेश होने पर भी अनिष्टफल नहीं देते। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है, कि ये शुभफल देते हैं।

(i) क्या सूर्य एवं चन्द्रमा अष्टमेश होकर शुभफल देते हैं?

लघुपाराशरी के कुछ टीकाकारों का मत है कि "सूर्य एवं चन्द्रमा यदि अष्टमेश होकर अष्टमेस्थ हो तो वे शुभ होते हैं।[१] पता नहीं अष्टमेश की राशि में स्थिति मात्र के आधार पर अष्टमेश को कैसे शुभ मान लिया गया। क्या षष्ठेश या व्ययेश अपने-अपने स्थान में होने पर शुभफल देते हैं? नहीं। तब फिर अष्टमेश अष्टम में स्थित होकर शुभफलदायक कैसे हो सकता है? वृहत्पाराशर होराशास्त्र, जिसके आधार पर लघुपाराशरी की रचना की गयी है- में अष्टमेश को अष्टम स्थान में अशुभ फल बतलाया गया है।[२]

ज्योतिषशास्त्र की मान्यतानुसार अष्टमेश अष्टम स्थान में स्थित होकर केवल दीर्घायु करता है। किन्तु केवल इतने से ही वह भाग्य के व्ययाधिपत्यरूपी अष्टमेश-दोष से सर्वथा मुक्त होकर शुभफलदायक हो सकता है क्या?

इस विषय में लघुपाराशरी में दो टूक शब्दों में बतलाया गया है, अष्टमेश में केवल लग्नेश होने पर शुभफल देता है और सूर्य एवं चन्द्रमा को अष्टमेश-दोष नहीं होता।

---

१. दीवान रामचन्द्र कपूर–लघुपाराशरी भाष्य, पृ० २४

२. "द्यूती चौराऽन्यथा वादी गुरुनिन्दासु तत्परः।
अष्टमेशेऽष्टस्थाने भार्यापररता भवेत्।।" –भावेशफलाध्याय श्लो० ६३

(ii) निष्कर्ष

(i) उद्योतकार एवं सुश्लोकशतक का मत है कि सूर्य एवं चन्द्रमा अष्टमेश होने पर भी शुभ होते हैं।[१]

(ii) सज्जनरंजनीकार का मत है "कि सूर्य एवं चन्द्रमा को अष्टमेश होने का दोष नहीं होता- इस कथन का यही अभिप्राय है कि उनको अतिमन्दरत दोष (अल्पदोष) तो होता ही है।"[२]

(iii) श्री विनायक शास्त्री का मत है- "कि सूर्य एवं चन्द्रमा को अष्टमेश दोष नहीं होता इससे इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए कि अष्टमेश होने पर भी सूर्य एवं चन्द्रमा शुभ हो जाते हैं।"[३]

(iv) पं० श्री रामरत्न ओझा का मत है- "कि अष्टमेश सूर्य या चन्द्रमा की दशा में बहुतो की भाग्य हानि, मारक कलेशादि होते हैं। इसलिए यह पक्ष आदरणीय नहीं है कि सूर्य एवं चन्द्रमा को अष्टमेश होने का दोष ही नहीं होता है।"[४]

(v) दीवान रामचन्द्र कपूर का मत है- "कि सूर्य एवं चन्द्रमा अष्टमेश होकर अष्टमस्थ हो तो वे शुभ होते हैं।"[५]

इस प्रकार लघुपाराशरी उसके टीकाकार एवं वृहत्पाराशर होराशास्त्र का परिशीलन कर यह कहा जा सकता है कि सूर्य एवं चन्द्रमा अष्टमेश होने से शुभफलदायक नहीं होते। किन्तु उनमें अष्टमेश होने से विशेष दोष भी नहीं होता।

---

१. सुश्लोक शतक--संज्ञाध्याय-श्लो० १३
२. लघुपाराशरी--सज्जनरंजनी-श्लो० ११
३. लघुपाराशरी-विनायक शास्त्री, वाराणसी संज्ञाध्याय। श्लो० ११
४. संस्कृत टीका-श्रीरामयत्न ओझा
भार्गव पुस्तकालय, वाराणसी-श्लो० ११
५. लघुपाराशरी भाष्य-श्लो० ११

31. क्रूरग्रह केन्द्रेश का फल

अनुच्छेद २४ में बतलाया गया है- "कि क्रूर ग्रह केन्द्रेश हो तो पापफल नहीं देता यहां यह स्वाभाविक प्रश्न उत्पन्न होता है कि फिर वह कैसा फल देता है? क्या "पापफल नहीं देता है" का मतलब "शुभफल देता है- तो नहीं है। इन प्रश्नों तथा इसी प्रकार के अन्य प्रश्नों के समाधानार्थ श्लोक संख्या १२ की रचना की गयी है। इस श्लोक में बतलाया गया है- "कि क्रूर ग्रह के केन्द्रेश होने से जो शुभता प्राप्त है वह उसके त्रिकोणेश होने पर ही होती है; केवल केन्द्रेश होने से नहीं।"[१]

"कुत्सितं जन्म यस्यासौ" अथवा "कुत्सितं जायते यस्मात्"- इन विग्रहों के अनुसार कुज का अर्थ क्रूर ग्रह है। वस्तुतः इस श्लोक में - 'कुज' शब्द क्रूर ग्रह मात्र का तथा 'कर्म' शब्द केन्द्र मात्र का उपलक्षण है। यदि ऐसा न माना जाय तो सिंह लग्न में चतुर्थेश मंगल त्रिकोणेश होने पर तथा तुला लग्न में शनि चतुर्थेश होकर त्रिकोणेश होने पर शुभफलदायक नहीं होगा। अतः यहां 'कुज' शब्द से क्रूर ग्रह एवं 'कर्म' शब्द से केन्द्र का ग्रहण करना उचित है।

(i) शुभता के लिए त्रिकोणेश होना आवश्यक

तात्पर्य यह है कि कर्क लग्न में दशमेश मंगल की जो शुभता है, उसके केवल दशमेश होने के कारण नहीं है, अपितु उसके त्रिकोणेश (पंचमेश) होने के कारण ही है। इसी प्रकार वृष लग्न में शनि को जो शुभता है वह उसके दशमेश होने के नहीं है, अपितु उसके त्रिकोणेश (नवमेश) होने के कारण ही है। अतः वही क्रूर केन्द्रेश होकर शुभफलदायक होता है जो केन्द्रेश के साथ-साथ त्रिकोणेश भी हो।

---

१. "कुजस्य कर्मनेतृत्वे प्रयुक्ता शुभकारिता।
त्रिकोणस्यापि नेतृत्वे न कर्मेशत्वमात्रतः॥" –लघुपाराशरी श्लो० १२

कारण स्पष्ट है कि जब एक ही ग्रह केन्द्र एवं त्रिकोण का स्वामी होता है तो वह योगकारक हो जाता है।[१] इसलिए क्रूरग्रह केन्द्रेश का त्रिकोणेश होने पर शुभफल देना उचित ही है।

(ii) क्रूरग्रह केवल केन्द्रेश होने पर शुभफल नहीं देता

श्लोक संख्या १२ में लघुपाराशरीकार ने स्पष्ट शब्दों में बतलाया है कि क्रूर ग्रह होने के कारण शुभफल नहीं देता है। क्योंकि क्रूर ग्रह का केन्द्रेश होना- उसके स्वाभाविक पापफल का प्रतिषेध करता है।[२] शुभफल का विधान नहीं। इसलिए कुम्भ लग्न में दशमेश मंगल तथा मेष लग्न में दशमेश शनि शुभफलदायक नहीं होते। इसी प्रकार मकर एवं कुम्भ लग्न में मंगल केन्द्रेश है और कर्क, सिंह एवं वृश्चिक लग्न में शनि केन्द्रेश होता है। किन्तु उक्त लग्नों में मंगल एवं शनि त्रिकोणेश नहीं होते। अत: वे शुभफदायक नहीं होते।

डॉ० (श्रीमति) के० ए० सरस्वती एवं प्रो० वी० अर्धनारीश्वरन् ने जातक चन्द्रिका के इस श्लोक का अंग्रेजी अनुवाद इस प्रकार किया है- "मंगल दशम स्थान में होने से नहीं, अपितु दशमेश होने से शुभ होता है।[३] इस अनुवाद के देखने से लगता है कि अनुवादकों ने श्लोक के मूलपाठ पर सम्भवत: पूरा ध्यान नहीं दिया है। अन्यथा मूल श्लोक में "त्रिकोणस्यापि नेतृत्वे" तथा "न कर्मशत्वमात्रत:" - जैसा स्पष्ट निरूपण होने पर ऐसा विचित्र एवं अपूर्ण अनुवाद नहीं किया जाता। वस्तुत: कुज (क्रूर ग्रह) केवल केन्द्रेश होने से नहीं अपितु केन्द्रेश के साथ-साथ त्रिकोणेश होने पर ही शुभफलदायक होता है, यथा-

"केन्द्रशत्वेन पापानां पापत्वं नैव नश्यति।
परं कोणाधिपत्येन शुभत्वं तस्य संस्फुटम्।"

---

१. लघुपाराशरी श्लो० २०
२. "विस्मरन्ति स्वभावं स्वं जायाकर्मसुखाधिपा:।"
३. जातकचन्द्रिका-नटेश अय्यर स्ट्रीट, मद्रास, श्लो० ११

(iii) निष्कर्ष

क्रूर ग्रह के केन्द्रेश होने पर उसका शुभाशुभत्व इस प्रकार निरूपित किया जाता है-

(i) क्रूर ग्रह केवल केन्द्रेश होने पर पाप फल नहीं देता यह नियम सूर्य चन्द्रमा एवं बुध पर लागू होता है।

(ii) क्रूर ग्रह केन्द्रेश के साथ-साथ त्रिषडायाधीश या अष्टमेश हो तो पापफल देता है। जैसे मकर एवं कुम्भ लग्न में मंगल तथा मेष, कर्क सिंह एवं वृश्चिक लग्न में शनि।

(iii) क्रूर ग्रह केन्द्रेश के साथ-साथ त्रिकोणेश हो तो शुभफलदायक होता है जैसे कर्क एवं सिंह लग्न में मंगल तथा वृष एवं तुला लग्न में शनि।

32. राहु एवं केतु का स्वरूप

भारतीय ज्योतिष के सिद्धांत या गणित स्कन्ध में राहु एवं केतु को ग्रह नहीं माना गया, क्योंकि इनका कोई पिण्ड या बिम्ब नहीं है। ये सम्पातबिन्दु मात्र हैं। किन्तु होराग्रन्थ में राहु एवं केतु को ग्रह माना गया है और इनका जीवन के घटना चक्र को जानने एवं पहचानने के लिए उपयोग किया गया है।

क्रान्तिवृत (पृथ्वी की कक्षा) एवं विमण्डल वृत (चन्द्रगा की कक्षा) के दो सम्पात बिन्दुओं में से एक को राहु तथा दूसरे को केतु कहते हैं। राहु उस सम्पात बिन्दु को कहते हैं, जहां से चन्द्रमा क्रान्तिवृत से उत्तर की ओर होने लगता है या चन्द्रमा का उत्तर शर बढ़ने लगता है। इसी प्रकार केतु उस सम्पात बिन्दु का नाम है, जहां से चन्द्रमा क्रान्तिवृत से दक्षिण की ओर बढ़ने लगता है या चन्द्रमा का दक्षिण शर बढ़ता है।

राहु एवं केतु का कोई भौतिक पिण्ड या बिम्ब नहीं है; अपितु आकाश में चन्द्रमा के परिभ्रमण-पथ को निर्धारित करने के लिए ये दो

सम्पात बिन्दु मात्र हैं। किन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी इनका महत्त्व, परिभ्रमण-पथ, गणना एवं गति के सिद्धांत एवं भौतिक जगत् पर इनका प्रभाव देखकर फलित ग्रन्थों में इनको ग्रह मानकर फलादेश में इनका सर्वत्र उपयोग किया गया है।

जब चन्द्रमा राहु या केतु के पास होता है, तब वह क्रान्तिवृत होता है। जिस अमावस्या या पूर्णिमा को सूर्य या चन्द्रमा इनके समीप होता है अर्थात् चन्द्रशर १० अंश से कम होता है तो ग्रहण पड़ता है। ग्रहण के समय सूर्य या चन्द्रमा के विमर्दक होने के कारण ये प्रबल तथा पापग्रह माने गये हैं और बिम्ब न होने के कारण छायाग्रह या तमोग्रह कहलाते हैं तथा स्वतन्त्रता पूर्वक अपना फल नहीं दे पाते।[१] वस्तुतः इनके दिखाई पड़ने के लिए जैसे ग्रहण-काल में सूर्य या चन्द्रमा के बिम्ब का आश्रय आवश्यक है, वैसे ही इनके फल के लिए भी भाव या ग्रह का आश्रय अनिवार्य है।

इनकी एक मुख्य विशेषता यह है कि ये दोनों सदैव वक्र गति से चलते हैं और सैद्धांतिक दृष्टि से ग्रह न होते हुए भी फलित-शास्त्र में जीवन के घटनाचक्र का विचार करने के लिए ग्रह माने गये हैं।

33. राहु एवं केतु की राशियाँ

भौतिक दृष्टि से राहु एवं केतु के ग्रह न होने के कारण इनको किसी भी राशि का स्वामी नहीं माना जाता है। किन्तु सूर्य आदि नवग्रहों की दशा का फल बतलाते समय इन दोनों की दशा के फल को जानने के लिए पाराशरीहोरा में इनकी उच्चादि राशियाँ इस प्रकार बतलायी गयी हैं-

"राहु का उच्च वृष और केतु का उच्च वृश्चिक है। राहु का मूलत्रिकोण मिथुन एवं केतु का धनु है। राहु का ग्रह कुम्भ एवं केतु का

---

१. "विमर्दकत्वादर्केन्दोः प्रबलावित्युदीरितौ।
बिम्बाभावाच्च तौ स्वं स्वं फलं नो दातुमर्हतः।।"

वृश्चिक है। किसी ने कन्या राहु का और मीन केतु का स्थान कहा है।"[१]

इस विषय में अन्य होराग्रन्थों के मत इस प्रकार हैं-

(i) जातक परिजात के अनुसार राहु का मूल त्रिकोणकुम्भ, उच्च मिथुन एवं स्वग्रह कन्या है।[२]

(ii) राहु का वृष एवं केतु का वृश्चिक उच्च है। राहु का मूलत्रिकोण कर्क तथा केतु का मकर है- यह सर्वार्थ चिन्तामणि का मत है।[३]

(iii) जातकाभरण के अनुसार राहु की राशि कन्या तथा उच्च मिथुन है। इससे सप्तम राशियाँ केतु की होती हैं।[४]

(iv) जैमिनी के मतानुसार राहु की राशि कुम्भ एवं केतु की राशि वृश्चिक होती है।

आधार-ग्रन्थ	ग्रह	स्वराशि	उच्चराशि	नीचराशि	मूलत्रिकोण
वृहत्पाराशर होराशास्त्र	राहु	कुम्भ/कन्या	वृष	वृश्चिक	मिथुन
	केतु	वृश्चिक/मीन	वृश्चिक	वृष	धनु

---

१. "एवं राहोश्च केतोश्च कथयामि गृहादिकम्।
तयोर्दशाफलज्ञप्त्यै तवाऽग्रे द्विजनन्दन।।
राहोस्तु वृषभं केतोवृश्चिकं तृङ्गसंज्ञकम्।
मूलत्रिकोणकं ज्ञेयं युग्मं चापं क्रमेण च।।
कुम्भाली च गृहौ चोक्तौ कन्यामीनौ च केनचित्।"
—बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ४८ श्लो० ३४-३६

२. "कुंभस्त्रिकोणं फणिननायकस्य तुङ्गनृयुग्मं रमणी गृहं स्यात।"
—जातक परिजात अ० १ श्लो० २८

३. "राहोवृषाऽथ केतोस्तु वृश्चिकं तुंगसंज्ञकम्।
मूलत्रिकोणं कर्कश्च क्रियं मित्रभमुच्यते।।
एतत्सप्तमराशिस्तु केतोर्मूलत्रिकोणभम्।।"

४. "कन्या राहुगृहं प्रोक्तं राहुच्चं मिथुनं स्मृतम्।
एतत्सप्तमराशिस्तु केतोश्चैवं तथैव च।।"

सर्वार्थ चिन्तामणि	राहु	–	वृष	वृश्चिक	कर्क
	केतु	–	वृश्चिक	वृष	मकर
जातक परिजात	राहु	कन्या	मिथुन	धनु	कुम्भ
जातकाभरण	राहु	कन्या	मिथुन	धनु	–
	केतु	मीन	धनु	मिथुन	–
जैमिनी	राहु	कुम्भ	–	–	–
	केतु	वृश्चिक	–	–	–

इन सब मत–मतान्तरों के आधार पर कहा जा सकता है कि राहु एवं केतु की राशि, उच्च राशि एवं मूल त्रिकोण के बारे में आचार्यों में मतैक्य नहीं है।

कन्या का स्वामी बुध तथा कुम्भ का स्वामी शनि होता है– यह निर्विवाद एवं सर्वसम्मत पक्ष है।

यदि मान लीजिए कि राहु की राशि कन्या या कुम्भ मान ली जाय तो क्या राहु के अकेला कन्या या कुम्भ का स्वामी माना जायेगा? तब क्या बुध को एक ही राशि मिथुन या शनि की एक ही राशि मकर मानी जायेगी? अथवा कन्या को संयुक्त रूप से राहु और बुध की या कुम्भ को संयुक्त रूप से राहु और शनि की राशि माना जायेगा? वस्तुतः ये कुछ ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न हैं, जिनका समाधान एक लम्बे विचारों की परम्परा के बाद भी आज तक नहीं हो पाया है।

इस विषय में बहुसम्मत सिद्धांत पक्ष यह है कि राहु एवं केतु की कोई राशि नहीं होती। महर्षि पाराशर एवं अन्य आचार्यों ने केवल दशा का फल जानने के लिए इनकी राशियों की कल्पना की है, वे केवल सीमित प्रसंग के लिए है। स्थायी रूप से उनकी कोई राशि नहीं है।

34. राहु एवं केतु का फल

क्रान्तिवृत (पृथ्वी का परिभ्रमण-पथ) एवं विमण्डल (चन्द्रमा का परिभ्रमण-पथ) के सम्पात-बिन्दु को राहु एवं केतु कहते हैं। ये दोनों सम्पात बिन्दु हैं अतः इन्हें सिद्धांत ग्रन्थों[१] में चन्द्रपात या पात कहा जाता है। जब चन्द्रमा इन सम्पात बिन्दुओं में से किसी एक पर होता है। तब वह एक साथ विमण्डल एवं क्रान्तिवृत दोनों में होता है। अतः उस समय इन दोनों वृत्तों का अन्तर जिसे शर कहते हैं शून्य होता है। इस स्थिति में सूर्य, चन्द्रमा एवं पृथ्वी- ये तीनों एक ही धरातल में एक सरलरेखा में आ जाते हैं और तब सूर्य या चन्द्रमा का ग्रहण पड़ता है। सूर्य ग्रहण में चन्द्रमा की छाया तथा चन्द्रग्रहण में पृथ्वी की छाया इन सम्पात बिन्दुओं में से किसी एक का स्पर्श करती है। इसलिए इन्हें छाया ग्रह कहते हैं और छाया तथा तम एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं।[२] अतः इनको तमोग्रह कहा जाता है।

राहु एवं केतु की अपनी कोई राशि नहीं होती। सूर्य आदि सात ग्रह ही मेष आदि राशियों के स्वामी होते हैं। अपनी कोई निजी राशि न होने के कारण ये तमोग्रह लग्न आदि किसी भाव के स्वामी नहीं होते। अतः भावेश न होने के कारण इनका शुभ या अशुभफल संज्ञाध्याय के पूर्वोक्त नियमों के आधार पर निश्चित नहीं किया जा सकता था। इसलिए लघुपाराशरी में इनके शुभाशुभत्व को निर्धारण करने के लिए श्लोक संख्या १३ की रचना की गयी।[३]

इस श्लोक में बतलाया गया है कि प्रबल तमोग्रह (राहु एवं केतु) जिस-जिस भाव में स्थित हों अथवा जिस-जिस भावेश के साथ हों, उसके अनुसार फल देते हैं। उदाहरणार्थ- वे त्रिकोण में हों तो शुभफल देते हैं, त्रिषडाय में हों तो सम (न अच्छा और न ही बुरा) फल देते हैं, अष्टम में हों तो अनिष्टफल तथा लग्न में हों तो शुभफल देते हैं। किन्तु

---

१. सूर्यसिद्धांत, सिद्धांतशिरोमणि एवं सिद्धांत तत्त्वविवेक आदि

२. "तमस्तु राहुः स्वर्भानुसैंहिकेयो विधुन्तुदः।" -अमरकोष

३. "यद्यद्भावगतौ वापि यद्यद्भावेशसंयुतौ।
तत्तत्फलानि प्रबलौ प्रदिशेतां तमोग्रहो।।"

यह फल उक्त भावों में अकेले राहु या केतु के बैठने पर ही मिलता है।

यदि राहु या केतु किसी भाव में अकेला न हो तो वह जिस भाव के स्वामी के साथ हो उसके अनुसार फल देता है। इस स्थिति में राहु एवं केतु की भाव में स्थिति एवं भावेश से युति इन दोनों के अनुसार शुभाशुभत्व का निर्धारण करना चाहिए, यथा- यदि वह केन्द्र में त्रिकोणेश के साथ या त्रिकोण में केन्द्रेश के साथ हो तो योग कारक हो जाता है।[१] यदि वह त्रिकोण, द्वितीय या द्वादश में त्रिकोणेश के साथ हो तो शुभफलदायक होता है। यदि वह त्रिषडाय या अष्टम में त्रिषडायाधीश या अष्टमेश के साथ हो तो पापफलदायक होता है। यदि वह द्वितीय या द्वादश में मारकेश के साथ हो तो मारक हो जाता है। यदि वह केन्द्रेश में केन्द्रेश के साथ हो तो उसके अनुसार फल देता है। यदि वह त्रिकोण में त्रिषडायाधीश के साथ या त्रिषडाय में त्रिकोणेश के साथ हो तो मिश्रित फल देता है। इसी प्रकार यदि राहु या केतु एक से अधिक ग्रहों के साथ स्थित हों तो उन ग्रहों के शुभाशुभत्व के अनुसार फल का उक्त रीति से निर्धारण करना चाहिए।

यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि राहु एवं केतु की भाव में स्थिति तो सदैव रहती है, किन्तु उनकी भावेश से युति कभी-कभी होती है। अतः सामान्य से विशेष के बलवान् होने के कारण इनकी भाव में स्थिति के फल की अपेक्षा भावेश से युति का फल अधिक बलवान होता है।

लघुपाराशरी में ग्रहों की प्रबलता उनके आपसी 'सम्बन्ध' के आधार पर मानी गयी है। यहां अन्य होराग्रन्थों के अनुसार स्थानबल, कालबल, दिग्बल, या चेष्टाबल के आधार पर उनकी प्रबलता या निर्बलता का निर्णय नहीं किया जाता। किन्तु राहु एवं केतु की यह विशेषता है, उनके प्रबल होने के लिए उनका किसी अन्य ग्रह के साथ संबंध होना अनिवार्य नहीं है। क्योंकि ये तमोग्रह शुभ स्थान में स्थित होने पर किसी के साथ सम्बन्ध न होते हुए भी, अन्तर्दशा के अनुसार योग

---

१. "यदि केन्द्रे त्रिकोणे वा निवसेतां तमोग्रहौ।
नाथेनान्तरेणापि सम्बन्धाद्योगकारकौ।।" -लघुपाराशरी श्लो० २१

कारक हो जाते हैं।[१] इस प्रकार इस ग्रन्थ में राहु एवं केतु की प्रबलता के लिए सम्बन्ध होना अनिवार्य नहीं है। तात्पर्य यह है कि राहु एवं केतु- केवल भाव में स्थिति या अन्य भावेश से युतिमात्र से अपना पूरा-पूरा फल देते हैं। इसलिए फल देने में उनकी प्रबलता सदैव रहती है।

इस ग्रन्थ में भाव में स्थिति तथा भावेश से युति का फल गौण माना गया है। जबकि ग्रहों के पारस्परिक सम्बन्ध तथा भावाधीशत्व का फल मुख्य माना गया है। किन्तु यह नियम राहु-केतु के फल को गौण न बना दे- सम्भवतः इसी बात को ध्यान में रखकर श्लोक में इनका 'प्रबलौ' - यह विशेषण रखा गया है।

निष्कर्ष

(i) राहु एवं केतु की स्वराशि, उच्चराशि एवं मूलत्रिकोण के बारे में आचार्यों में मतभेद है।

(ii) जहां भी इनकी राशियाँ मानी गयी हैं, वे दशाफल के प्रतिपादन के लिए बतलायी गयी हैं।

(iii) राहु की राशि कन्या या कुम्भ भी मानी जाय, इससे अनेक समस्यायें पैदा होती हैं।

(iv) उद्योतकार का मत है कि- "जिस ग्रह का जो-जो भाव है और तदनुसार वह ग्रह जो फल करेगा, वही उस भाव में बैठा राहु या केतु करेगा। इसका यह अर्थ हुआ कि मिथुन में राहु बैठा हो तो वह मिथुन एवं कन्या के स्वामी बुध के समान फल देगा।[२]

(v) किन्तु सज्जनरंजिनीकार "यद्यद् भावगतौ" के इस अर्थ से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार राहु या केतु जिस भाव में हो उस भाव का ही फल देते हैं। उदाहरणार्थ- तुला लग्न में नवम में मिथुन में राहु

१. "तमोग्रहौ शुभारूढावसम्बन्धेन केनचिद्।
अन्तदर्शानुसारेण भवेतां योगकारकौ।।" -लघुपाराशरी श्लो० ३६

२. लघुपाराशरी-उद्योत टीका श्लो० १३

पड़ा हो तो वह केवल नवम का ही फल देगा न कि बुध की दूसरी राशि कन्या अर्थात द्वादश भाव का फल देगा।[१]

(vi) लघुपाराशरी के गुजराती टीकाकार श्री तुतजा शंकर धीरज राम पंडया का कहना है कि- राहु और केतु जिस-जिस भाव में होते हैं, उस-उस भाव के अनुसार फल देते हैं- ग्रन्थकार का यह कहना सम्भव नहीं दिखलाई देता। कारण यह है कि यदि राहु सप्तम भाव में हो तो स्त्री के बारे में अनिष्ट फल देता है। उसी प्रकार पंचम में हो तो संतति के सम्बन्ध में अनिष्ट फल देगा, गर्भपात या छोटे बालक का नाश करेगा। इस प्रकार वह इन स्थानों में अनिष्ट फल देता है।[२]

(vii) गुजराती टीकाकार श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर के अनुसार- ज्योतिष के सर्वमान्य ग्रन्थों में राहु-केतु की स्वराशि, मूलत्रिकोण, उच्च नीच, ग्रहमैत्री एवं बलाबल के बाबत कुछ भी स्पष्ट निर्देश नहीं मिलता। इन ग्रन्थों में सातग्रह, द्वादश राशि एवं द्वादश भाव के ही सम्बन्ध में निर्देश हैं। इससे सिद्ध होता है कि प्रमाणभूत ग्रन्थों में राहु और केतु को राशि का स्वामित्व नहीं दिया है।[३]

(viii) श्री पंडया का कथन राहु एवं केतु के सामान्य-फल की दृष्टि से उचित है। किन्तु लघुपाराशरीकार का इस विषय में स्पष्ट कथन है, कि विद्वानों को सामान्य बातें और सामान्य फल की जानकारी सामान्य-ग्रन्थों से कर लेनी चाहिए। क्योंकि लघुपाराशरी में विशेष संज्ञाओं का प्रतिपादन किया गया है।[४]

(ix) राहु एवं केतु के बारे में उनकी भाव में स्थिति एवं भावेश से युति के आधार पर उनका फल इस प्रकार निर्धारित किया जा सकता है-

---

१. लघुपाराशरी-सज्जनरंजनी श्लो० १३
२. तुलजाशंकर धीरजराम पंडया-गुजराती टीका श्लो० १३
३. लघुपाराशरी-गुजराती टीका श्लो० १३
४. लघुपाराशरी-श्लो० ४

ग्रह	स्थिति	युति	फल
राहु एवं केतु	केन्द्र में	त्रिकोणेश के साथ	योगकारक
"	"	त्रिषडायाधीश के साथ	पाप
"	"	अष्टमेश के साथ	पाप
"	"	द्विर्द्वादशेश के साथ	तदनुसार
"	"	शुभग्रह केन्द्रेश के साथ	पाप
"	"	पापग्रह केन्द्रेश के साथ	सम
"	सप्तम में	मारक के साथ	मारक
"	त्रिकोण में	केन्द्रेश के साथ	योगकारक
"	"	त्रिकोणेश के साथ	शुभ
"	"	द्विर्द्वादशेश के साथ	शुभ
"	"	त्रिषडायाधीश के साथ	मिश्रित
"	"	अष्टमेश के साथ	मिश्रित
"	त्रिषडाय में	त्रिकोणेश के साथ	मिश्रित
"	"	केन्द्रेश के साथ	पाप
"	"	त्रिषडायाधीश के साथ	अधिक पाप
"	"	अष्टमेश के साथ	अनिष्टकारक
"	"	द्विर्द्वादशेश के साथ	पाप
"	अष्टम में	त्रिकोणेश के साथ	मिश्रित
"	"	केन्द्रेश के साथ	पाप
"	"	त्रिषडायाधीश के साथ	अधिक पाप
"	"	अष्टमेश के साथ	अनिष्टकारक
"	"	द्विर्द्वादशेश के साथ	पाप
"	"	मारकेश के साथ	मारक
"	द्विर्द्वादश में	मारकेश के साथ	मारक

"	"	कारक के साथ	कारक
"	"	शुभग्रह केन्द्रेश के साथ	पाप
"	"	पापग्रह केन्द्रेश के साथ	सम
"	"	त्रिषडायाधीश/अष्टमेश के साथ	पाप
"	"	द्विर्द्वादशेश के साथ	तदनुसार

(x) पं० श्री महेश्वर मिश्र ने अपनी टीका में श्लोक संख्या १३ का यह आशय बतलाया है कि अकेले राहु एवं केतु जिस भाव में स्थित हों; उस भाव के लिए अनिष्टकर होते हैं।[१] श्री मिश्र का यह कथन सामान्य-फल की दृष्टि से ठीक हो सकता है।

किन्तु लघुपाराशरी के अनुसार- "यदि अकेले राहु एवं केतु शुभस्थान (नवम या दशम) में स्थिति हो तो किसी अन्य ग्रह से सम्बन्ध न होने पर भी अन्तर्दशा के अनुसार योगकारक होते हैं।[२] अतः अकेले राहु या केतु को जिस भाव में वह स्थित है उसके लिए अनिष्टकारी नहीं कहा जा सकता।

वस्तुतः लघुपाराशरी का यह विशेषफल है कि जो सामान्य होराग्रन्थों से कुछ भिन्न-सा दिखाई देता है।

(xi) विरोधाभास

होराशास्त्र के सामान्य ग्रन्थों में ३, ६ एवं ११ वें भाव में स्थित राहु हो अरिष्टनाशक माना गया है।[३] जब कि लघुपाराशरी के अनुसार

---

१. पं० श्री महेश्वर मिश्र-सुबोधिनी गंगा विष्णु श्रीकृष्ण दास मुम्बई, प० ८

२. लघुपाराशरी श्लो० ३६

३. देखिए- (i) जातक परिजात अ० ४ श्लो० ७९
-चौखम्बासंस्कृतसीरिज, वाराणसी, सन् १९४२
(ii) "राहुस्तृतीये षष्ठे वा लाभे वा शुभसंयुतः।
तद्दृष्टो वा तदारिष्टं सर्वं शमयति ध्रुवम्।।" -शौनक
(iii) "सुतजन्मोद् भवान् दोषान् हन्ति ध्वान्तं यथा रविः।
राहुस्त्रिषष्ठलाभस्थः शुभग्रहनिरीक्षितः।।" -कालप्रकाशिका

त्रिषडाय में स्थित राहु पाप फल दायक है। यह राहु का फल प्रथम दृष्टि में विरोधाभास जैसा लगता है। किन्तु इन दोनों फलों में सामानता यह है कि सामान्य होराग्रन्थों के अनुसार अरिष्ट का नाश होने के लिए अरिष्ट का उत्पन्न होना तथा उसके उत्पन्न होने से कष्ट मिलना स्वाभाविक है। क्या अरिष्ट उत्पन्न हुए बिना या उत्पन्न होने पर कष्ट दिये बिना नष्ट हो सकता है? सम्भवतः नहीं। अतः अरिष्टनाशक ग्रह भी अरिष्ट को उत्पन्न कर तथा कष्ट देकर मन के प्रतिकूल फल देता है, जिसे लघुपाराशरीकार ने पापफल कहा है।[१] वस्तुतः सामान्य होराग्रन्थ एवं लघुपाराशरी के फल का तात्त्विक-दृष्टि से विचार किया जाय तो इन दोनों फलों में पर्याप्त समानता है न कि परस्पर विरोधाभास।

(xii) राहु-केतु के बारे में कुछ सर्वसम्मत तथ्य

1. ये दोनों छायाग्रह या तमोग्रह हैं।

2. इनका पिण्ड नहीं होता- अतः इनका रंग, रूप एवं आकार अज्ञात है।

3. राहु चन्द्रमा का नोड (Node) है तथा केतु सूर्य (Node) का है।

4. ये दोनों अन्यग्रहों की अपेक्षा बलवान् होते हैं।

5. राहु-केतु के साथ रहने वाला ग्रह निर्बल हो जाता है।

6. राहु-केतु जिस राशि में हों, उसका स्वामी बाधक हो जाता है।

7. इनकी गति सदैव वक्री होती है।

8. यद्यपि इनकी गति घटती-बढ़ती है, किन्तु अधिकांश आचार्यों ने इनकी गति ३ कला ११ विकला-समान मानी है।

9. इनका उपयोग काल-शुद्धि के लिए किया जाता है।

10. ग्रहण के समय ग्रास की कालिमा में ये दिखलाई पड़ते हैं।

---

१. देखिए- अनुच्छेद १९ (i)

11. इनकी न कोई राशि और न ही कोई वार होता है।

12. विंशोत्तरी में इन दोनों की तथा अष्टोत्तरी/योगिनि में केतु की दशा होती है।

13. केवल विंशोत्तरी आदि दशाओं आदि का फल निर्धारित करने के लिए कुछ आचार्यों ने इनकी उच्च, नीच एवं स्वराशि कल्पित की है।

14. ग्रहों से भिन्न किन्तु छाया ग्रह होने के कारण लघुपाराशरीकार ने इनका शुभाशुभत्व कारकत्व आदि निश्चित करने के लिए स्वतन्त्र नियम बतलाये हैं।

उदाहरण

कुण्डली संख्या १० में राहु योगकारक शनि के साथ तथा कुण्डली सुख्या ७ में राहु मारक मंगल के साथ स्थित हैं। अतः कुण्डली सुख्या १० में राहु योगकारक तथा कुण्डली संख्या ७ में वह मारक का फल देगा।

कुण्डली संख्या १५
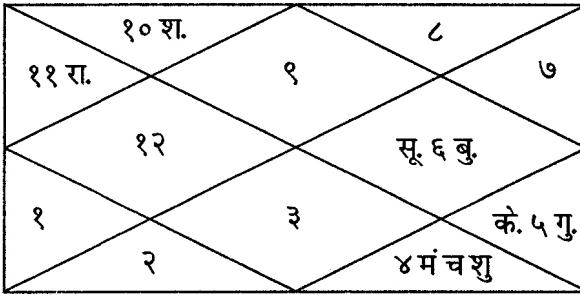
कुण्डली संख्या १६

कुण्डली संख्या १५ में राहु द्वितीय स्थान में अकेला होने से सम है तथा केतु अष्टम में केन्द्राधिपत्य दोषी बुध के साथ होने से पापफल दायक है।

कुण्डली संख्या १६ में राहु तीसरे स्थान में अकेला होने से पापी है तथा केतु नवम में लग्नेश गुरु के साथ होने से शुभफलदायक है।

योगाध्याय

35. योग एवं योगकारक

लघुपाराशरी के संज्ञाध्याय में भाव के स्वामित्व के आधार पर ग्रहों का शुभाशुभत्व बतलाया गया; जो ग्रहों का एकाकी-गुण होता है। यदि वे ग्रह किसी दूसरे भाव के स्वामी से सम्बन्ध करें तो उनके शुभाशुभत्व में क्या केसा और कितना परिवर्तन होता है?- इसका विचार एवं विवेचन इस अध्याय में किया जा रहा है।

"ग्रहयोग" को फलितज्योतिष की भाषा "योग" कहा जाता है। लघुपाराशरी के अनुसार केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश में परस्पर सम्बन्ध होने से योग बनता है। यह योग मनुष्यों को उनके पूर्वार्जित कर्मों के फल से मिलाता है; इसलिए 'योग' कहलाता है।[१]

ग्रहों के आपसी सम्बन्ध चार प्रकार के होते हैं- १. स्थान सम्बन्ध २. दृष्टि सम्बन्ध ३. अन्यतर दृष्टिसम्बन्ध एवं ४. युति सम्बन्ध।[२] ग्रहों का एक-दूसरे की राशि में बैठना स्थान सम्बन्ध कहलाता है। ग्रहों का एक-दूसरे को पूर्णदृष्टि से देखना दृष्टि-सम्बन्ध कहा जाता है। एक ग्रह का दूसरे की राशि में बैठना तथा दूसरे का उसे देखना अन्यतर दृष्टि सम्बन्ध कहलाता है। और ग्रहों का एक साथ किसी भाव में बैठना युति सम्बन्ध कहा जाता है।

---

१. "ग्रहाणां स्थितिभेदेन पुरुषान् योजयन्ति हि।
फलैः कर्मसमुद्भूतैरिति योगाः प्रकीर्तिताः।।"
—प्रश्नमार्ग अ० ९/४८, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

२. बृहद्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० ११-१२

(i) स्थान सम्बन्ध का उदाहरण-

कुण्डली संख्या १७

कुण्डली संख्या १८

कुण्डली संख्या १७ में चन्द्रमा नवमेश है तथा शुक्र सप्तमेश-द्वादशेश है। यहां चन्द्रमा शुक्र की और शुक्र चन्द्रमा की राशि में है। अतः इन दोनों में स्थान सम्बन्ध है।

कुण्डली संख्या १८ में शनि चतुर्थेश-पंचमेश है और मंगल सप्तमेश-द्वितीयेश है। यहां शनि मंगल के और मंगल शनि के स्थान में स्थित है। अतः इन दोनों में स्थान सम्बन्ध है।

(ii) दृष्टि सम्बन्ध का उदाहरण-

कुण्डली संख्या १९

कुण्डली संख्या १२

कुण्डली संख्या १९ में शनि चतुर्थेश एवं पंचमेश है और मंगल सप्तमेश एवं द्वितीयेश है। इन दोनों की परस्पर दृष्टि होने के कारण इन दोनों में दृष्टि-सम्बन्ध है।

(iii) अन्यतर दृष्टि सम्बन्ध का उदाहरण-

कुण्डली संख्या २

कुण्डली संख्या २०

कुण्डली संख्या २ में चन्द्रमा लग्नेश है तथा मंगल पंचमेश एवं दशमेश है। यहां चन्द्रमा मंगल की राशि में स्थित है और उस पर मंगल की दृष्टि है। अतः इन दोनों में अन्यतर स्थान सम्बन्ध है।

कुण्डली संख्या २० में शनि सप्तमेश एवं षष्ठेश है और मंगल चतुर्थेश एवं नवमेश है। यहाँ शनि मंगल की राशि में स्थित है और मंगल की उस पर दृष्टि है। अतः इन दोनों में अन्यतर स्थान सम्बन्ध है। साथ ही ये दोनों एक-दूसरे की राशि में स्थित है। इसलिए इनमें स्थान सम्बन्ध भी है।

(iv) युति सम्बन्ध का उदाहरण-

कुण्डली संख्या २१

कुण्डली संख्या २२

कुण्डली संख्या २१ में सूर्य नवमेश है तथा बुध सप्तमेश एवं दशमेश है। ये दोनों साथ-साथ चतुर्थ स्थान में स्थित है। अतः इन दोनों में युति सम्बन्ध है।

कुण्डली संख्या २२ में शनि चतुर्थेश एवं पंचमेश है तथा बुध नवमेश एवं द्वादशेश है। ये दोनों लग्न में साथ-साथ स्थित है। अतः इन दोनों में युति सम्बन्ध है।

(v) सम्बन्ध के भेद

लघुपाराशरी के श्लोक संख्या १६ में उदाहरण के माध्यम से

ग्रन्थकार ने स्थान सम्बन्ध, युतिसम्बन्ध एवं अन्यतर स्थान सम्बन्ध इन तीन ही भेदों का प्रतिपादन किया है। यहां दृष्टि-सम्बन्ध प्रतिपादन नहीं है। यदि लघुपाराशरी के इस श्लोक के आधार पर ग्रहों के तीन ही सम्बन्ध माने जाय तो श्लोक संख्या ५ में प्रतिपादित ग्रहों की दृष्टि का इस ग्रन्थ में कहीं भी उपयोग न होने से वह व्यर्थ हो जायेगी। अतः शास्त्र के अनुशासन-सूत्र[१] के अनुसार दृष्टि का उपयोग करने के लिए दृष्टि-सम्बन्ध मानना आवश्यक है।

यह दृष्टि-सम्बन्ध काल्पनिक नहीं है। जिस पाराशरी होरा के आधार पर लघुपाराशरी की रचना हुई है, उसमें चतुर्विध सम्बन्धों का निरूपण किया गया है और वहां दृष्टि-सम्बन्ध एक सम्बन्ध माना गया है, यथा-

"केन्द्रकोणपती स्यातां परस्परगृहोपगौ।
एकभे द्वौ स्थितौ वाऽपि ह्येकभेऽन्तरः।।
पूर्णदृष्टे स्थितौ वाऽपि मिथो योगकरौ तदा।।

-अ० ३५ श्लो० १२-१२

लघुपाराशरी की परम्परा में विरचित सुश्लोक शतक[२] आदि ग्रन्थों में भी दृष्टि-सम्बन्ध सहित सम्बन्ध के चार भेद माने गये हैं। अतः लघुपाराशरी के आधार ग्रन्थों के अनुसार सम्बन्धों के चार भेद मानना उचित है।

इन चारों प्रकार के सम्बन्धों के भी दो-दो भेद होते हैं- १. परस्पर सम्बन्धित ग्रहों का केन्द्र या त्रिकोण में बैठना तथा २. परस्पर सम्बन्धित ग्रहों का केन्द्र-त्रिकोण से अतिरिक्त अन्य भावों में बैठना। फल एवं उसकी मात्रा की दृष्टि से इन दोनों स्थितियों में अन्तर होता है।

---

१. समन्वय एवं व्यर्थापत्ति

२. सुश्लोक शतक-संज्ञाध्याय श्लो० २२-२३

(vi) दो या दो से अधिक का सम्बन्ध

ग्रहों का पारस्परिक सम्बन्ध उभय पक्षीय होता है। इसलिए दो या अधिक ग्रहों में से प्रत्येक को आपस में सम्बन्ध होना आवश्यक है। उदाहरणार्थ-तीन ग्रहों के पारस्परिक सम्बन्ध के लिए यह आवश्यक है कि पहला ग्रह दूसरे से तथा दूसरा ग्रह तीसरे से परस्पर सम्बन्ध करें। किन्तु यदि तीसरा ग्रह पहले से सम्बन्ध न करे तो यह तीन ग्रहों का पारस्परिक सम्बन्ध नहीं कहलायेगा। इस स्थिति में पहले एवं दूसरे एवं तीसरे ग्रह में पारस्परिक सम्बन्ध माना जायेगा। और यदि इस स्थिति में तीसरे ग्रह का पहले ग्रह से भी सम्बन्ध हो तो ये तीनों ग्रह परस्पर सम्बन्धित कहलायेंगे।

फलादेश की सुविधा के लिए जहां भी दो से अधिक ग्रह आपस में सम्बन्ध करते हैं; वहां उनमें से दो-दो ग्रहों की एक-एक इकाई बना लेनी चाहिए और फिर इस इकाई के दोनों ग्रहों की परस्पर दशा-अन्तर्दशा में तीसरे ग्रह की प्रत्यन्तर दशा में योगज-फल की प्राप्ति बतलानी चाहिए। यदि दो आपसी सम्बन्ध हों तो उनकी परस्पर दशा-अन्तर्दशा में उनसे सम्बन्ध न रखने वाले त्रिकोणेश की प्रत्यन्तर दशा में योगज-फल की प्राप्ति बतलानी चाहिए।

(vii) योगकारक का अर्थ

केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश में आपस में सम्बन्ध होने से योगकारक हो जाते हैं। योगकारक ग्रह सामान्यतया व्यक्ति के भाग्य एवं प्रगति का सूचक है। यदि व्यक्ति को सत्ता, सम्पत्ति, प्रभुता एवं प्रतिष्ठा सभी कुछ दे सकता है। किन्तु इसका फल निर्धारित करते समय कुछ बातें ध्यान में रखनी चाहिए १. योगकारक ग्रह निर्दोष है या सदोष २. वह केन्द्र-त्रिकोण में स्थित है या अन्यत्र ३. योगकारक ग्रह दो हैं या दो से अधिक तथा ४. योगकारक ग्रहों की दशा व्यक्ति के जीवन-काल में आयेगी या नहीं।

यदि योगकारक ग्रह निर्दोष हो, केन्द्र-त्रिकोण में स्थित हो, अन्य ग्रहों से सम्बन्ध न करते हों और उनकी दशा जीवनकाल में आती हो, तो

वे व्यक्ति को निहाल एवं मालामाल कर देते हैं। इस प्रकार की स्थिति में व्यक्ति को सत्ता, सम्पत्ति, प्रभुता एवं प्रतिष्ठा आदि सभी कुछ मिलता है। और यदि योगकारक ग्रह सदोष हो, केन्द्रत्रिकोण से अन्यत्र हो अन्य ग्रहों से सम्बन्ध करते हों तथा उनकी दशा जीवन-काल में न आती हो तो वे त्रिकोणेश या केन्द्रेश की दशा में व्यक्ति के भाग्य में वृद्धि प्रगति एवं उन्नति अवश्य देते हैं।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि योगकारक ग्रह निश्चित रूप से जीवन में उत्कर्षदायक हैं। किन्तु उसके फल में निर्दोष-सदोष अन्य से सम्बन्ध होना न होना, केन्द्रत्रिकोण या अन्यत्र स्थिति एवं उसकी दशा का मिलना या न मिलना - ये चारों बातें उसके फल में तारतम्य उत्पन्न करती हैं।

36. विशेष फलदायक

लघुपाराशरीकार ने योगाध्याय में योगकारक ग्रहों का विवेचन करते हुए सर्वप्रथम विशेषफलदायक ग्रहों का निरूपण किया है- "यदि केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश परस्पर सम्बन्ध करते हो और इतर ग्रहों से सम्बन्ध न करते हों तो विशेष फलदायक होते हैं।[१]

(i) इतर ग्रहों से तात्पर्य है

केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश आपसी सम्बन्ध से योगकारक होते हैं। किन्तु यदि इनका त्रिषडायाधीश या अष्टमेश से सम्बन्ध हो तो उनके पाप प्रभाववश योगजन्यफल में साङ्कर्य (मिलावट) हो सकती है अतः जब केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश में आपसी सम्बन्ध हो और इनका त्रिषडायाधीश या अष्टमेश से सम्बन्ध न हो तो वे विशेष रूप से योगजफल देते हैं।

केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश दो प्रकार के होते हैं- एक तो वे जिनकी दूसरी राशि केन्द्र या त्रिकोण में पड़ती है और दूसरे वे जिनकी राशि

---

१. "केन्द्रत्रिकोणपतयः सम्बन्धेन परस्परम्।
इतरैरप्रसक्ताश्चेद् विशेषफलदायकाः।।"

केन्द्र-त्रिकोण के बाहर अर्थात् त्रिषडाय, अष्टम या द्विर्द्वादश में पड़ती है। यहां "इतरैरप्रसक्ताश्चेद" का तात्पर्य ऐसे केन्द्रेश एवं त्रिकोणेशों से है, जिनकी दूसरी राशि त्रिषडाय या अष्टम में न हो। इस स्थिति में केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश का सम्बन्ध साङ्कर्य रहित या सर्वथा शुद्ध होता है। अतः वे विशेष रूप से योगजफल देते हैं।

वस्तुतः उन केन्द्रेश एवं त्रिकोणेशों की; जिनकी दूसरी राशि द्वितीय या द्वादश भाव में पड़ती है; पारस्परिक सम्बन्ध होने पर विशेष फलदायकता में हानि नहीं होती। कारण यह है कि द्वितीयेश एवं द्वादशेश का अपना कोई शुभ या अशुभ फल नहीं होता वे तो दूसरों के साहचर्य या अन्य स्थान के गुण-धर्म के अनुसार फल देते हैं[1] इसलिए जब कोई ग्रह द्वितीयेश या द्वादशेश होने के साथ-साथ केन्द्रेश या त्रिकोणेश होता है तो वह "स्थानान्तरानुगुण्येन" के नियमानुसार केन्द्रेश या त्रिकोणेश जैसा ही फल देगा। तात्पर्य यह है कि केन्द्रेश या त्रिकोणेश के द्वितीयेश द्वादशेश होने पर भी उसका केन्द्रेशत्व या त्रिकोणेशत्व अक्षुण्ण ही बना रहेगा। यही कारण है कि ऐसे केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश आपसी सम्बन्ध होने से विशेष फलदायक होते हैं।

कुछ टीकाकारों[2] के अनुसार 'इतर' शब्द का अर्थ त्रिषडायाधीश है। उनका कहना है कि 'इतर' शब्द से अष्टमेश का ग्रहण नहीं करना चाहिए। क्योंकि "धर्मकर्माधिनेतारौ रन्ध्रलाभाधिपौ यदि" इस श्लोक[3] में अष्टमेश के सम्बन्ध से राजयोग का भंग बतलाया गया है। अतः यहां 'इतर' शब्द से त्रिषडायाधीश ही समझना चाहिए। किन्तु यहाँ विचारणीय बात यह है कि उक्त श्लोक में अष्टमेश के साथ-साथ लग्नेश होने पर भी राजयोग का भंग बतलाया गया है। अतः यदि इस युक्ति को मान लिया जाय तो 'इतर' का अर्थ केवल तृतीयेश एवं षष्ठेश ही होगा और

---

१. देखिए-अनुच्छेद २६ (vii)
२. उडुदायप्रदीप-तत्त्वबोधिनी-पं० मुकुन्द वल्लभ मिश्र
-मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, २२
३. लघुपाराशरी श्लो० २२

यहाँ 'इतरैः' का बहुवचन व्यर्थ हो जायेगा। अतः 'इतरेः' का अर्थ त्रिषडायाधीश एवं अष्टमेश ही मानना उचित है। लघुपाराशरी की परम्परा में लिखित सुश्लोक शतक[१] आदि में भी यही अर्थ माना गया है।

(ii) विशेषफलदायक केन्द्रेश-त्रिकोणेश

कुण्डली में निम्नलिखित केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश आपसी सम्बन्ध होने पर तथा त्रिषडायाधीश या अष्टमेश से सम्बन्ध न होने पर विशेष फलदायक होते हैं-

1. लग्नेश एवं पंचमेश
2. लग्नेश एवं नवमेश
3. लग्नेश एवं दशमेश
4. चतुर्थेश एवं पंचमेश
5. चतुर्थेश एवं नवमेश
6. सप्तमेश एवं पंचमेश
7. सप्तमेश एवं नवमेश
8. दशमेश एवं पंचमेश
9. दशमेश एवं नवमेश

ग्रहों के चार प्रकार के सम्बन्धों के आधार पर योग कारक उक्त नौ केन्द्रेश एवं त्रिकोणेशों के ३६ भेद बन जाते हैं। यदि स्थान, दृष्टि, अन्यतर स्थान एवं युति सम्बन्धों के अन्तर भेदों की कल्पना की जाय तो योगकारक ग्रहों की संख्या सैकड़ों में पहुँच जायेगी। योगकारक ग्रहों के प्रमुख ८० भेदों की तालिका इस अनुच्छेद के अन्त में दी गयी हैं।

---

१. (i) "आयुस्त्रिषष्ठेशायेशानामसम्बन्धी च यो ग्रहः।
पुनस्तादृशकेन्द्रसम्बन्धी स तु राज्यदः।।"
—सुश्लोक शतक राजयोगाध्याय श्लो० १

(ii) जातकचन्द्रिका श्लो० १८

(iii) मेष आदि लग्नों में विशेषफलदायक

मेष आदि द्वादश लग्नों में उन केन्द्रेश एवं त्रिकोणेशों की तालिका इस प्रकार है, जो त्रिषडायाधीश या अष्टमेश नहीं होते-

लग्न	केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश ग्रह	योगकारक
मेष	**i.** चतुर्थेश-चन्द्रमा	चन्द्रमा + सूर्य
	ii. पंचमेश-सूर्य	चन्द्रमा+गुरु
	iii. सप्तमेश (द्वितीयेश) शुक्र	शुक्र+सूर्य
	iv. नवमेश (द्वादशेश) गुरु	शुक्र+गुरु
वृषभ	**i.** चतुर्थेश-सूर्य	सूर्य+बुध
	ii. पंचमेश (द्वितीयेश)-बुध	सूर्य+शनि
	iii. सप्तमेश (द्वादशेश)-मंगल	मंगल+बुध
	iv. नवमेश-दशमेश-शनि	मंगल+शनि
		शनि+बुध
मिथुन	**i.** लग्नेश-चतुर्थेश-बुध	बुध+शुक्र
	ii. पंचमेश (द्वादशेश)-शुक्र	बुध+गुरु
	iii. सप्तमेश-दशमेश-गुरु	गुरु+शुक्र
कर्क	**i.** लग्नेश-चन्द्र	चन्द्र+मंगल
	ii. पंचमेश-दशमेश-मंगल	
सिंह	**i.** लग्नेश-सूर्य	सूर्य+मंगल
	ii. चतुर्थेश-नवमेश-मंगल	

कन्या	**i.** लग्नेश–दशमेश–बुध	
	ii. चतुर्थेश–सप्तम–गुरु	बुध+शुक्र
	iii. नवमेश (द्वितीयेश)–शुक्र	गुरु+शुक्र
तुला	**i.** चतुर्थेश–पंचमेश–शनि	मंगल+शनि
	ii. सप्तमेश (द्वितीयेश)–मंगल	मंगल+बुध
	iii. नवमेश (द्वादशेश)–बुध	चन्द्र+शनि
	iv. दशमेश–चन्द्र	चन्द्र+बुध
		शनि+बुध
वृश्चिक	**i.** पंचमेश (द्वितीयेश)–गुरु	शुक्र+गुरु
	ii. सप्तमेश (द्वितीयेश)–शुक्र	शुक्र+चन्द्र
	iii. नवमेश–चन्द्र	सूर्य+गुरु
	iv. दशमेश–सूर्य	सूर्य+चन्द्र
धनु	**i.** लग्नेश–चतुर्थेश–गुरु	गुरु+मंगल
	ii. पंचमेश (द्वादशेश)–मंगल	गुरु+सूर्य
	iii. सप्तमेश–दशमेश–बुध	बुध+मंगल
	iv. नवमेश–सूर्य	बुध+सूर्य
मकर	**i.** लग्नेश (द्वितीयेश)–शनि	शनि+शुक्र
	ii. पंचमेश–दशमेश–शुक्र	चन्द्र+शुक्र
	iii. सप्तमेश–चन्द्र	

कुम्भ	**i.** लग्नेश (द्वादशेश)-शनि	शनि+शुक्र
	ii. चतुर्थेश-दशमेश-शुक्र	सूर्य+शुक्र
	iii. सप्तमेश-सूर्य	
मीन	**i.** लग्नेश-दशमेश-गुरु	गुरु+चन्द्र
	ii. चतुर्थेश-सप्तमेश-बुध	गुरु+मंगल
	iii. पंचमेश-चन्द्र	बुध+चन्द्र
	iv. नवमेश (द्वितीयेश)-मंगल	बुध+मंगल

(iv) योगकारक के प्रमुख अस्सी भेद

१. लग्नेश पंचम में और पंचमेश लग्न में
२. लग्नेश एवं पंचमेश की परस्पर दृष्टि हो
३. लग्नेश पंचम में और उस पर पंचमेश की दृष्टि हो
४. पंचमेश लग्न में और उस पर लग्नेश की दृष्टि हो
५. लग्नेश एवं पंचमेश-लग्न में
६. लग्नेश एवं पंचमेश-चतुर्थ में
७. लग्नेश एवं पंचमेश-पंचम में
८. लग्नेश एवं पंचमेश-सप्तम में
९. लग्नेश एवं पंचमेश-नवम में
१०. लग्नेश एवं पंचमेश-दशम में
११. लग्नेश नवम में और नवमेश लग्न में
१२. लग्नेश एवं नवमेश की परस्पर दृष्टि हो
१३. लग्नेश नवम में और उस पर नवमेश की दृष्टि हो
१४. नवमेश लग्न में और उस पर लग्नेश की दृष्टि हो

१५. लग्नेश एवं नवमेश-लग्न में
१६. लग्नेश एवं नवमेश-चतुर्थ में
१७. लग्नेश एवं नवमेश-पंचम में
१८. लग्नेश एवं नवमेश-सप्तम में
१९. लग्नेश एवं नवमेश-नवम में
२०. लग्नेश एवं नवमेश-दशम में
२१. चतुर्थेश पंचम में और पंचमेश चतुर्थ में
२२. चतुर्थेश एवं पंचमेश की परस्पर दृष्टि हो
२३. चतुर्थेश पंचम में और उस पर पंचमेश की दृष्टि हो
२४. पंचमेश चतुर्थ में और उस पर चतुर्थेश की दृष्टि हो
२५. चतुर्थेश एवं पंचमेश-लग्न में
२६. चतुर्थेश एवं पंचमेश-चतुर्थ में
२७. चतुर्थेश एवं पंचमेश-पंचम में
२८. चतुर्थेश एवं पंचमेश-सप्तम में
२९. चतुर्थेश एवं पंचमेश-नवम में
३०. चतुर्थेश एवं पंचमेश-दशम में
३१. चतुर्थेश नवम में और नवमेश चतुर्थ में
३२. चतुर्थेश एवं नवमेश की परस्पर दृष्टि हो
३३. चतुर्थेश नवम में और उस पर नवमेश की दृष्टि
३४. नवमेश चतुर्थ में और उस पर चतुर्थेश की दृष्टि
३५. चतुर्थेश एवं नवमेश-लग्न में
३६. चतुर्थेश एवं नवमेश-चतुर्थ में
३७. चतुर्थेश एवं नवमेश-पंचम में
३८. चतुर्थेश एवं नवमेश-सप्तम में

३९. चतुर्थेश एवं नवमेश–नवम में
४०. चतुर्थेश एवं नवमेश–दशम में
४१. सप्तमेश पंचम में और पंचमेश सप्तम में
४२. सप्तमेश एवं पंचमेश की परस्पर दृष्टि हो
४३. सप्तमेश पंचम में हो और उस पर पंचमेश की दृष्टि हो
४४. पंचमेश सप्तम में हो और उस पर सप्तमेश की दृष्टि हो
४५. सप्तमेश एवं पंचमेश–लग्न में हो
४६. सप्तमेश एवं पंचमेश–चतुर्थ में
४७. सप्तमेश एवं पंचमेश–पंचम में
४८. सप्तमेश एवं पंचमेश–सप्तम में
४९. सप्तमेश एवं पंचमेश–नवम में
५०. सप्तमेश एवं पंचमेश–दशम में
५१. सप्तमेश नवम में और नवमेश सप्तम में हो
५२. सप्तमेश एवं नवमेश की परस्पर दृष्टि हो
५३. सप्तमेश नवम में और उस पर नवमेश की दृष्टि हो
५४. नवमेश सप्तम में और उस पर सप्तमेश की दृष्टि हो
५५. सप्तमेश एवं नवमेश–लग्न में हों
५६. सप्तमेश एवं नवमेश–चतुर्थ में हों
५७. सप्तमेश एवं नवमेश–पंचम में हों
५८. सप्तमेश एवं नवमेश–सप्तम में हों
५९. सप्तमेश एवं नवमेश–नवम में हों
६०. सप्तमेश एवं नवमेश–दशम में हों
६१. दशमेश पंचम में और पंचमेश दशम में हो
६२. दशमेश एवं पंचमेश की परस्पर दृष्टि हो

६३. दशमेश पंचम में हो और उस पर पंचमेश की दृष्टि हो
६४. पंचमेश दशम में हो और उस पर दशमेश की दृष्टि हो
६५. दशमेश एवं पंचमेश-चतुर्थ-लग्न में हों
६६. दशमेश एवं पंचमेश-चतुर्थ में हों
६७. दशमेश एवं पंचमेश-पंचम में हों
६८. दशमेश एवं पंचमेश-सप्तम में हों
६९. दशमेश एवं पंचमेश-नवम में हों
७०. दशमेश एवं पंचमेश-दशम में हों
७१. दशमेश नवम में और नवमेश दशम में हो
७२. दशमेश एवं नवमेश की परस्पर दृष्टि हो
७३. दशमेश नवम में और उस पर नवमेश की दृष्टि हो
७४. नवमेश दशम में और उस पर दशमेश की दृष्टि हो
७५. नवमेश एवं दशमेश-लग्न में हों
७६. नवमेश एवं दशमेश-चतुर्थ में हों
७७. नवमेश एवं दशमेश-पंचमेश में हों
७८. नवमेश एवं दशमेश-सप्तम में हों
७९. नवमेश एवं दशमेश-नवम में हों
८०. नवमेश एवं दशमेश-दशम में हों

37. दोषयुक्त केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश योगकारक होते हैं

अनुच्छेद ३५ में बतलाया गया है कि वे केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश जो इतर भाव (त्रिषडाय एवं अष्टम) के स्वामी न हों, आपसी सम्बन्ध से विशेष रूप से योगजफल देते हैं। श्लोक संख्या[१] १५ में "दोषयुक्तावपि

---

१. "केन्द्रत्रिकोणनेतारौ दोषयुक्तावपि स्वयम्।
सम्बन्धमात्राद्बलिनौ भवेतां योगकारकौ।।" –लघुपाराशरी श्लो० १५

स्वयम्" यह वाक्य पूर्व श्लोक के "इतरैरप्रसक्ताश्चेद्" का स्पष्टीकरण है। इस श्लोक में बतलाया गया है कि बलवान केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश (दशमेश एवं नवमेश) दोषयुक्त हों, तो भी वे केवल आपसी सम्बन्ध से योगकारक हो जाते हैं।

यहाँ "दोषयुक्तावपि स्वयम्" का अर्थ संज्ञाध्याय में बतलाये गये त्रिषडायाधीशता एवं केन्द्राधिपत्यदोष जैसे दोषों से मुक्त होना है। इन दोषों से युक्त ग्रह सामान्यतया पाप फल देते हैं। किन्तु यदि नवमेश एवं दशमेश में परस्पर सम्बन्ध हो तो वे उक्त दोषों से युक्त होने पर भी योगज शुभ फल देते हैं।

भाव के स्वामी होने के नाते शुभ या अशुभ फलदायक ग्रह का जब किसी अन्य भाव के स्वामी से सम्बन्ध होता है, तब उसके फल में क्या-क्या परिवर्तन हो जाता है? यह योगाध्याय का प्रतिपाद्य विषय है। अतः इसका विवेचन करते हुए लघुपाराशरीकार ने बतलाया है कि बलवान् त्रिकोणेश एवं केन्द्रेश (नवमेश एवं दशमेश) संज्ञाध्याय में प्रतिपादित त्रिषडाधीशत्व एवं केन्द्राधिपत्य जैसे दोषों से युक्त होने पर भी पारस्परिक सम्बन्ध के प्रभाव से योगकारक हो जाते हैं।

(i) दोषयुक्त का तात्पर्य

लघुपाराशरी के कुछ टीकाकारों ने दोषयुक्त का अर्थ-नीच राशि में स्थिति, शत्रु राशि में स्थिति, अस्तंगत होना या निर्बलता आदि माना है।[१] किन्तु इस ग्रन्थ में कहीं भी इन दोषों की चर्चा या इनका फल नहीं बतलाया गया है। अपितु ग्रन्थकार ने स्पष्टरूप से "एतच्छास्त्रानुसारेण संज्ञा

---

१. (i) लघुपाराशरी-सुबोधिनी-पं० अच्युतानन्द झा —चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, पृ० ३८

(ii) लघुपाराशरी-भाषा टीका-श्री वासुदेव गुप्त —ठाकुर प्रसाद एण्ड सन्स, वाराणसी, पृ० ५०

(iii) लघुपाराशरी-तत्त्वार्थप्रकाशिका-पं० सीताराम झा मास्टर खेलाड़ी लाल संकटाप्रसाद, वाराणसी, पृ० ४७

ब्रूमो विशेषत:" अपने कथन[१] के अनुसार संज्ञाध्याय में, केन्द्राधिपत्य एवं अष्टमेशत्व को ग्रहों का दोष बतलाया है।

श्लोक संख्या ६ के अनुसार तृतीय, षष्ठ एवं एकादश स्थानों के स्वामी पाप फलदायक होते हैं। यदि केन्द्रेश या त्रिकोणेश त्रिषडाय का भी स्वामी हो तो वह दोषयुक्त होता है- ऐसा पाराशर का मत है।[२] श्लोक संख्या ९ के अनुसार अष्टमेश शुभ फल नहीं देता किन्तु यदि वह लग्नेश भी हो तो अन्ततोगत्वा शुभ फलदायक हो जाता है। इस प्रकार लघुपाराशरी में त्रिषडायाधीश सौम्यग्रह केन्द्रेश, अष्टमेश तथा वे केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश, जो त्रिषडायाधीश हो, को दोषयुक्त माना गया है। इन दोषयुक्त ग्रहों में से अष्टमेश एवं एकादशेश राजयोग भंग कर देते हैं।[३] अत: योगकारता के प्रसंग में निम्नलिखित ग्रहों को दोषयुक्त माना जाता है-

१. सौम्य ग्रह केन्द्रेश।

२. लग्नेश, जो षष्ठेश हो।

३. केन्द्रेश, जो तृतीयेश या षष्ठेश हो।

४. त्रिकोणेश, जो षष्ठेश हो।

यद्यपि इन ग्रहों में दोष रहता है। किन्तु यह दोष केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश के सम्बन्ध के प्रभाववश गौण हो जाता है। जैसे पारसमणि के सम्पर्क से लोका भी सोना बन जाता है वैसे ही नवमेश-दशमेश के सम्बन्ध से दोषयुक्त ग्रह भी योगकारक बन जाते हैं।

(ii) बलवान का अर्थ

लघुपाराशरी के एक विद्वान् टीकाकार[४] ने अपनी व्याख्या के समर्थन में यह तर्क दिया है कि नीचराशि एवं शत्रु राशि में स्थित या असंगत ग्रह निर्बल होते हैं। इसलिए यहाँ "बलिनौ"[१] कहा गया है। जिसका

---

१. देखिए-अनुच्छेद १४

२. सुश्लोक शतक-संज्ञाध्याय श्लो० १४-१५

३. लघुपाराशरी श्लो० २२

४. पं० श्री सीताराम झा-तत्त्वार्थप्रकाशिका अ० श्लो० २

अभिप्राय यह है कि केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश आपसी सम्बन्ध से बलवान हो जाते हैं।

किन्तु उनका यह कथन यहाँ अप्रासंगिक लगता है क्योंकि वृहत्पाराशर होराशास्त्र[१] एवं लघुपाराशरी[२] में कारक निरूपण के प्रसंग में "प्रबलाश्चोत्तरोत्तरम्" के अनुसार बल का निर्धारण किया गया जाता है। इन टीकाकारों ने 'बलिनौ' का अन्वय 'सम्बन्धमात्रात्' के साथ करके ऐसा अर्थ निकाला है। जबकि 'बलिनौ' का अन्वय 'केन्द्रत्रिकोणनेतारौ' के साथ करना उचित है। इस प्रकार "बलिनौ केन्द्रत्रिकोणनेतारौ" का अर्थ- बलवान् केन्द्र एवं त्रिकोण के स्वामी-अर्थात् दशमेश एवं नवमेश। अतः श्लोक संख्या १५ में "बलिनौ" एवं "दोषयुक्तौ" - ये दोनों "केन्द्रत्रिकोणनेतारौ" के विशेषण हैं।[३]

लघुपाराशरी के योगाध्याय में श्लोक संख्या १५ में 'बलिनौ' तथा श्लोक संख्या १७ में 'बलिन' में दोनों पद एक ही अर्थ को अभिव्यक्ति देते हैं। यहाँ - "बलिनौ केन्द्रत्रिकोणनेतारौ" दशमेश एवं नवमेश का तथा 'बलिनः केन्द्रनाथस्य' - दशमेश का पर्यायवाची है।

(iii) निष्कर्ष

(i) वस्तुतः लघुपाराशरी के श्लोक संख्या १४ में बतलाया गया है कि वे केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश जो इतर भाव के स्वामी न हों या इतर भावेशों से सम्बन्ध न रखते हों- वे आपसी सम्बन्ध से विशेष शुभफलदायक होते हैं और यदि वे इतर भाव के स्वामी हों, तो क्या फल होगा? इसका स्पष्टीकरण करते हुए श्लोक संख्या १५ में बतलाया गया है कि दशमेश एवं नवमेश इतर भावों के स्वामी होने से दोष युक्त भी हों, तो आपसी सम्बन्ध के कारण योगकारक हो जाते हैं।

---

१. बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० ५,९ एवं १०
२. लघुपाराशरी श्लो० ७
३. एक समान विभक्ति एवं वचन होने के कारण।

(ii) इन दोनों श्लोकों में अन्तर केवल इतना है कि इतर भाव के स्वामी न होने या इतर भावेशों से सम्बन्ध न होने पर केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश परस्पर सम्बन्धित होकर विशेष फलदायक होते हैं। जबकि इतर भाव के स्वामी होने पर केवल दशमेश एवं नवमेश परस्पर सम्बद्ध होकर योगकारक होते हैं।

(iii) दोषों का विचार करते समय उनका तारतम्य जानने के लिए उनके बल का ध्यान रखना चाहिए। त्रिषडायाधीशों में लाभेश एवं त्रिकोणेशों में नवमेश सर्वाधिक बली होता है। इस प्रकार लाभेश सबसे बली त्रिषडायाधीश होने के कारण अधिकतम पापफल और नवमेश सबसे बली त्रिकोणेश होने के कारण अधिकतम शुभफल देता है। इस अधिकतम फलदायक नवमेश का व्याधिपति होने से अष्टमेश अधिकतम पाप फल देता है। इस प्रकार भावेशों में लाभेश एवं अष्टमेश दोनों अधिकतम पाप फलदायक है और इसलिए इनका सम्पर्क राजयोग को विघटित करता है।

(iv) उदाहरणार्थ – जैसे एक बलवान व्यक्ति रोगी होने पर रोगों पर नियन्त्रण कर अपने सब काम कर लेता है। किन्तु वह भयंकर रोग होने पर कुछ भी नहीं कर पाता। उसी प्रकार बलवान केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश, तृतीय, षष्ठ एवं केन्द्राधिपत्य जैसे सामान्य दोषदायक भावों के स्वामी होने पर आपसी सम्बन्ध के प्रभाववश योगकारक हो जाते हैं। किन्तु वे अष्टम एवं एकादश जैसे अधिक दोषदायक भावों के स्वामी होने पर योगजफल नहीं दे पाते।[१]

(iv) नवमेश एवं दशमेश की तालिका

किस लग्न में कौन-कौन से नवमेश-निर्दोष, सदोष या अधिकतम दोषयुक्त होते हैं? और वे आपसी सम्बन्ध होने पर योगजफल देते हैं या नहीं? इसकी जानकारी निम्नलिखित तालिका से ली जा सकती है-

---

१. लघुपाराशरी श्लो० २२

लग्न	नवमेश एवं दशमेश	निर्दोष/सदोष	योगजफल देते हैं या नहीं
मेष	नवमेश (द्वादशेश)गुरु	निर्दोष	गुरु+शनि
	दशमेश (एकादशेश) शनि	महादोषी	योगजफल नहीं देते
वृष	नवमेश-दशमेश-शनि	निर्दोष	योगकारक
मिथुन	नवमेश (अष्टमेश) शनि	दोषी	शनि+गुरु
	दशमेश (सप्तमेश) गुरु	सदोष	योगजफल नहीं देते
कर्क	नवमेश (षष्ठेश) गुरु	सदोष	गुरु+मंगल
	दशमेश (पंचमेश) मंगल	योगकारक	योगजफलदायक
सिंह	नवमेश (चतुर्थेश) मंगल	योगकारक	योगजफलदायक
	दशमेश (तृतीयेश) शुक्र	सदोष	
कन्या	नवमेश (द्वितीयेश) शुक्र	निर्दोष	योगजफलदायक
	दशमेश (लग्नेश) बुध	निर्दोष	
तुला	नवमेश (द्वादशेश) बुध	निर्दोष	बुध+चन्द्र
	दशमेश-चन्द्र	सदोष/निर्दोष	योगजफलदायक
वृश्चिक	नवमेश-चन्द्र	निर्दोष	चन्द्र+सूर्य
	दशमेश-सूर्य	निर्दोष	योगजफलदायक
धनु	नवमेश-सूर्य	निर्दोष	सूर्य+बुध
	दशमेश (सप्तमेश) बुध	सदोष	योगजफलदायक
मकर	नवमेश (षष्ठेश) बुध	सदोष	बुध+शुक्र
	दशमेश (पंचमेश) शुक्र	निर्दोष	योगजफलदायक

कुम्भ	नवमेश (चतुर्थेश) शुक्र	निर्दोष	शुक्र+मंगल
	दशमेश (तृतीयेश) मंगल	सदोष	योगजफलदायक
मीन	नवमेश (द्वितीयेश) मंगल	निर्दोष	मंगल+गुरु
	दशमेश (लग्नेश) गुरु	निर्दोष	योगजफलदायक

(v) सदोष योगकारक फल

इस प्रसंग में यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि सदोष एवं निर्दोष योगकारक का फल एक समान नहीं हो सकता। यद्यपि केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश का सम्बन्ध उनके त्रिषडायत्व एवं केन्द्राधिपत्य जैसे दोषों को पर्याप्त मात्रा में नियन्त्रित कर देता है। तथापि शेष का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य बच जाता है और वह योगजफल को निश्चित रूप से प्रभावित करता है।

इस विषय में पं. श्री रामयत्न ओझा का कहना है- "कि यदि त्रिकोणेश और केन्द्रेश स्वयं दु:स्थान के स्वामी हों या इनके योग में किसी दु:स्थान के स्वामी का सम्बन्ध हो तो किस हद तक शुभफल में कमी आयेगी? यह निर्णय इस प्रकार किया जा सकता है"[१]

भावेश	गुण	भावेश	गुण
(i) लग्नेश	+१	(ii) पंचमेश	+२
चतुर्थेश	+२	नवमेश	+४
सप्तमेश	+३		
दशमेश	+४		
(iii) तृतीयेश	−१	(iv) द्वितीयेश	−०
षष्ठेश	−२	अष्टमेश	−६
एकादश	−३	द्वादशेश	−०

१. देखिए–फलित विकास पृ० १०३

यहाँ शुभता का सूचक (+) चिह्न है और अशुभता का सूचक (-) चिह्न है। उदाहरणार्थ मान लीजिए कि मेष लग्न में गुरु+शनि के योग का मूल्यांकन करना है-

गुरु-नवमेश = + ४
गुरु-द्वादशेश = - ०
शनि-दशमेश = + ४
शनि-एकादशमेश = - ३

शेष = + ५ शुभफल

इसी प्रकार मिथुन में शनि+गुरु के योग का मूल्यांकन-

शनि-अष्टमेश = - ६
शनि-नवमेश = + ४
गुरु-सप्तमेश = + ३
गुरु-दशमेश = + ४

शेष = + ५ शुभफल

कर्क लग्न में गुरु+मंगल के योग का मूल्यांकन-

गुरु-षष्ठेश = -२
गुरु-नवमेश = + ४
मंगल-पंचमेश = + २
मंगल-दशमेश = + ४

शेष = + ८ शुभफल

सिंह लग्न में मंगल+शुक्र के योग का मूल्यांकन-

मंगल-चतुर्थेश = +२
मंगल-नवमेश = + ४
शुक्र-तृतीयेश = - १
शुक्र-दशमेश = + ४

शेष = + ९ शुभफल

कन्या लग्न में शुक्र+बुध के योग का मूल्यांकन-

शुक्र-द्वितीयेश	= - ०
शुक्र-नवमेश	= + ४
बुध-लग्नेश	= + १
शुक्र-दशमेश	= + ४
शेष	= + ९ शुभफल

इस रीति से मेषादि द्वादश लग्नों में नवमेश एवं दशमेश के सदोष या निर्दोष होने उनका मूल्यांकन किया जा सकता है। यहाँ बलवान केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश की शुभता का सूचकांक ४+४=८ आठ है। अतः जिन योगों में ८ या आठ से अधिक शुभता के अंक मिलें, उनका फल पूरा माना जा सकता है। किन्तु जिन योगों में शुभता के अंक आठ से कम मिलें, वहाँ उसी अनुपात में योगफल में हानि माननी चाहिए।

(vi) उदाहरण

कुण्डली संख्या २३

कुण्डली संख्या ३

कुण्डली संख्या २४

कुण्डली संख्या ९

कुण्डली संख्या २३ में नवमेश गुरु षष्ठेश होने से सदोष है और उसका दशमेश-पंचमेश मंगल के साथ युति सम्बन्ध है। अतः इस कुण्डली में मंगल एवं गुरु योगकारक हैं। यह कुण्डली भारत के पूर्व प्रधानमंत्री की है।

कुण्डली संख्या ३ एक मुख्यमंत्री की है, जिन्हें प्रधानमंत्री का पद प्रस्तावित किया गया है। किन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। इस कुण्डली में नवमेश शुक्र है और उसका दशमेश बुध से युति सम्बन्ध है जो केन्द्राधिपति है। इन दोनों का दूसरे केन्द्राधिपति गुरु तथा लाभेश चन्द्रमा से दृष्टि सम्बन्ध है। अतः इस कुण्डली में सदोष ग्रह अपनी आपसी सम्बन्ध होने से योगकारक है।

कुण्डली संख्या २४ एक पूर्व महाराजा की है जो लम्बे समय तक भारत सरकार में मंत्री रहे। इस कुण्डली में मंगल स्वयं कारक है उसका दशमेश शुक्र से दृष्टि सम्बन्ध है जो तृतीयेश होने से सदोष है। यहाँ भी मंगल एवं शुक्र योगकारक हैं।

कुण्डली संख्या ९ एक राजनैतिक दल के अध्यक्ष की है। इसमें नवमेश एवं द्वादशेश गुरु का दशमेश एवं एकादशेश शनि से दृष्टि सम्बन्ध है। यहाँ शनि का एकादशेश होना इस योग को निर्बल बना रहा है।

38. सुयोग

कारक ग्रहों की मूल संकल्पना का स्पष्ट रूप से समझने के लिए आवश्यक है कि उनके न्यूनतम एवं अधिकतम फल तथा उसके तारतम्य को भली भाँति जान लिया जाय। योग कारक की उत्तमता का तारतम्य उसके बल के आधार पर किया जाता है। जैसे अधिक शक्ति, सम्पत्ति एवं अधिकार प्राप्त व्यक्ति अधिकतम सुविधा एवं सफलता प्राप्त कर सकता है वैसे ही अधिकतम बलशाली ग्रह अधिकतम शुभफल देता है।

"प्रबलताश्चोत्तरोत्तरम्" के नियमानुसार केन्द्रेशों में दशमेश सबसे बलवान् केन्द्रेश होता है तथा वह मान, यश एवं राज्य का सूचक भी होता

है। उसका नवमेश या पंचमेश में से किसी के साथ सम्बन्ध हो तो यह योग सुयोग कहलाता है।[१]

(i) योगकारकता में तारतम्य

योगकारक ग्रहों का बलानुस्तर तारतम्य इस प्रकार होता है-

(i) चतुर्थेश-पंचमेश

(ii) सप्तमेश-पंचमेश

(iii) दशमेश-पंचमेश

(iv) लग्नेश-पंचमेश

(v) चतुर्थेश-नवमेश

(vi) सप्तमेश-नवमेश

(vii) दशमेश-नवमेश

(viii) लग्नेश-नवमेश

उक्त योगकारक ग्रह उत्तरोत्तर उत्तम फलदायक होते हैं।

(ii) मेष आदि लग्नों में चतुर्थेश-पंचमेशों की तालिका

लग्न	चतुर्थेश एवं पंचमेश	निर्दोष/सदोष	सम्बन्धित ग्रहों का परिणाम
मेष	चतुर्थेश-चन्द्र	केन्द्राधिपत्य	चन्द्र+सूर्य=योगकारक
	पंचमेश-सूर्य	निर्दोष	
वृष	चतुर्थेश सूर्य	निर्दोष	सूर्य+बुध=योगकारक
	पंचमेश-द्वितीयेश-बुध	निर्दोष	
मिथुन	चतुर्थेश-लग्नेश-बुध	निर्दोष	बुध+शुक्र=योगकारक
	पंचमेश-द्वादशेश-बुध	निर्दोष	

१. "त्रिकोणाधिपयोर्मध्ये सम्बन्धो येन केनचित्।
बलिनः केन्द्रनाथस्य भवेद्यदि सुयोगकृत।।" —लघुपाराशरी श्लो० १७

कर्क	चतुर्थेश एकादशेश-शुक्र	महादोष	
	पंचमेश-दशमेश-मंगल	स्वयं कारक	शुक्र+मंगल=योग भंग
सिंह	चतुर्थेश-नवमेश-मंगल	स्वयंकारक	
	पंचमेश-अष्टमेश-गुरु	महादोष	मंगल+शुक्र=योगभंग
कन्या	चतुर्थेश-सप्तमेश-गुरु	केन्द्राधिपत्य	गुरु+शनि=साधारणयोग
	पंचमेश-षष्ठेश-शनि	सदोष	
तुला	चतुर्थेश-पंचमेश-शनि	निर्दोष	स्वयं कारक
वृश्चिक	चतुर्थेश-तृतीयेश-शनि	सदोष	शनि+गुरु=साधारणयोग
	पंचमेश-द्वितीयेश-गुरु	निर्दोष	
धनु	चतुर्थेश-लग्नेश-गुरु	निर्दोष	
	पंचमेश-द्वादशेश-मंगल	निर्दोष	गुरु+मंगल=योगकारक
मकर	चतुर्थेश-एकादशेश-मंगल	महादोष	
	पंचमेश-दशमेश-शुक्र	स्वयंकारक	मंगल+शुक्र=योग भंग
कुम्भ	चतुर्थेश-नवमेश-शुक्र	स्वयंकारक	शुक्र+बुध=योगभंग
	पंचमेश-अष्टमेश-बुध	महादोष	
मीन	चतुर्थेश-सप्तमेश-बुध	केन्द्राधिपत्य	बुध+चन्द्र=साधारणयोग
	पंचमेश-चन्द्र	निर्दोष	

(iii) मेष आदि लग्नों में सप्तमेश-पंचमेशों की तालिका

लग्न	चतुर्थेश एवं पंचमेश	निर्दोष/सदोष	सम्बन्धित ग्रहों का परिणाम
मेष	सप्तमेश-द्वितीयेश-शुक्र	मारकेश	शुक्र+सूर्य=योगकारक
	पंचमेश-सूर्य	निर्दोष	

वृष	सप्तमेश-द्वादशेश-मंगल	मारकेश	मंगल+बुध=साधारणयोग
	पंचमेश-द्वितीयेश-बुध	निर्दोष	
मिथुन	सप्तमेश-दशमेश-गुरु	केन्द्राधिपत्य	गुरु+शुक्र=योगकारक
	पंचमेश-द्वादशेश-शुक्र	निर्दोष	
कर्क	सप्तमेश-अष्टमेश-शनि	महादोष	शनि+मंगल=योग भंग
	पंचमेश-दशमेश-मंगल	स्वयंकारक	
सिंह	सप्तमेश-षष्ठेश-शनि	सदोष	शनि+गुरु=योगभंग
	पंचमेश-अष्टमेश-गुरु	महादोष	
कन्या	सप्तमेश-चतुर्थेश-गुरु	केन्द्राधिपत्य	गुरु+शनि=साधारणयोग
	पंचमेश-षष्ठेश-शनि	सदोष	
तुला	सप्तमेश-द्वितीयेश-मंगल	मारक	मंगल+शनि=योगकारक
	पंचमेश-चतुर्थेश-शनि	स्वयंकारक	
वृश्चिक	सप्तमेश-द्वादशेश-शुक्र	मारक	शुक्र+गुरु=साधारण योग
	पंचमेश-द्वितीयेश-गुरु	निर्दोष	
धनु	सप्तमेश-दशमेश-बुध	केन्द्राधिपत्य	बुध+मंगल=साधरणयोग
	पंचमेश-द्वादशेश-मंगल	निर्दोष	
मकर	सप्तमेश-चन्द्र	केन्द्राधिपत्य	
	पंचमेश-दशमेश-शुक्र	स्वयंकारक	चन्द्र+शुक्र=योगकारक
कुम्भ	सप्तमेश-सूर्य	निर्दोष	सूर्य+बुध=योगभंग
	पंचमेश-अष्टमेश-बुध	महादोष	
मीन	सप्तमेश-चतुर्थेश-बुध	केन्द्राधिपत्य	बुध+चन्द्र=साधारणयोग

	पंचमेश-चन्द्र	निर्दोष	

(iv) मेष आदि लग्नों में दशमेश-पंचमेशों की तालिका

मेष	दशमेश-एकादशेश-शनि	महादोषशनि+सूर्य=योगभंग	
	पंचमेश-सूर्य	निर्दोष	
वृषभ	दशमेश-नवमेश-शनि	स्वयंकारक	शनि+बुध=उत्कृष्टयोग
	पंचमेश-द्वितीयेश-बुध	निर्दोष	
मिथुन	दशमेश-सप्तमेश-गुरु	केन्द्राधिपत्य	गुरु+शुक्र=योगकारक
	पंचमेश-द्वादशेश-शुक्र	निर्दोष	
कर्क	पंचमेश-दशमेश-मंगल	निर्दोष	स्वयंकारक
सिंह	दशमेश-तृतीयेश-शुक्र	सदोष	शुक्र+गुरु=योगभंग
	पंचमेश-अष्टमेश-गुरु	महादोष	
कन्या	दशमेश-लग्नेश-बुध	निर्दोष	बुध+शनि=साधारणयोग
	पंचमेश-षष्ठेश-शनि	सदोष	
तुला	दशमेश-चन्द्र-	निर्दोष/सदोष	चन्द्र+शनि=सुयोगकारक
	पंचमेश-चतुर्थेश-शनि	स्वयंकारक	
वृश्चिक	दशमेश-सूर्य	निर्दोष	सूर्य+गुरु=सुयोगकारक
	पंचमेश-द्वितीयेश-गुरु	निर्दोष	
धनु	दशमेश-सप्तमेश-बुध	केन्द्राधिपत्य	बुध+मंगल=सुयोगकारक
	पंचमेश-द्वादशेश-मंगल	निर्दोष	

मकर	दशमेश-पंचमेश-शुक्र	निर्दोष	
कुम्भ	दशमेश-तृतीयेश-मंगल	सदोष	मंगल+बुध=योगभंग
	पंचमेश-अष्टमेश-बुध	महादोष	
मीन	दशमेश-लग्नेश-गुरु	निर्दोष	
	गुरु+चन्द्र=सुयोगकारक	पंचमेश-चन्द्र	

(v) मेष आदि लग्नों में लग्नेश एवं पंचमेश की तालिका

लग्न	लग्न एवं पंचमेश	निर्दोष/सदोषपरिणाम	
मेष	लग्नेश-अष्टमेश-मंगल	महादोष (कारक प्रसंग में)	मंगल+सूर्य=योगभंग
	पंचमेश-सूर्य	निर्दोष	
वृष	लग्नेश-षष्ठेश-शुक्र	सदोष	शुक्र+बुध=साधारणयोग
	पंचमेश-द्वितीयेश-बुध	निर्दोष	
मिथुन	लग्नेश-चतुर्थेश-बुध	निर्दोष	बुध+शुक्र=योगकारक
	पंचमेश-द्वादशेश-शुक्र	निर्दोष	
कर्क	लग्नेश-चन्द्र	निर्दोष	चन्द्र+मंगल=सुयोगकारक
	पंचमेश-दशमेश-मंगल	स्वयंकारक	
सिंह	लग्नेश-सूर्य	निर्दोष	सूर्य+गुरु=योगभंग
	पंचमेश-अष्टमेश-गुरु	महादोष	
कन्या	लग्नेश-दशमेश-बुध	निर्दोष	बुध+शनि=साधारण योग
	पंचमेश-षष्ठेश-शनि	सदोष	
तुला	लग्नेश-अष्टमेश-शुक्र	महादोष (कारक प्रसंग में)	शुक्र+शनि =योगभंग

वृश्चिक	लग्नेश-षष्ठेश-मंगल	सदोष	मंगल + गुरु =साधारणयोग
	पंचमेश-द्वितीयेश-गुरु	निर्दोष	
धनु	लग्नेश-चतुर्थेश-गुरु	निर्दोष	मंगल+ गुरु =योगकारक
	पंचम-द्वादशेश-मंगल	निर्दोष	
मकर	लग्नेश-द्वितीयेश-शनि	निर्दोष	शनि+शुक्र=सुयोगकारक
	पंचमेश-दशमेश-शुक्र	स्वयंकारक	
कुम्भ	लग्नेश-द्वादशेश-शनि	निर्दोष	शनि+बुध=योगभंग
	पंचमेश-अष्टमेश-बुध	महादोष	
मीन	लग्नेश-दशमेश-गुरु	निर्दोष	
	पंचमेश-चन्द्र	निर्दोष	गुरु+चन्द्र=सुयोगकारक

(vi) मेष आदि लग्नों में चतुर्थेश एवं नवमेशों की तालिका-

मेष	चतुर्थेश-चन्द्र	निर्दोष	चन्द्र+गुरु=योगकारक
	नवमेश-द्वादशेश-गुरु	निर्दोष	
वृष	चतुर्थेश-सूर्य	निर्दोष	सूर्य+शनि=सुयोगकारक
	नवमेश-दशमेश-शनि	स्वयंकारक	
मिथुन	चतुर्थेश-लग्नेश-बुध	निर्दोष	बुध + शनि=योगभंग
	नवमेश-अष्टमेश-शनि	महादोष	
कर्क	चतुर्थेश-एकादशेश-शुक्र	महादोष	शुक्र+गुरु=योगभंग
	नवमेश-षष्ठेश-गुरु	सदोष	
सिंह	चतुर्थेश-नवमेश-मंगल	निर्दोष	स्वयं कारक
कन्या	चतुर्थेश-सप्तमेश-गुरु	केन्द्राधिपत्य	गुरु+शुक्र=योगकारक
	नवमेश-द्वितीयेश-शुक्र	निर्दोष	
तुला	चतुर्थेश-पंचमेश-शनि	स्वयंकारक	शनि+बुध=उत्कृष्ट योग
	नवमेश-द्वादशेश-बुध	निर्दोष	

वृश्चिक	चतुर्थेश-तृतीयेश-शनि	सदोष	शनि+चन्द्र=साधारणयोग
	नवमेश-चन्द	निर्दोष	
धनु	चतुर्थेश-लग्नेश-गुरु	निर्दोष	गुरु+सूर्य=योगकारक
	नवमेश-सूर्य	निर्दोष	
मकर	चतुर्थेश-एकादशेश-मंगल	महादोष	मंगल+बुध=योगभंग
	नवमेश-षष्ठेश-बुध	सदोष	
कुम्भ	चतुर्थेश-नवमेश-शुक्र	निर्दोष	स्वयंकारक
मीन	चतुर्थेश-सप्तमेश-बुध	केन्द्राधिपत्य	बुध+मंगल=साधारणयोग
	नवमेश-द्वितीयेश-मंगल	निर्दोष	

(vii) मेष आदि लग्नों में सप्तमेश एवं नवमेशों की तालिका

मेष	सप्तमेश एवं द्वितीयेश-शुक्र	मारक	शुक्र+गुरु=साधारणयोग
	नवमेश एवं द्वादशेश- गुरु	निर्दोष	
वृष	सप्तमेश-द्वादशेश-मंगल	निर्दोष	मंगल+शनि=सुयोगकारक
	नवमेश-दशमेश-शनि	स्वयं कारक	
मिथुन	सप्तमेश-दशमेश-गुरु	केन्द्राधिपत्य	गुरु+शनि=योगभंग
	नवमेश-अष्टमेश-शनि	महादोष	
कर्क	सप्तमेश-अष्टमेश-शनि	महादोष	शनि+गुरु=योगभंग
	नवमेश-षष्ठेश-गुरु	सदोष	
सिंह	सप्तमेश-षष्ठेश-शनि	सदोष	शनि+मंगल=साधारणयोग
	नवमेश-चतुर्थेश-मंगल	स्वयंकारक	
कन्या	सप्तमेश-चतुर्थेश-गुरु	केन्द्राधिपत्य	गुरु+शनि=साधारणयोग
	नवमेश-द्वितीयेश-शुक्र	निर्दोष	
तुला	सप्तमेश-द्वितीयेश-मंगल	निर्दोष	बुध+मंगल=योगकारक
	नवमेश-द्वादशेश-बुध	निर्दोष	

वृश्चिक	सप्तमेश-द्वादशेश-शुक्र	केन्द्राधिपत्य	शुक्र+चन्द्र=योगकारक
	नवमेश-चन्द्र	निर्दोष	
धनु	सप्तमेश-दशमेश-बुध	केन्द्राधिपत्य	बुध+सूर्य=सुयोगकारक
	नवमेश-सूर्य	निर्दोष	
मकर	सप्तमेश-चन्द्रमा	केन्द्राधिपत्य	चन्द्र+बुध=साधारणयोग
	नवमेश-षष्ठेश-बुध	सदोष	
कुम्भ	सप्तमेश-सूर्य	निर्दोष	सूर्य+बुध=योगकारक
	नवमेश-चतुर्थेश-शुक्र	स्वयंकारक	
मीन	सप्तमेश-चतुर्थेश-बुध	केन्द्राधिपत्य	बुध+मंगल=योगकारक
	नवमेश-द्वितीयेश-मंगल	निर्दोष	

मेषादि लग्नों में नवमेश एवं दशमेशों की तालिका अनुच्छेद (पअ) में दी जा चुकी है।

(viii) मेष आदि लग्नों में लग्नेश एवं नवमेशों की तालिका-

लग्न	लग्नेश एवं नवमेश	निर्दोष/सदोष	परिणाम
मेष	लग्नेश-अष्टमेश-मंगल	महादोष (कारक प्रसंग में)	मंगल+गुरु =योगभंग
	नवमेश-द्वादशेश-गुरु	निर्दोष	
वृष	लग्नेश-षष्ठेश-शुक्र	सदोष	शुक्र+शनि=योगकारक
	नवमेश-दशमेश-शनि	स्वयंकारक	
मिथुन	लग्नेश-चतुर्थेश-बुध	निर्दोष	बुध+शनि=योगभंग
	नवमेश-अष्टमेश-शनि	महादोष	
कर्क	लग्नेश-चन्द्र	निर्दोष	चन्द्र+गुरु=साधारणयोग
	नवमेश-षष्ठेश-गुरु	सदोष	
सिंह	लग्नेश-सूर्य	निर्दोष	सूर्य+मंगल
	नवमेश-चतुर्थेश-मंगल	निर्दोष	विशेषफलदायक

कन्या	लग्नेश-दशमेश-बुध	निर्दोष	
	नवमेश-द्वितीयेश-शुक्र	निर्दोष	बुध+शुक्र=सुयोगकारक
तुला	लग्नेश-अष्टमेश-शुक्र	महादोष (कारक प्रसंग में)	शुक्र+बुध=योगभंग
	नवमेश-द्वादशेश-बुध	निर्दोष	
वृश्चिक	लग्नेश-षष्ठेश-मंगल	सदोष	मंगल+चन्द्र=साधारणयोग
	नवमेश-चन्द्र	निर्दोष	
धनु	लग्नेश-चतुर्थेश-गुरु	निर्दोष	गुरू+सूर्य=योगकारक
	नवमेश-सूर्य	निर्दोष	
मकर	लग्नेश-द्वादशेश-शनि	निर्दोष	शनि+बुध=साधारणयोग
	नवमेश-षष्ठेश-बुध	सदोष	
कुम्भ	लग्नेश-द्वादशेश-शनि	निर्दोष	निर्दोष
	नवमेश-चतुर्थेश-शुक्र	स्वयंकारक	शनि+शुक्र=योगकारक
मीन	लग्नेश-दशमेश-गुरु	निर्दोष	मंगल+गुरु=योगकारक
	नवमेश-द्वितीयेश-मंगल	निर्दोष	

उदाहरण-

कुण्डली संख्या २५
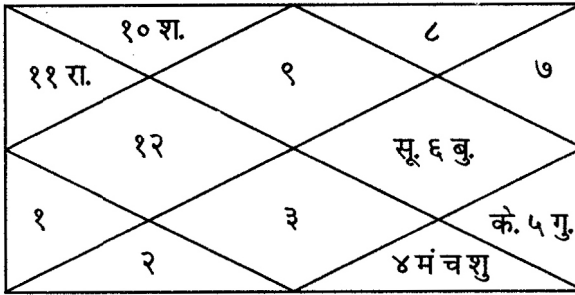
कुण्डली संख्या १६

कुण्डली संख्या २५ जो कि अमेरिका के पूर्व विदेश मंत्री की है, में दशमेश गुरु एवं पंचमेश शुक्र में परस्पर दृष्टि सम्बन्ध है। अतः दशमेश का पंचमेश से सम्बन्ध होना सुयोगकारक है।

कुण्डली सुख्या १६ जो कि भारतीय रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर एवं वित्तमंत्री की है, में सम्बन्ध बुध का नवमेश सूर्य के साथ युति सम्बन्ध सुयोग कारक है।

इसी प्रकार कुण्डली संख्या १ में दशमेश चन्द्रमा का चतुर्थेश एवं पंचमेश शनि से युति सम्बन्ध तथा कुण्डली संख्या २३ में दशमेश बुध का नवमेश सूर्य से युति सम्बन्ध सुयोग बनाता है।

39. परमयोग

महर्षि पराशर के शास्त्र की यह विशेषता है कि इसमें सर्वत्र 'धर्म' (गुण-धर्म) के भेद से 'धर्मों' में भेद माना गया है। इसलिए यह ही ग्रह या भाव के विविध गुण-धर्म क आधार पर उसमें भेद किया जाता है। यह भेद इसलिए भी आवश्यक है कि इसके बिना न तो फलादेश की जटिलताओं को सुलझाया जा सकता है और न ही विलक्षण गति से चलने वाले जीवन के घटनाचक्र की शास्त्र-सम्मत व्याख्या की जा सकती है।

जो ग्रह केन्द्रेश हैं वहीं त्रिकोणेश हो जाय तो एक ही ग्रह के केन्द्र एवं त्रिकोण का स्वामी हो जाता है। इस स्थिति में एक ही ग्रह में केन्द्रेशत्व एवं त्रिकोणेशत्व साथ-साथ एवं सदैव रहते हैं। जिस प्रकार केन्द्र एवं त्रिकोण के स्वामी साथ-साथ रहने से युति सम्बन्ध के प्रभाववश योगकारक हो जाते हैं। ठीक उसी प्रकार एक ही ग्रह के केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश होने पर उसमें केन्द्रेशत्व एवं त्रिकोणेशत्व की युति सदैव एवं निरन्तर रहती है। इसलिए ऐसा एक ही ग्रह योगकारक माना जाता है।[१]

ऐसे ग्रह की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वह कभी न तो 'इतर' भाव का स्वामी हो सकता है और न ही दोषयुक्त हो सकता है। इसलिए वह अनुच्छेद ३५ के अनुसार विशेष फलदायक कहलाता है। परिणामतः एक ही ग्रह के केन्द्रेश और त्रिकोणेश होने पर उसे शुद्ध तथा योगकारक एवं स्वयं कारक कहते हैं। 'इतर' भाव का स्वामी या दोषयुक्त न होने से उसे शुद्ध तथा केन्द्र एवं त्रिकोण का स्वामी होने से उसे स्वयं कारक कहते हैं। इस प्रकार वृष एवं तुला लग्न के शनि, कर्क एवं सिंह लग्न में मंगल तथा मकर एवं कुम्भ लग्न में शुक्र केन्द्र एवं त्रिकोण का स्वामी होने के कारण स्वयं योगकारक होते हैं।

इस स्वयं योगकारक ग्रह से अन्य त्रिकोणेश का सम्बन्ध हो जाय तो इससे अच्छा कौन सा योग हो सकता है?[२] तात्पर्य यह है कि योगकारक ग्रह स्वभावतः विशेष शुभ फलदायक होता है और उसका दूसरे शुभफलदायक त्रिकोणेश से सम्बन्ध हो जाय तो शुभ फलदायक उत्कर्ष पर पहुंच जाता है। अतः स्वतः योगकारक ग्रह के साथ दूसरे त्रिकोणेश का सम्बन्ध होना सर्वोत्तम राजयोग होता है।

---

१. देखिए-बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० १३

२. "केन्द्रत्रिकोणाधिपयोरेकत्त्वे योगकारिता।
अन्यत्रिकोणपतिना सम्बन्धो यदि किं परम्।।" —लघुपाराशरी श्लो० २०

निष्कर्ष

(i) एकत्व का अभिप्राय

लघुपाराशरी के कुछ टीकाकारों[१] ने "केन्द्र त्रिकोणाधिपयोरेकत्वे योगकारकौ" – यह पाठ मान कर इस श्लोक का यह अर्थ किया है कि केन्द्रेश का एक त्रिकोणेश से सम्बन्ध होना योगकारक है। उसका दूसरे त्रिकोणेश से सम्बन्ध हो तो क्या बात है?

किन्तु "केन्द्रत्रिकोणाधिपयोरेकत्वे" –इसका अर्थ– "य एवं केन्द्राधीश इति केन्द्रत्रिकोणाधिपयोरेकत्वम्"– अर्थात् जो ग्रह केन्द्रेश है वही त्रिकोणेश हो, तब केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश में एकता होती है। यहाँ 'योगकारकौ' यह द्विवचनान्त पाठ कुछ कठिनाइयों या भ्रान्ति उत्पन्न करता है। इसके स्थान पर 'योगकारिता' पाठ स्वीकार कर लिया जाय तो किसी प्रकार की कठिनाई या भ्रान्ति के लिए अवसर नहीं रहता। अतः 'केन्द्रत्रिकोणाधिपयोरेकत्वे योगकारिता' –यह पाठ मूलपाराशरी एवं लघुपाराशरी के अनुकूल है और इसका अर्थ– 'केन्द्र एवं त्रिकोण का स्वामी एक ग्रह होने पर वह योग कारक होता है।' बहु सम्मत है।

(ii) एक केन्द्रेश के त्रिकोणेश से सम्बन्ध होने पर वे योगकारक होते हैं और उनका अन्य त्रिकोणेश से सम्बन्ध हो तो वे श्रेष्ठतर फल देते हैं।

(iii) यह सर्वोत्तम योग, वृष, तुला, कर्क, सिंह, मकर एवं कुम्भ–इन छः लग्नों में बनता है। इनमें से कर्क लग्न में स्वतः योगकारक मंगल से गुरु का सम्बन्ध होना तथा सिंह लग्न में स्वतः योगकारक मंगल का गुरु से सम्बन्ध होना आवश्यक है। किन्तु कर्क लग्न में गुरु षष्ठेश तथा सिंह लग्न में गुरु अष्टमेश है।

---

१. (i) राजज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार)
(ii) विद्यारत्न श्री माधव प्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार)
(iii) श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराती टीकाकार)

इसी प्रकार मकर लग्न में स्वतः योगकारक शुक्र का बुध से सम्बन्ध हो तथा कुम्भ लग्न में स्वतः योगकारक शुक्र का बुध से सम्बन्ध होना अनिवार्य है। किन्तु मकर लग्न में बुध षष्ठेश तथा कुम्भ लग्न में वह अष्टमेश होता है। यहाँ यह स्वाभाविक शंका उत्पन्न होती है कि इस सर्वोत्तम योग में दूसरे त्रिकोणेश के षष्ठेश या अष्टमेश होने पर क्या वह योग सर्वोत्तम रहेगा? इस विषय में मूलपाराशरी एवं लघुपाराशरी का स्पष्ट मत यह लगता है कि इस योग में एक केन्द्रेश तथा दो त्रिकोणों के सम्बन्ध के कारण इतनी शुभता है कि दूसरे त्रिकोणेश का षष्ठेश या अष्टमेश होना उसे नष्ट नहीं कर सकता।

(iv) यदि एक केन्द्रेश एवं दो त्रिकोणेशों का सम्बन्ध सवोत्तम योग बनाता है तो क्या दो केन्द्रेश एवं एक त्रिकोणेश का सम्बन्ध एक केन्द्राधिपति के सम्बन्ध की अपेक्षा प्रबल नहीं होगा? और यदि वह केन्द्राधिपति लग्नेश हो तो वह योग अधिक प्रबल होना ही चाहिए जैसे मिथुन या कन्या लग्न में बुध का शुक्र के साथ सम्बन्ध तथा धनु या मीन लग्न में गुरु के साथ मंगल का सम्बन्ध।

(v) कारक ग्रहों में उत्तमता का तारतम्य

१. एक केन्द्रेश का एक त्रिकोणेश से सम्बन्ध

२. दो केन्द्रेशों का एक त्रिकोणेश से सम्बन्ध

३. एक केन्द्रेश का दो त्रिकोणेशों से सम्बन्ध

४. दो केन्द्रेशों का दो त्रिकोणेशों से सम्बन्ध

५. तीन केन्द्रेशों का दो त्रिकोणेशों से सम्बन्ध

६. चारों केन्द्रेशों का दो त्रिकोणेशों से सम्बन्ध

इस प्रकार यदि चारों केन्द्रेशों और दोनों त्रिकोणेशों का परस्पर सम्बन्ध हो तो यह पाराशर शास्त्र को कारकत्व योग का सबसे अनूठा एवं उत्तम उदाहरण होगा।

(vi) विविध लग्नों में स्वतः योगकारक एवं अन्य त्रिकोणेशों की तालिका इस प्रकार है-

लग्न	स्वतः योगकारक	अन्य त्रिकोणेश
वृष	शनि	बुध
कर्क	मंगल	गुरु
सिंह	मंगल	गुरु
तुला	शनि	बुध
मकर	शुक्र	बुध
कुम्भ	शुक्र	बुध

उदाहरण-

कुण्डली संख्या २२

कुण्डली संख्या २३

कुण्डली संख्या २२ में स्वतः योगकारक शनि का बुध के साथ युति सम्बन्ध परम योग बनता है। कुण्डली संख्या २३ में स्वतः योगकारक मंगल का नवमेश गुरु से युति तथा लग्नेश चन्द्रमा से दृष्टि सम्बन्ध है। यहाँ (लग्नेश एवं दशमेश) का दो त्रिकोणेशों (पंचमेश एवं नवमेश) के साथ सम्बन्ध और भी अच्छा योग बनाता है। यह कुण्डली एक ऐसे व्यक्ति की है जो साधारण किसान के परिवार में जन्म लेकर भारत का प्रधानमंत्री बना।

कुण्डली संख्या २६

कुण्डली संख्या २७

कुण्डली संख्या २८

कुण्डली संख्या २६ ऐसी महिला की है जो उच्च मध्यम वर्गीय परिवार में उत्पन्न होकर भारत के प्रधानमंत्री की पुत्रवधू और बाद में केन्द्रीय मंत्री बनीं। इनकी कुण्डली में स्वतः योगकारक मंगल का नवमेश गुरु के साथ दृष्टि सम्बन्ध है।

कुण्डली संख्या २७ एक ऐसे व्यक्ति ही है जो साधारण परिवार में जन्म लेकर केन्द्रीय मंत्री बना तथा अपने निर्वाचन क्षेत्र में कई बार रिकार्ड मतों से विजयी हुआ। इनकी कुण्डली में दो केन्द्रेश (लग्नेश एवं दशमेश) बुध का दो त्रिकोणेश शनि एवं शुक्र के साथ युति सम्बन्ध है।

कुण्डली संख्या २८ रूस की उस महान हस्ती की है जो साधारण परिवार में जन्म लेकर देश का प्रधान मंत्री बना और विश्व शान्ति के लिए नोबल-पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इनकी कुण्डली में तीन केन्द्रेश दशमेश, लग्नेश एवं चतुर्थेश का पंचमेश मंगल के साथ पारस्परिक सम्बन्ध है।

40. राहु एवं केतु का योगकारकत्व

अनुच्छेद ३३ के अनुसार क्रान्तिवृत एवं विमण्डलवृत अथवा पृथ्वी की कक्षा एवं चन्द्रमा की कक्षा के सम्पात बिन्दुओं को राहु एवं केतु कहते हैं। राहु एवं केतु का बिम्ब न होने के कारण इन्हें तमोग्रह या अन्ध ग्रह कहा जाता है। अन्धा व्यक्ति जैसे वातावरण या मार्ग पर चलता है

अथवा जैसे व्यक्ति के साथ रहता या चलता है वैसा हो जाता है। उसी प्रकार अन्ध ग्रह राहु एवं केतु भी जैसे स्थान में हों या जैसे ग्रह के साथ हों वैसा फल देते हैं।[१]

वस्तुतः श्लोक संख्या १३ में भी बतलाया गया है कि राहु एवं केतु जिस भाव में बैठे हों उस भाव का फल देते हैं। इसलिए केन्द्र में स्थित राहु एवं केतु केन्द्रेश जैसा और त्रिकोण में स्थित राहु या केतु त्रिकोणेश जैसा फल देता है। तात्पर्य यह है कि केन्द्र में स्थित राहु एवं केतु को केन्द्रेश तथा त्रिकोण में स्थित राहु या केतु को त्रिकोणेश माना जा सकता है। यदि केन्द्र में स्थित राहु या केतु का त्रिकोणेश से और त्रिकोण में स्थित राहु या केतु का केन्द्रेश से सम्बन्ध हो तो वे योगकारक हो जाते हैं।[२]

राहु एवं केतु की यह प्रमुख विशेषता है कि वह जैसे भाव में बैठे हो और जिस भावेश के साथ हो वैसा फल देते हैं। अतः केन्द्र में त्रिकोणेश के साथ स्थित राहु या केतु केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश जैसा तथा त्रिकोण में केन्द्रेश के साथ बैठा हुआ राहु या केतु त्रिकोणेश एवं केन्द्रेश जैसा फल देगा। अर्थात् केन्द्र या त्रिकोण में अन्यतर के साथ स्थित राहु या केतु केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश जैसा फल देते हैं। और जब केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश से सम्बन्ध होता है तो वे योगकारक हो जाते हैं। अतः इस स्थिति में राहु या केतु को योगकारक माना जाता है।

कुछ विद्वानों ने "नाथेनान्यतरेणापि" का अर्थ -"उस स्थान का स्वामी या अन्य भाव का स्वामी मानकर इस श्लोक का अर्थ किया है- "कि राहु-केतु यदि केन्द्र या त्रिकोण में हों और उस स्थान के स्वामी

---

१. "अन्धग्रहौ भगोलेऽपि यथा यादृग् ग्रहान्वितौ।
यादृक् स्थानगतौ वापि स्यातां तादृक् फलप्रदौ।।" -तत्त्वार्थ बोधिनी व्याख्या।

२. (i) लघुपाराशरी श्लो० २१
(ii) बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० १७
(iii) सुश्लोक शतक-राजयोगाध्याय श्लो० ११-१२

या अन्य भावेश से सम्बन्ध करते हों तो शुभ योगकारक होते हैं।[१] यदि इस अर्थ को मान लिया जाय तो केन्द्र में केन्द्रेश के साथ स्थित राहु-केतु और त्रिकोण में त्रिकोणेश के साथ स्थित राहु-केतु योगकारक हो जायेंगे। किन्तु केन्द्रेश का केन्द्रेश से या त्रिकोणेश का त्रिकोणेश से सम्बन्ध होने से योगकारकता नहीं होती है। इसी प्रकार केन्द्र या त्रिकोण में स्थित राहु या केतु का किसी अन्य भावेश से सम्बन्ध होने से भी योगकारकता नहीं हो सकती। राहु एवं केतु की योगकारकता तभी सम्भव है जब अन्य भावेश का अर्थ अन्यतर भावेश माना जाय। तभी केन्द्र में स्थित राहु या केतु का त्रिकोणेश से सम्बन्ध होने पर या त्रिकोण में स्थित राहु अथवा केतु का केन्द्रेश से सम्बन्ध होने पर वे योगकारक होते हैं। अतः श्लोक संख्या २१ में "नाथेनान्यतरेणापि" का अर्थ - "अन्यतर स्थान का स्वामी" मानना ही तर्कसंगत है। पाराशरीहोरा एवं सुश्लोक शतक आदि ग्रन्थों में भी यही अर्थ माना गया है।[२]

राहु एवं केतु के सम्बन्ध का विचार करते समय लघुपाराशरी के अधिकांश टीकाकारों ने इनका अन्य ग्रहों के साथ केवल एक युति सम्बन्ध ही माना है। क्योंकि इनकी राशि न होने के कारण इनका स्थान सम्बन्ध तथा अन्यतर स्थान सम्बन्ध सम्भव नहीं है। किन्तु इनका दृष्टि-सम्बन्ध मानने में न तो कोई कठिनाई है और न ही किसी प्रकार की शास्त्रीय आपत्ति है। अतः राहु एवं केतु के दो सम्बन्ध मानने चाहिए- १. युति सम्बन्ध एवं २. दृष्टि-सम्बन्ध। वृहत्पाराशर होरा शास्त्र में भी इन दोनों सम्बन्धों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है यथा-

"यदि केन्द्रे त्रिकोणे वा निवसेतां तमोग्रहौ।
नाथेनान्यतरेणाढ्यो दृष्टौ वा योगकारकौ।।"

---

१. देखिए- (i) लघुपाराशरी-हिन्दी टीका-चन्द्रशेखर शास्त्री श्लो० २१
(ii) लघुपाराशरी-गुजराती टीका-तुलजाशंकर धीरजराम पंडया श्लो० २१
(iii) जातक चन्द्रिका-ह० ने० काटवे पृ० २१

२. देखिए (i) बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० १३
(ii) सुश्लोक शतक-राजयोगाध्याय श्लो० ११-१२

इस प्रकार श्लोक संख्या २१ का फलितार्थ है-"यदि राहु या केतु या त्रिकोण में स्थित हो तो त्रिकोणेश या केन्द्रेश से युति या दृष्टि सम्बन्ध होने पर वे योगकारक होते हैं।"[१]

इस विषय में एक और बात ध्यान देने योग्य है कि यदि राहु या केतु में से एक केन्द्र में स्थित हो तो दूसरा भी केन्द्र में ही होगा। किन्तु यदि इन दोनों में से एक त्रिकोण में हो तो दूसरा त्रिकोण में नहीं होगा। उदाहरणार्थ यदि राहु पंचम में स्थित हो तो केतु एकादश में और यदि वह नवम में बैठा हो तो केतु तृतीय भाव में होगा। इस स्थिति में केन्द्र में स्थित राहु या केतु का त्रिकोणेश से सम्बन्ध उत्तम है। क्योंकि त्रिकोण में स्थित राहु या केतु का केन्द्रेश से सम्बन्ध - तृतीय या एकादश में स्थित केतु या राहु की दृष्टि के प्रभाववश योग को दूषित करता है। अतः केन्द्र में स्थित राहु या केतु के योग से त्रिकोण में स्थित राहु या केतु का योग न्यूनता का द्योतक है।

राहु एवं केतु के प्रसंग में एक दूसरी बात यह है कि यदि इनका योगकारक ग्रहों से या स्वतः योगकारक ग्रह से सम्बन्ध हो तो परिणाम क्या होगा? इस प्रश्न का उत्तर अनुच्छेद ३३ के अनुसार साफ है कि राहु एवं केतु उक्त दोनों परिस्थितियों में योगकारक होंगे। हाँ केन्द्र या त्रिकोण में स्थित राहु एवं केतु की योगकारकता का तारतम्य इस प्रकार रहेगा-

१. योगकारक ग्रहों के साथ राहु एवं केतु का सम्बन्ध।

२. स्वतः योगकारक ग्रह के साथ राहु एवं केतु का सम्बन्ध।

३. केन्द्र में स्थित राहु एवं केतु के साथ त्रिकोणेश का सम्बन्ध।

४. त्रिकोण में स्थित राहु एवं केतु के साथ केन्द्रेश का सम्बन्ध।

---

१. "यदि केन्द्रे त्रिकोणे वा निवसेतां तमोग्रहौ।
नाथेनान्यतरेणापि सम्बन्धाद् योगकारकौ।।"

उदाहरण

कुण्डली संख्या २९

कुण्डली संख्या १६

कुण्डली संख्या २९ में दशम स्थान में स्थित राहु का पंचमेश चन्द्रमा से युति सम्बन्ध तथा केन्द्रेश बुध से दृष्टि सम्बन्ध है। अतः इस कुण्डली में राहु-केतु योगकारक हैं।

कुण्डली संख्या १६ में नवम स्थान में स्थित केतु का लग्नेश-चतुर्थेश गुरु से युति सम्बन्ध है। अतः केतु योगकारक है। किन्तु तृतीय स्थान में स्थित राहु योगकारक नहीं है।

वस्तुतः केन्द्र में स्थित राहु-केतु का त्रिकोणेश से सम्बन्ध होने से राहु एवं केतु दोनों योगकारक होते हैं। जबकि त्रिकोण में स्थित राहु या

केतु का केन्द्रेश से सम्बन्ध होने से उनमें से एक जो त्रिकोण में स्थित हो वही योगकारक होता है।

कुण्डली संख्या ३०
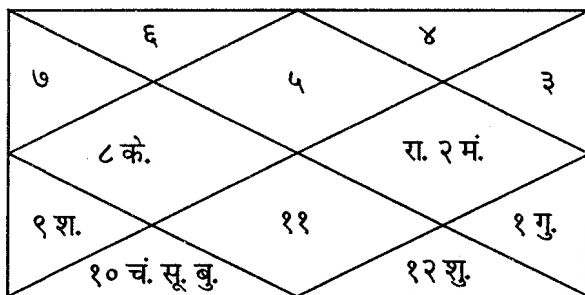
कुण्डली संख्या ३१
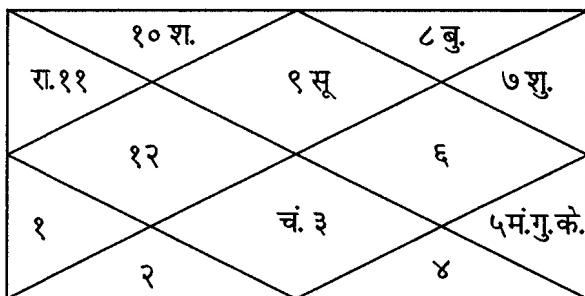
कुण्डली संख्या ३० में दशम स्थान में स्थित राहु का स्वतः योगकारक मंगल के साथ सम्बन्ध है। अतः यहाँ राहु का कारकत्व त्रिकोणेश के सम्बन्ध से अच्छा है।

कुण्डली संख्या ३१ में नवम स्थान में स्थित केतु का योगकारक ग्रहों-गुरु एवं मंगल के साथ युति सम्बन्ध है। अतः यह योग उत्तम है।

41. योगभंग

प्रत्येक पदार्थ या तत्त्व जिसकी उत्पत्ति होती है उसका नाश भी

होता है। उसी प्रकार योगकारक ग्रह कुछ भावों के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है और कुछ भावों के सम्बन्ध से नष्ट हो जाता है। कारक ग्रह के उत्पादक भाव हैं- केन्द्र एवं त्रिकोण तथा उत्पत्ति का हेतु है इनका पारस्परिक सम्बन्ध। कारकत्व को नष्ट करने वाले भाव हैं- अष्टम एवं एकादश। तथा इसका हेतु है- इनका योगकारक से सम्बन्ध। इस प्रकार यदि नवमेश कदाचित् अष्टमेश एवं एकादशेश हों तो उनका सम्बन्ध होने पर योगजफल नहीं मिलता।[१]

कुण्डली में लाभेश प्रबलतम पापी तथा भाग्येश प्रबलतम शुभ ग्रह होता है।[२] भाग्यभाव का व्ययाधीश होने के कारण अष्टमेश भी प्रबलतम पापी माना जाता है। इस प्रकार द्वादश भावों में अष्टम एवं एकादश-ये दोनों भाव अधिकतम पापफल दायक होते हैं। इसलिए योगकारक ग्रह जब इन भावों के स्वामी होते हैं तो वे आपसी सम्बन्ध होने पर भी योगज फल नहीं दे पाते।

किसी भी कुण्डली में नवमेश अष्टमेश तथा दशमेश लाभेश हो नहीं सकता। केवल मिथुन लग्न में शनि अष्टमेश एवं नवमेश होता है तथा मेष लग्न में शनि दशमेश एवं लाभेश होता है। इस प्रकार नवमेश एवं दशमेश की अष्टमेश एवं लाभेश होने की संभावना केवल उक्त दो लग्नों में ही दिखलाई पड़ती है। यदि इस प्रसंग में नवमेश एवं दशमेश में से किसी एक के अष्टमेश या लाभेश होने पर उनके सम्बन्ध से योगभंग बतलाना ही लघुपाराशरीकार को अभिप्रेत होता तो वे "मेष एवं मिथुन लग्न में केवल शनि के सम्बन्ध से योग भंग होता है" इतना ही कहते जैसा कि सुश्लोक शतक में कहा गया है।[३] किन्तु यहाँ ऐसा नहीं कहा गया। वस्तुतः यहाँ 'धर्म-कर्म' पद 'त्रिकोण-केन्द्र' का उपलक्षण है।

---

१. "धर्मकर्माधिनेतारौ रन्ध्रलाभाधिपौ यदि।
तयोः सम्बन्धमात्रेण न योगं लभते नरः।।" —लघुपाराशरी श्लो० २२

२. "प्रबलश्चोत्तरोत्तरम्" लघुपाराशरी श्लो०, बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० ५

३. "युग्मे लग्नेऽथवा मेषे राज्यभंगाय भानुजः
सुश्लोक शतक—राजयोगाध्याय श्लो० १३"

तथा लघुपाराशरीकार का अभिप्राय यह है कि "केन्द्रेश या त्रिकोणेश में से कोई एक अष्टमेश या लाभेश हो तो उनका सम्बन्ध होने पर योगजफल नहीं मिलता।" वृहत्पाराशर होराशास्त्र में भी यही बात बतलायी गयी है।[१]

यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि त्रिकोणेश अष्टमेश तो हो सकता है किन्तु वह लाभेश नहीं हो सकता। जबकि केन्द्रेश अष्टमेश भी हो सकता है और लाभेश भी। अतः श्लोक संख्या २२ में "धर्मकर्माधिनेतारौ" का "रन्ध्रलाभाधिपौ" के साथ-साथ यथा संख्य अन्वय नहीं है। तात्पर्य यह है कि जो त्रिकोणेश अष्टमेश हो, अथवा जो केन्द्रेश अष्टमेश या लाभेश हो उनके सम्बन्ध से योगजफल नहीं मिलता।

इस प्रसंग में एक और बात स्मरणीय है कि यहाँ "सम्बन्धमात्रेण" इस पद में 'मात्र' शब्द का अर्थ यह है कि जो त्रिकोणेश अष्टमेश हो अथवा जो केन्द्रेश अष्टमेश या लाभेश हो- केवल ऐसे ही केन्द्रेश या त्रिकोणेश से सम्बन्ध होने पर राजयोग का भंग होता है अन्य के साथ सम्बन्ध होने पर नहीं।

लघुपाराशरी के कुछ टीकाकारों ने इस श्लोक का अभिप्राय यह माना है कि जो केन्द्रेश या त्रिकोणेश त्रिषडायाधीश हो, उनके साथ सम्बन्ध होने पर योगजफल नहीं मिलता।[२] उनका तर्क है कि त्रिषडाय आदि भाव 'इतरभाव' हैं और इतर भावेशों से सम्बन्ध न होने पर ही केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश आपसी सम्बन्ध से योगकारक होते हैं। अतः केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश में से कोई एक त्रिषडाय आदि का स्वामी हो तो प्रायः योगभंग हो जाता है। किन्तु यह तर्क लघुपाराशरी के अनुकूल नहीं है। क्योंकि श्लोक संख्या १५ में दोषयुक्त केन्द्रेश एवं त्रिकोणेशों को भी सम्बन्ध के प्रभाव से योगकारक माना गया है।

वस्तुतः इस विषय में कोई निर्णय करने से पूर्व 'इतर भावों' का उनके गुण-धर्मो के आधार पर विचार कर लेना आवश्यक है। यहाँ केन्द्र

---

१. देखिए-बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० १५

२. देखिए-तत्त्वार्थप्रकाशिका टीका- पं० श्री सीताराम झा पृ० ५३

एवं त्रिकोण को छोड़कर शेष भावों को इतर भाव कहा जाता है। ये भाव हैं-द्विर्द्वादश, त्रिषडाय एवं अष्टम। इनमें से द्विर्द्वादश भाव सम होते हैं और कभी-कभी उनके स्वामी स्थान्तर के गुणधर्मानुसार केन्द्रेश या त्रिकोणेश जैसा फल भी देते हैं। तृतीय एवं षष्ठ भाव पापफलप्रद हैं, लाभ स्थान इन दोनों से अधिक पापफलदायक है तथा अष्टम स्थान इनसे भी अधिक पाप फलदायक माना जाता है। इस प्रकार अष्टमेश एवं लाभेश अधिकतम पापी, तृतीयेश एवं षष्ठेश उनसे कम पापी और द्विर्द्वादशेश पापी नहीं होते हैं। जो ग्रह अधिकतम पापी होता है वही योग को नष्ट कर सकता है। सामान्य पापी या पापरहित ग्रह नहीं। क्योंकि एक वस्तु की सत्ता को समाप्त कर अन्य की स्थापना के लिए ग्रह का प्रबल होना अनिवार्य है। सामान्य पापी, सम या शुभ ग्रह ऐसा कार्य नहीं कर सकता। अतः राजयोग का भंग करने के लिए अष्टमेश या लाभेश जैसा अधिकतम पापी होना आवश्यक है इसीलिए ग्रन्थकार ने मूल श्लोक में "रन्ध्रलाभाधिपौ" -यह विशेषण प्रयुक्त किया है।

कुछ अन्य व्याख्याकारों ने प्रबलतम पाप स्थान का स्वामी होने के कारण अष्टमेश एवं लाभेश में योगकारकता को भंग करने की संभावना को देखकर कहा है कि- "यहाँ हमारे विचार से तात्पर्य होना चाहिए कि नवमेश और दशमेश का अष्टमेश और लाभेश से सम्बन्ध होने पर राजयोग भंग होता है।[१] किन्तु यदि लघुपाराशरीकार को अष्टमेश या लाभेश का कारक ग्रहों के साथ सम्बन्ध ही कारकत्व को भंग करने वाला बतलाना होता तो वे "रन्ध्रलाभाधिपौ यदि" पाठ के स्थान पर "रन्ध्रलाभाधिपौ च यौ" ऐसा पाठ रखते। वस्तुतः यहाँ केन्द्रेश या त्रिकोणेश में से किसी एक का अष्टमेश या लाभेश होना ही आचार्य को अभिप्रेत है। इसीलिए उन्होंने उक्त पाठ मूल श्लोक में रखा। परिणामतः केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश के साथ अष्टमेश या लाभेश का सम्बन्ध होने से राजयोग भंग नहीं होता।

---

१. देखिए-जातकचन्द्रिका टीका ह० ने० काटवे पृ० २१

कारण यह है कि जब केन्द्रेश या त्रिकोणेश में से कोई एक अष्टमेश या लाभेश होता है तो उसमें योग उत्पन्न करने की क्षमता ही नहीं होती इसलिए ऐसे अक्षम ग्रह से सम्बन्ध होने पर भी योगजफल नहीं मिलता। वास्तविकता यह है कि केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश आपसी सम्बन्ध से स्वतः योगकारक हो जातें हैं और वे अष्टमेश या लाभेश होने पर स्वतः योगोत्पादन में अक्षम हो जाते हैं। केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश के अलावा इतर ग्रहों का सम्बन्ध न तो योग का उत्पन्न करता है और न ही नष्ट करता है। इतर ग्रहों का सम्बन्ध कारक ग्रहों के योगज फल में ह्रास या वृद्धि मात्र करता है।

इस विषय में एक ध्यान देने योग्य बात यह है कि केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश में से कोई एक अष्टमेश या लाभेश हो तो श्लोक संख्या २२ के अनुसार योगभंग होता है– कदाचित् उनका अन्य केन्द्रेश या त्रिकोणेश से भी सम्बन्ध हो तो क्या यह योग भी निष्फल हो जायेगा? क्या एक अकेला अष्टमेश या एकादशेश एक योग का भंग कर सकता है या दो तीन या अधिक कारक ग्रहों को निष्फल बना सकता है। वस्तुतः इस प्रसंग में अष्टमेश या लाभेश में इतना ही सामर्थ्य माना जा सकता है कि वह जिस किसी एक केन्द्रेश या त्रिकोणेश से सम्बन्ध करते हैं। वहां योग के उत्पादन में अक्षम होने के कारण योग कारकता को पैदा नहीं कर सकते। किन्तु यदि अन्य केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश के सम्बन्धवशात् योगकारिता उत्पन्न होती है तो वे उसके फल की मात्रा को घटा सकते हैं न कि दूसरे या तीसरे योग को भंग कर सकते हैं।

कारक ग्रहों के योगज फल में उत्तरोत्तर ह्रास क्रम से तारतम्य इस प्रकार होता है–

१. परम योग। सुयोग कारक
२. विशेष फलदायक
३. सदोष–योगकारक
४. सामान्य योगकारक
५. निष्फल योगकारक

(i) मेष आदि लग्नों में योग भंग कारकों की तालिका-

लग्न	योगभंग कारक
मेष	लग्नेश-अष्टमेश-मंगल दशमेश-लाभेश-शनि
वृष	X X
मिथुन	नवमेश-अष्टमेश-शनि
कर्क	चतुर्थेश-एकादशेश-शुक्र सप्तम-अष्टमेश-शनि
सिंह	पंचमेश-अष्टमेश-शनि
लग्न	**योगभंग कारक**
कन्या	X X
तुला	लग्नेश-अष्टमेश-शुक्र
वृश्चिक	X X
धनु	X X
मकर	चतुर्थेश-एकादश-मंगल
कुम्भ	X X
मीन	X X

उदाहरण-

कुण्डली संख्या ९

कुण्डली संख्या ३२

कुण्डली संख्या ९ में नवमेश गुरु एवं दशमेश एवं एकादशेश शनि के साथ दृष्टि-सम्बन्ध है। किन्तु शनि लाभेश है। अतः यह योग निष्फल है।

कुण्डली संख्या ३२ में स्वतः योगकारक मंगल का चतुर्थेश एवं एकादशेश शुक्र से युति सम्बन्ध है। अतः यह योग निष्फल है। किन्तु इस कुण्डली में लग्नेश चन्द्र का नवमेश (सदोष) गुरु से युति सम्बन्ध है। अतः चन्द्र एवं गुरु योगकारक है।

42. योगकारक का फल-प्राप्तिकाल

लघुपाराशरी के योगाध्याय के श्लोक संख्या १४-१७ तथा २०-२१ इन छः श्लोकों में योगकारक ग्रह का लक्षण एवं उदाहरण की विस्तार से विवेचना की गयी है। इस प्रसंग में यह स्वाभाविक प्रश्न है कि योगकारक ग्रहों का फल कब और कैसे मिलेगा? इन प्रश्न का उत्तर योगाध्याय के श्लोक संख्या १८-१९ तथा दशाध्याय के श्लोक संख्या ३३-३६ में दिया गया है।

इस अनुच्छेद में श्लोक संख्या १८-१९ के अनुसार[१] योगकारक ग्रहों के फलप्राप्ति के समय का विचार किया जा सकता है।

---

१. "दशास्वपि भवेद्योगः प्रायशो योगकारिणोः।
दशाद्वयीमध्यगतस्तदयुक् शुभकारिणाम्।।
योगकारक सम्बन्धात्पापिनोऽपि ग्रहाः स्वतः।
तत्तद् भुकत्यनुसारेण द्विशेयुर्योगजं फलम्।।" —लघुपाराशरी श्लो० १८-१९

जैसे सभी ग्रहों का फल उनकी दशा में मिलता है उसी प्रकार योगकारक ग्रहों का फल उनकी महादशा में मिलेगा। यह जान लेने से ठीक-ठीक फलादेश नहीं किया जा सकता। क्योंकि ग्रहों की दशाएं वर्षों-वर्षों तक चलती हैं। अतः फल प्राप्ति का ठीक-ठीक समय निर्धारित करने के लिए अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर दशा का आश्रय लिया जाता है। इस विषय में महर्षि पराशर का स्पष्ट मत है कि कोई भी ग्रह अपनी दशा में अपनी ही अन्तर्दशा के समय में अपना आत्मभावानुरूपी शुभ या अशुभफल नहीं देता। अपितु वह अपनी दशा में अपने सम्बन्धी या सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा में अपना फल देता है।[१]

दशाफल के इस सिद्धांत के अनुसार योगकारक ग्रहों के फल की प्राप्ति का समय निर्धारित किया जा सकता है यथा- जब योगकारक ग्रहों में से एक की दशा में दूसरे की अन्तर्दशा आती है तब योगज-फल मिलता है। अथवा जब योगकारक ग्रह की दशा में उससे सम्बन्ध न रखने वाले किसी शुभकारक ग्रह की अन्तर्दशा आती है तब भी योगजफल मिलता है। क्योंकि शुभकारक योगजकारक ग्रह का सधर्मी होता है।

कुछ विद्वान् यहाँ 'शुभकारिन्' का अर्थ त्रिकोणेश मानते हैं।[२] यद्यपि त्रिकोणेश शुभफल ही देता है तथापि शुभफलदायक होने के कारण 'शुभकारिन्' का अर्थ केवल त्रिकोणेश नहीं माना जा सकता। क्योंकि लघुपाराशरी के संज्ञाध्याय में त्रिकोणेश के अलावा लग्नेश तथा केन्द्र-त्रिकोण दोनों के स्वामी क्रूर ग्रह को भी शुभफलदायक माना गया है।[३] अतः इस प्रसंग में 'शुभकारिन्' का अर्थ त्रिकोणेश, लग्नेश-अष्टमेश तथा केन्द्रत्रिकोण दोनों का स्वामी क्रूर ग्रह मानना उचित है। ये सभी ग्रह शुभफलदायक होते हैं और शुभफलदायक होने के नाते योगकारक ग्रह के सधर्मी कहलाते हैं। क्योंकि योगकारक ग्रह भी शुभफलदायक होता है। इसलिए योगकारक ग्रह की दशा में जब उससे सम्बन्ध रखने वाले

---

१. देखिए–लघुपाराशरी श्लो० २९-३०

२. देखिए–लघुपाराशरी भाष्य–दीवान रामचन्द्र कपूर पृ० ५८

३. देखिए–लघुपाराशरी श्लो० ८ एवं १२

शुभ कारक ग्रह की अन्तर्दशा आती है तब योगज फल मिलता है। वस्तुतः योगकारक ग्रह का अन्य योगकारक सम्बन्धी होता है तथा शुभकारक ग्रह सधर्मी होता है। इसलिए इनकी अन्तर्दशा में योगकारक ग्रह अपना योगज फल देता है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि योगकारक ग्रह से सम्बन्ध न रखने वाले किसी शुभकारक ग्रह की दशा में किसी योगकारक ग्रह की अन्तर्दशा आने पर भी योगज फल मिलता है।

ग्रहों की अन्तर्दशाएं भी काफी लम्बे समय तक चलती हैं। इन अन्तर्दशाओं के समय में योगज फल कब मिलेगा?- यह जानने के लिए प्रत्यन्तरदशा का आश्रय लिया जाता है। यथा-जब योगकारक ग्रहों में से एक की महादशा में दूसरे की अन्तर्दशा तथा उनसे सम्बन्ध न रखने वाले किसी शुभकारक की प्रत्यन्तर दशा आती है तब योगजफल मिलता है। अथवा योगकारक ग्रहों से सम्बन्ध न रखने वाले किसी शुभकारी ग्रह की महादशा में जब एक योगकारक की अन्तर्दशा तथा दूसरे की प्रत्यन्तर दशा आती है तब भी योगजफल मिलता है। यथोक्तम्

"योगकारकयोः कार्य स्वदशासु तथैव हि।
वर्धयन्ति शुभा योगं सम्बन्धरहिता अपि।।"

विचारणीय बिन्दु

(i) ग्रहों के दशाफल का विचार मुख्यरूप से निम्नलिखित छः बातों पर आधारित होता है- १. गुणज, २. अनुगुणज, ३. योगज, ४. सहायज, ५. दृष्टिज एवं ६. मितज। ग्रह के स्वाभाविक (अपने भाव के प्रतिनिधित्व के अनुसार) फल को गुणजफल कहते हैं। अपने अन्यभाव के प्रतिनिधित्व के अनुसार, अन्य ग्रहों के साहचर्य के कारण तथा भाव में स्थितिवश मिलने वाला फल अनुगुणज कहलाता है। आपस में सम्बन्ध करने वाले केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश का फल योगज कहा जाता है। एक जैसा फल देने वाले सधर्मी ग्रहों का फल सहायज कहलाता है। परस्पर एक-दूसरे को देखने वाले ग्रहों का फल दृष्टिज कहा जाता है और भाव/राशि में स्थिति, बल एवं अन्य ग्रहों से युति का फल मितज फल

कहलाता है। ग्रहों का दशाफल निर्धारित करते समय इन सभी आधारों का विचार कर लेना चाहिए।

(ii) अन्तर्दशा का फल निर्धारित करने के मुख्य आधार आठ माने जाते हैं- १. सम्बन्धित सधर्मी, २. सम्बन्धित विरुद्धधर्मी, ३. सम्बन्धित उभयधर्मी, ४. सम्बन्धित अनुभयधर्मी, ५. असम्बन्धित सधर्मी, ६. असम्बन्धित विरुद्धधर्मी, ७. असम्बन्धित उभयधर्मी तथा ८. असम्बन्धित अनुभयधर्मी। इनमें से प्रथम पाँच ग्रहों की अन्तर्दशा में दशाधीश का आत्मभावानुरूपी फल एक निश्चित तारतम्य के अनुसार मिलता है। शेष तीनों ग्रहों का फल श्लोक संख्या ३१ के अनुसार निर्धारित किया जाता है।

(iii) इनमें तारतम्य इस प्रकार है- सम्बन्धित सधर्मी का फल सर्वाधिक, सम्बन्धित अनुभय धर्मी का उससे कम, सम्बन्धित उभयधर्मी का उससे कम, तथा सम्बन्धित विरुद्धधर्मी का फल सबसे कम होता है। इसी प्रकार असम्बन्धित ग्रह का फल भी जानना चाहिए।

उदाहरण-

कुण्डली संख्या ३

कुण्डली संख्या २

कुण्डली संख्या ३ में बुध एवं शुक्र योगकारक ग्रह हैं अतः बुध की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा के समय में इनको मुख्यमंत्री पद मिला।

कुण्डली संख्या २ में शुभकारक गुरु का योगकारक ग्रहों से सम्बन्ध नहीं है। अतः इस गुरु की दशा में स्वतः योगकारक मंगल की अन्तर्दशा में इनको भारत का विदेश मंत्री बनाया गया।

(iv) मेष आदि लग्नों में शुभकारक ग्रहों की तालिका-

लग्न	शुभकारी ग्रह	
मेष	i.	लग्नेश (अष्टमेश)-मंगल
	ii.	पंचमेश-सूर्य
	iii.	नवमेश (द्वादशेश)-गुरु
वृषभ	i.	लग्नेश- (षष्ठेश)-शुक्र
	ii.	पंचमेश (द्वितीयेश)-बुध
	iii.	नवमेश-दशमेश-शनि
मिथुन	i.	लग्नेश (चतुर्थेश)-बुध
	ii.	पंचमेश (द्वादशेश)-शुक्र
कर्क	i.	लग्नेश-चन्द्र

	ii.	पंचमेश–दशमेश–मंगल
	iii.	नवमेश (षष्ठेश)–गुरु
सिंह	i.	लग्नेश–सूर्य
	ii.	नवमेश–चतुर्थेश–मंगल
कन्या	i.	लग्नेश–दशमेश–बुध
	ii.	पंचमेश (षष्ठेश)–शनि
	iii.	नवमेश (द्वितीयेश)–शुक्र
तुला	i.	लग्नेश– (अष्टमेश)–शुक्र
	ii.	पंचमेश–चतुर्थेश–शनि
	iii.	नवमेश (द्वादशेश)–बुध
वृश्चिक	i.	लग्नेश (षष्ठेश)–मंगल
	ii.	पंचमेश (द्वितीयेश)–गुरु
	iii.	नवमेश–चन्द्र
धनु	i.	लग्नेश–चतुर्थेश–गुरु
	ii.	पंचमेश (द्वादशेश)–मंगल
	iii.	नवमेश–सूर्य
मकर	i.	लग्नेश (द्वितीयेश)–शनि
	ii.	पंचमेश–दशमेश–शुक्र
	iii.	नवमेश (षष्ठेश)–बुध
कुम्भ	i.	लग्नेश (व्ययेश)–शनि
	ii.	नवमेश–चतुर्थेश–शुक्र
मीन	i.	लग्नेश–दशमेश–गुरु
	ii.	पंचमेश–चन्द्र
	iii.	नवमेश (द्वितीयेश)–मंगल

43. योगकारक के सम्बन्धी पापी की अन्तर्दशा में योगजफल

पिछले अनुच्छेद में बतलाया गया है कि दशाफल की जानकारी के लिए ग्रह के स्वाभाविक या आत्मभावानुरूप फल का निर्धारण गुणज आदि छः आधारों पर तथा अन्तर्दशा के फल का निर्धारण सम्बन्धित सधर्मी आदि आठ आधारों पर किया जाता है। योगकारक ग्रह एक ऐसा पारसमणि है कि जिससे सम्बन्ध या सम्पर्क से पापी ग्रह भी योगज फल देता है। जैसे पारस के सम्पर्क से लोहा सोना बन जाता है वैसे ही योगकारक से सम्बन्ध होने पर पापी ग्रह भी योगजफलदायक हो जाता है। इस विषय में लघुपाराशरीकार का कथन है कि योगकारक ग्रहों के सम्बन्ध से स्वतः पापीग्रह भी योगकारक ग्रहों की दशा तथा अपनी अन्तर्दशा में योगजफल देते हैं।[१]

लघुपाराशरी के अनुसार त्रिषडायेश, मारकेश एवं वह अष्टमेश-जो लग्नेश न हों-पापी ग्रह होते हैं। ये पापीग्रह भी दो प्रकार के होते हैं-

१. जिनकी दूसरी राशि पाप स्थान में हो और २. जिनकी दूसरी राशि केन्द्र में हो। इन दोनों प्रकार के पापी ग्रहो से योगकारक ग्रह का सम्बन्ध हो तो ये पापी ग्रह भी योगकारक ग्रह की दशा और अपनी अन्तर्दशा में पापफल न देकर योगजफल देते हैं।

दशाफल का मुख्य सिद्धांत है कि कोई भी ग्रह अपना स्वाभाविक (आत्मभावानुरूपी) फल अपने सम्बन्धी या सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा में देता है।[२-] तात्पर्य यह है कि जब किसी ग्रह की दशा में उसके सम्बन्धी या सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा आती है तब दशाधीश का आत्म-भावानुरूपी फल मिलता है। यदि योगकारक ग्रहों से पापीग्रह का सम्बन्ध हो तो वे पापी ग्रह योगकारक के सम्बन्धी हो जाते हैं। इसलिए योगकारक ग्रह की दशा में जब उनके सम्बन्धी पापी ग्रह की अन्तर्दशा आती है तब योगकारक ग्रह का आत्मभावानुरूपी योगज फल मिलता है।

---

१. "योगकारकसम्बन्धात्पापिनोऽपि ग्रहाः स्वतः।
तत्तद्भुकत्यनुसारेण दिशेयु योगिजं फलम्।।" —लघुपाराशरी श्लो० १९

लघुपाराशरी के कुछ व्याख्याकारों ने "तत्तद्भुक्त्यनुसारेण"- का अर्थ - "उस योगकारक ग्रह की अन्तर्दशा के अनुसार" - ऐसा मान कर श्लोक संख्या १९ का यह अर्थ लिया है कि- "स्वयं पापीग्रह भी योगकारक ग्रहों से सम्बन्ध होने पर अपनी दशा में योगकारक की अन्तर्दशा में योगजफल देते हैं।"-[२] किन्तु यह अर्थ लघुपाराशरी के दशाफल सिद्धांत के प्रतिकूल है। क्योंकि पापी ग्रह की दशा में उसके सम्बन्धी योगकारक ग्रह की अन्तर्दशा में मिश्रित फल मिलता है।[१] न कि योगज फल। अतः "तत्तद् भुकत्यनुसारेण" -का अर्थ उन (पापी) ग्रहों की अन्तर्दशा के अनुसार मानकर इस श्लोक का अर्थ- "योगकारक ग्रहों के सम्बन्ध से स्वतः पापीग्रह योगकारक ग्रहों की दशा तथा अपनी अन्तर्दशा में योगज फल देते हैं"-यह मानना उचित एवं तर्क संगत है। यथा-"सम्बन्धे सति साधूनां खलोऽपि हितसाधकः। तद्वत् पापेऽपि सम्बन्धे सति योगफलप्रदः।"

मेष आदि लग्नों में पापी ग्रहों की तालिका-

लग्न	पापीग्रह		
मेष	(i) बुध	(ii) शुक्र	(iii) शनि
वृष	(i) चन्द्र	(ii) मंगल	(iii) गुरु
मिथुन	(i) सूर्य	(ii) मंगल	(iii) शनि
कर्क	(i) बुध	(ii) शुक्र	(iii) शनि
सिंह	(i) बुध	(ii) शुक्र	(iii) शनि
कन्या	(i) मंगल	(ii) चन्द्र	

२- -२. (i) लघुपाराशरी-तत्त्वार्थ प्रकाशिका पं० श्री सीताराम झा पृ० ५०
(ii) लघुपाराशरी-सुबोधिनी टीका-पं० श्री अच्युतानन्द झा पृ० ४०
(iii) लघुपाराशरी-भाषा टीका-श्री वासुदेव गुप्त पृ० ५४
(iv) देखिए-लघुपाराशरी श्लो० ८-९

१. देखिए-लघुपाराशरी श्लो० ३७-३८

तुला	(i) मंगल	(ii) गुरु	(iii) सूर्य
वृश्चिक	(i) बुध	(ii) शनि	(iii) शुक्र
धनु	(i) शुक्र	(ii) शनि	
मकर	(i) मंगल	(ii) गुरु	
कुम्भ	(i) चन्द्र	(ii) मंगल	(iii) गुरु
मीन	(i) सूर्य	(ii) शुक्र	(iii) शनि

आयुर्दायाध्याय

44. आयु-निर्णय

भारतीय ज्योतिष में 'आयुनिर्णय' आत्मतत्त्व एवं जीवन के घटनाचक्र के ज्ञान का शरीर माना गया है। जैसे आत्मा के बिना शरीर अनुपयोगी एवं व्यर्थ होता है-ठीक उसी प्रकार आयु के ज्ञान के बिना जीवन के घटनाचक्र का ज्ञान अनुपयोगी एवं व्यर्थ है। वस्तुतः जब तक आयु है, तभी तक जीवन की सत्ता है और तभी तक जीवन के घटनाचक्र में गतिशीलता है। आयु की समाप्ति के साथ ही जीवन एवं उसका घटनाचक्र दोनों ही स्तब्ध हो जाते हैं और अपने पूर्ण-विराम पर पहुँच जाते हैं। जीवन के घटनाचक्र की जानकारी में आयु की इस सापेक्षता को ध्यान में हमारे आचार्यों ने फलादेश करने से पहले आयु की भली भाँति परीक्षा करने का निर्देश दिया है[१]–

"आयुः पूर्वं परीक्षेत पश्चाल्लक्षणमादिशेत्।
अनायुषां तु मर्त्यानां लक्षणैः किं प्रयोजनम्।।"

प्रारब्ध कर्मों का फल भोगने के लिए जीव को जितना समय मिलता है वह उसकी आयु कहलाती है। यह समय जन्म से लेकर मृत्यु तक की कालावधि होती है और वह प्रारब्ध कर्मों के प्रभाववश कभी छोटी तथा कभी बड़ी होती रहती है। जीवन एवं मृत्यु एक गूढ़ पहेली या ऐसी जटिल गुत्थी है, जिसका समाधान आज तक ज्ञान एवं विज्ञान की किसी विद्या द्वारा नहीं हो पाया। चाहे धीर एवं गम्भीर चिन्तन करने वाले

---

१. विस्तृत जानकारी के लिए देखिए-प्रश्नमार्ग प्रथम खण्ड सं० शुकदेव चतुर्वेदी, रंजन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

दार्शनिक हों या प्रयोग एवं प्रविधि के विशेषज्ञ वैज्ञानिक हों अथवा अरबों-खरबों डालर खर्च कर मेडीकल साइन्सेज़ में शोध एवं विकास करने वाले चिकित्सा शास्त्री हों-सभी जीवन एवं मृत्यु के रहस्य के सामने विस्मित स्तब्ध एवं किं कर्तव्यविमूढ़ता के भाव से खड़े दिखलाई पड़ते हैं। इस विषय में एक नोबल पुरस्कार विजेता जैनिटिक इंजीनियर का कहना है कि-"रोग की चिकित्सा तो किसी न किसी प्रकार से सम्भव है किन्तु मृत्यु की चिकित्सा को छोड़िए उसका पूर्वानुमान करना ही टेढ़ी खीर है।"

यह टेढ़ी खीर तब है जब भारतीय चिन्तनधारा के दो प्रमुखवादों-कर्मवाद् एवं पुनर्जन्मवाद को अस्वीकार कर दिया जाता है। यदि इन दोनों कर्मवाद् एवं पुनर्जन्मवाद् को स्वीकार कर लिया जाय तो जीवन-मृत्यु के रहस्य को जाना एवं पहचाना जा सकता है। यही कारण है कि वैदिक दर्शन के उक्त दोनों वादों और उनके सिद्धांतों के आधार पर ज्योतिष शास्त्र के प्रणेता पराशर एवं जैमिनी प्रभृति ऋषियों तथा मय यवन, मणित्थ, शक्ति, जीवशर्मा, सत्याचार्य, वराहमिहिर एवं मन्त्रेश्वर आदि आचार्यों ने आयुनिर्णय के आधारभूत सिद्धांतों का प्रतिपादन कर जीवन एवं मृत्यु के रहस्य को अनावृत करने का सार्थक प्रयास किया है।

भारतीय ज्योतिष शास्त्र के मनीषियों का कहना है कि हमें जन्मकाल का ज्ञान होता है। यदि किसी प्रकार मृत्युकाल का ज्ञान हो जाय तो आयु ठीक-ठीक प्रकार से ज्ञान/निर्धारण हो सकता है। एतदर्थ हमारे ऋषियों एवं आचार्यों ने योग एवं दशा इन दो प्रविधियों का विकास किया। ज्योतिष शास्त्र में आयु का निर्णय योग एवं दशा-इन दो के आधार पर किया जाता है। विविध योगों के द्वारा निर्णीत आयु को योगायु तथा मारकेश ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा के आधार पर निर्णीत आयु को दशायु कहते हैं।[१]

---

१. "योगायुश्च दशायुश्च आयुर्वै द्विविधं नृणाम्।
योगैर्निणीत योगायुर्दशायुश्च दशाकृतम्।।" —प्रश्नमार्ग अ० ९ श्लो० ४५

(i) योगायु

योगायु का निर्णय मुख्यतया निम्नलिखित छः[1] प्रकार के योगों से होता है–

१. सद्योष्टि योग

२. बालारिष्ट योग

३. अल्पायु योग

४. मध्यमायु योग

५. दीर्घायु योग

६. अमितायु योग

वृहत्पाराशर होराशास्त्र में योगायु का निर्णय निम्नलिखित सात प्रकार के योगों से किया जाता है[2]–

१. बालारिष्ट योग

२. योगारिष्ट

३. अल्पायु योग

४. मध्यमायु योग

५. दीर्घायु योग

६. दिव्यायु योग

७. अमितायु योग

बालारिष्ट योग में जातक की अधिकतम आयु ८ वर्ष, योगारिष्ट में अधिकतम आयु २० वर्ष, अल्पायु योग में अधिकतम आयु ३० वर्ष, मध्यमायु योग में अधिकतम आयु ६४ वर्ष, दीर्घायु योग में अधिकतम आयु १०० वर्ष, दिव्यायु योग में अधिकतम आयु १००० वर्ष और

---

१. तत्रैव श्लो० ५३

२. देखिए–बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ४४ श्लो० ५२

अमितायु योग में अधिकतम आयु की कोई सीमा नहीं बतलाई गयी।[1]

समस्त जातक ग्रन्थों के परिप्रेक्ष्य में व्यावहारिक एवं सामयिक दृष्टि से विचार किया जाय तो बालारिष्ट एवं योगारिष्ट के स्थान पर सद्योरिष्ट एवं बालारिष्ट को आधार मानना बहुसम्मत पक्ष है। क्योंकि होराशास्त्र के आचार्यों ने प्राय: ऐसा ही वर्गीकरण किया है। इसी प्रकार दिव्यायु एवं अमितायु योग जो अपवाद योग है, को एक वर्ग में रखना व्यावहारिक है। क्योंकि जन-जीवन में इनका बहुधा उपयोग नहीं हो पाता। अत: समसामयिक दृष्टि से योगों का उक्त छ: वर्गों में वर्गीकरण करना अधिक व्यावहारिक है।

इस वर्गीकरण में सद्योरिष्ट योग में जातक की अधिकतम आयु १ वर्ष, बालारिष्ट योग में अधिकतम आयु १२ वर्ष, अल्पायु योग में अधिकतम आयु ३२ वर्ष, मध्यमायु योग में अधिकतम आयु ६४ वर्ष, दीर्घायु योग में अधिकतम आयु १०० वर्ष तथा अमितायु योग में अधिकतम आयु की सीमा निर्धारित नहीं है।[2] इस योग में आयु की न्यूनतम सीमा १०० वर्ष मानी जा सकती है।

इन छ: प्रकार के योगों में से अल्पायु, मध्यमायु एवं दीर्घायु-ये तीनों योग आयु का निर्णय करने के लिए मारकेश ग्रहों की दशा की सापेक्षता रखते हैं। जबकि सद्योरिष्ट, बालारिष्ट एवं अमितायु योग मारकेश ग्रहों की दशा की अपेक्षा नहीं रखते। क्योंकि सद्योरिष्ट एवं बालारिष्ट योगों में मृत्युकाल का निर्णय गोचर के अनुसार किया जाता है। जबकि अमितायु योग में आयु का विचार ही नहीं किया जाता। क्योंकि इस योग में "जीवेम शरद: शतम्" इस जिजीविषा की पूर्ति हो जाती है। यही कारण है कि अधिकतम आचार्यों ने १२ वर्षों तक आयु का निर्णय करने का निषेध किया है।[3]

---

१. तत्रैव श्लो० ५३-५४

२. प्रश्नमार्ग अ० ९ श्लो० ५४-५८

३. जातक पारिजात अ० ४ श्लो० ६

अल्पायु, मध्यमायु एवं दीर्घायु योगों में आयु की न्यूनतम एवं अधिकतम अवधियों में काफी अन्तर रहता है। यथा-अल्पायु योग में आयु की अवधि १३ वर्ष से ३२ वर्ष तक, मध्यमायु में ३३ वर्ष से ६५ वर्ष तक और दीर्घायु योग में अवधि ६६ से १०० वर्ष तक होती है। यहाँ आयु की अवधि में २० से ३५ वर्ष का अन्तर होने के कारण आयु का स्पष्टीकरण तथा मारकेश ग्रह की दशा के आधार पर निर्धारण किया जाता है।

(ii) आयु का स्पष्टीकरण

अल्पायु आदि योगों से मनुष्य की आयु की स्थूल जानकारी मिलने के कारण महर्षि पराशर एवं उनके परवर्ती मय, यवन मणित्थ, शक्ति, जीवशर्मा, सत्याचार्य, वराहमिहिर एवं कल्याण वर्मा आदि आचार्यों ने उसकी सूक्ष्मता के लिए आयु का स्पष्टीकरण करने के अनेक विधियों का प्रतिपादन एवं उपयोग किया है जिनमें प्रमुख है- १. अंशकायु, २. निसर्गायु, ३. पिण्डायु एवं ४. लग्नायु। इन रीतियों में से किस व्यक्ति की आयु का स्पष्टीकरण किस रीति से किया जाय?-इस प्रश्न का समाधान करते हुए महर्षि पराशर ने बतलाया है कि-"जातक की जन्म कुण्डली में लग्नेश, चन्द्रमा एवं सूर्य इन तीनों में यदि लग्नेश बली हो तो अंशायु द्वारा यदि चन्द्रमा बली हो तो निसर्गायु द्वारा और यदि सूर्य बली हो तो पिण्डायु की रीति से आयु का स्पष्टीकरण करना चाहिए[१] यदि इन तीनों में दो का बल समान हो तो दोनों का आयुर्दाय निकालकर आधा कर लेना चाहिए और यदि इन तीनों का बल समान हो तो तीनों रीतियों से आयुर्दाय निकालकर उसके योग का तृतीयांश कर लेना चाहिए।[2] प्राचीन आचार्यों में केवल सत्याचार्य एक ऐसे विद्वान हैं जिन्होंने आयुर्दाय के स्पष्टीकरण के लिए केवल लग्नायु की रीति को ही प्रामाणिक माना है।[3] आचार्य वराह मिहिर एवं कल्याण वर्मा सत्याचार्य के मत के पक्षधर लगते हैं।[4]

---

१. देखिए-बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ४४ श्लो० ३०-३१

२. तत्रैव श्लो० ३२

३. सत्यजातकम्-रंजन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

४. बृहज्जातक-आयुर्दायाध्याय श्लो० १३

(iii) एकरूपता ही प्रमाण है।

आयु-निर्णय के प्रसंग में विविध योगों एवं स्पष्टीकरण की रीति से निर्णीत आयु में एकरूपता होने पर उसे प्रामाणिक माना जाता है। यदि योगों के द्वारा और स्पष्टीकरण के द्वारा निर्णीत आयु के मान में एकरूपता न हो तो मारकेश ग्रहों की दशा के आधार पर आयु का निर्णय करना चाहिए। इस प्रकार योग एवं स्पष्टीकरण से मृत्यु का सम्भावना काल और मारकेश ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा से मृत्युकाल का निर्धारण होता है।

आयु का निर्णय करते समय यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि यहाँ संवाद अर्थात् एकरूपता को ही प्रमाण माना जाता है। तात्पर्य यह है कि विविध रीतियों से प्राप्त आयु के परिणाम में एकरूपता ही उसे प्रामाणिक सिद्ध करती है। मृत्यु का ज्ञान एक रहस्य या गूढ़ पहेली है जिसका हल खोजने के लिए जैमिनी एवं पराशर जैसे ऋषियों ने तथा मय, यवन, मणित्थ, शक्ति, जीवशर्मा, सत्याचार्य, वराह मिहिर, कल्याण वर्मा एवं मन्त्रेश्वर जैसे मनीषी आचार्यों ने अनेक उपयोगी एवं सुमान्य रीतियों का आविष्कार एवं विकास किया है। इन रीतियों की विविधता के कारण कभी-कभी परिणाम में विविधता दिखलाई पड़ती है। ऐसी स्थिति में यदि एकरूपता सम्भव न हो तो बहुसम्मत पक्ष को ही प्रामाणिक मानना चाहिए।

(iv) आयु निर्णय की दार्शनिक पृष्ठभूमि

योगायु एवं अंशायु आदि के स्पष्टीकरण का आधार जन्मकालीन ग्रहस्थिति होती है जो जन्मान्तरों के संचित कर्मों के फल की सूचक होती है। ज्योतिष शास्त्र में संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण कर्मों के फल का जानने के लिए तीन पद्धतियाँ विकसित की गयी हैं जिन्हें योग, दशा एवं गोचर कहते हैं। इस शास्त्र में संचित कर्मों के फल की जानकारी जन्मकालीन ग्रहस्थिति या ग्रहयोगों के द्वारा की जाती है। जबकि प्रारब्ध कर्मों का फल ग्रहदशा द्वारा तथा क्रियमाण कर्मों का फल गोचर द्वारा किया जाता है।

जन्मान्तरों में किये गये विविध कर्मों के संकलित भण्डार को संचित कहते हैं। कर्मों की विविधता के कारण संचित के फलों में विविधता होती है और इसी विविधता के कारण समस्त संचित कर्मों के फलों को एक साथ भोगा नहीं जा सकता। क्योंकि कर्मों की विविधता के परिणाम स्वरूप मिलने वाले फल भी परस्पर विरोधी होते हैं। अतः इनको एक के बाद एक के क्रम में भोगना पड़ता है। वर्तमान जीवन में हमको संचित कर्मों में से जितने कर्मों का फल भोगना है; केवल उतने ही कर्मों के फल को प्रारब्ध कहते हैं। इन प्रारब्ध कर्मों के फल का ज्ञान दशा के द्वारा होता है। इस जीवन में जो कर्म हम कर रहे हैं या जिन कर्मों को भविष्य में किया जायेगा वे सब क्रियमाण कर्म कहलाते हैं और उनके फल का विचार गोचर की रीति से किया जाता है।

आयुर्दाय के प्रसंग में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि योगों के द्वारा निर्णीत आयु में तथा अंशायु आदि के द्वारा स्पष्टीकरण के परिणाम में एकरूपता क्यों नहीं होती? जबकि आयु निर्णय में एकरूपता को प्रमाण माना जाता है। इस का कारण यह है कि योगायु एवं अंशायु आदि का आधार संचित कर्म है। क्योंकि इन दोनों का विचार जन्मकालीन ग्रह स्थिति के आधार पर हाता है जो संचित कर्म की सूचक होती है। और चूंकि संचित कर्म परस्पर विरोधी होते हैं। इसलिए योगायु एवं अंशायु आदि के परिणामों में एकरूपता नहीं होती। जैसे काली मिट्टी से काला घड़ा, लाल मिट्टी से लाल घड़ा, पीली मिट्टी से पीला घड़ा या सफेद धागों से सफेद कपड़ा और रंगीन धागों से रंगीन कपड़ा बनता है। उसी प्रकार संचित कर्मों की विविधता के कारण योगायु एवं अंशायु आदि के परिणामों में स्वाभाविक रूप से विविधता होती है।

मनुष्य की आयु संचित कर्मों की अपेक्षा प्रारब्ध कर्मों पर ज्यादा आधारित होती है। क्योंकि प्रारब्ध कर्मों का फल भोगने की समयावधि को आयु कहते हैं। अतः उसका विचार एवं निर्णय मारकेश ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा द्वारा किया जाता है। इस प्रकार निर्णीत आयु को दशायु कहते हैं।

दशायु के बारे में विचार करने से पूर्व-इसकी पूर्वोक्त योगों के साथ सापेक्षता एवं निरपेक्षता के बारे में कुछेक महत्त्वपूर्ण बातों पर विचार कर लेना आवश्यक है-पहले कहा जा चुका है कि सद्योरिष्ट, बालारिष्ट एवं अमितायु योग मारकेश ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा की सापेक्षता नहीं रखते। वस्तुतः सद्योरिष्ट एवं बालारिष्ट ये दोनों योग ऐसे हैं जो न केवल जातक के पूर्वार्जित कर्मों के फल की सूचना देते हैं। अपितु वे उनके माता-पिता के द्वारा किये गये अनुचित कर्मों की भी सूचना देते हैं। इसलिए इन योगों का विचार जन्म कुण्डली के साथ-साथ आधान कुण्डली से भी किया जाता है। किसी बालक की जन्म के बाद तुरन्त या बचपने में मृत्यु का जितना महत्त्वपूर्ण कारण उसके पूर्वार्जित कर्मों का फल है उतना ही महत्त्वपूर्ण कारण उसके माता-पिता का अनुचित आचरण है। क्योंकि मारकेश ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा माता-पिता के अनुचित आचरण पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डालती। इसलिए सद्योरिष्ट एवं बालारिष्ट योगों में ग्रह दशा की सापेक्षता नहीं होती।

अमितायु योग में जीवन की न्यूनतम कालावधि एक सौ वर्ष से अधिक होती है जो हमारी सौ साल तक जिएँ-जैसी जिजीविषा को संतुष्ट कर देती है। इस प्रकार इस योग के प्रभाववश जिजीविषा की पूर्ति एवं संतुष्टि हो जाने के कारण इस योग में भी मारकेश ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा का विचार नहीं किया जाता।

अल्पायु, मध्यायु एवं दीर्घायु योगों में से कतिपय योग[१] ऐसे भी होते हैं। जिनमें मृत्यु के सम्भावित वर्ष का उल्लेख रहता है। किन्तु अधिकांश योगों में केवल इतना बतलाया जाता है कि अमुक योग में मनुष्य की आयु, मध्य या दीर्घ होगी। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि अल्पायु, मध्यायु एवं दीर्घायु की जो न्यूनतम एवं अधिकतम अवधियाँ बतलायी गयी हैं। उनमें बीसियों वर्षों का अन्तर होता है। अतः इन योगों में उत्पन्न व्यक्तियों की आयु या मृत्यु की जानकारी के लिए मारकेश ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा का विचार अनिवार्य भी है और अपरिहार्य भी।

---

१. देखिए-जातक पारिजातक अ० ४ श्लो० ५३-६७

(v) दशायु

होराग्रन्थों में प्रतिपादित योगों के द्वारा आयु की स्थूल जानकारी करने के बाद सूक्ष्म रूप से उनका ज्ञान करने के लिए मारकेश ग्रहों की दशा–अन्तर्दशा का आश्रय लिया जाता है। मारकेश ग्रहों की दशा–अन्तर्दशा द्वारा निर्णीत आयु को दशायु कहते हैं।[१] अतः दशा द्वारा आयु का निर्णय करने से पहले योगों द्वारा अल्पायु, मध्यायु एवं दीर्घायु या विधिवत निश्चय कर लेना चाहिए और फिर अग्रिम अनुच्छेदों में प्रतिपादित मारकेश–ग्रहों की दशा–अन्तर्दशा के आधार पर मृत्यु का पूर्वानुमान करना चाहिए।

45. आयु एवं मारक स्थान

वैदिक दर्शनों के अनुसार आत्मा अमर है। इसका कभी भी नाश नहीं होता। केवल कर्मों के अनादिप्रवाह के कारण आत्मा अनेकानेक योनियाँ बदलता रहता है। आत्मा का अनादिकालीन कर्मप्रवाह के कारण सूक्ष्मशरीर (लिङ्गशरीर), कार्मण शरीर एवं स्थूल (भौतिक) शरीर के साथ सम्बन्ध रहता है। जब एक समय में आत्मा भौतिक शरीर का त्याग करता है तब वह सूक्ष्म शरीर[२] में रहता है और कार्मण–शरीर की सहायता से कर्मानुबन्ध के अनुसार पुनः नया भौतिक शरीर प्राप्त कर जन्म लेता है। इस प्रकार जन्म एवं मृत्यु का अनवरत चक्र चलता रहता है।

कर्म करने के बाद कर्ता को अनिवार्य रूप से मिलने वाला उसका परिणाम (फल) कर्मानुबन्ध कहलाता है। यही कर्मानुबन्ध कृतकर्मों के शुभाशुभत्व के अनुसार आत्मा को इष्टानिष्ट योनियों में ले जाता है। आत्मा की स्वतन्त्रता या वशीत्व कर्म करने मात्र में है–वह जैसा चाहे अच्छा या बुरा कर्म करे किन्तु कर्म करने के बाद वह उसके अपरिहार्य फल से अनुबन्धित हो जाता है। तात्पर्य यह है कि आत्मा कर्म करने में पूर्वरूपेण स्वतन्त्र है। किन्तु कर्म करने के बाद उसके अपरिहार्य फल को

---

१. देखिए–प्रश्नमार्ग अ० ९ श्लो० ४५

२. मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार से निर्मित सूक्ष्म शरीर।

भोगने में वह स्वतन्त्र नहीं अपितु परतन्त्र है। क्योंकि किये गये कर्मों का फल भोगे बिना उनका क्षय नहीं होता।[1]

जन्मान्तरों में किये गये कर्मों के फल को दैव या भाग्य कहते हैं।[2] और उसको भोगने के लिए वर्तमान जीवन की समयावधि आयु कहलाती है। जन्मकुण्डली में नवम स्थान दैव या भाग्य का प्रतिनिधि स्थान होता है और इसके व्यय या भोग का सूचक अष्टम स्थान होता है। अतः भाग्य का व्यय या जन्मान्तरों के प्रारब्ध कर्मों के भोग का प्रतिनिधित्व करने के कारण अष्टमस्थान आयु का स्थान माना गया है। वस्तुतः प्रारब्ध कर्मों का फल भोगने के लिए इस जन्म में प्राणी को जो जीवनकाल मिलता है। वह उसकी आयु कहलाती है। इसीलिए भाग्य स्थान के व्यय स्थान को आयु तथा आयु के व्यय स्थान का मारक (मृत्यु) स्थान माना जाता है।

जन्मकुण्डली में अष्टम स्थान तथा उसके अष्टम-अर्थात् तृतीय स्थान ये दोनों आयु के स्थान कहलाते हैं। इसका कारण यह है कि संघर्ष एवं पराक्रम ही जीवन है और इनके बिना जीवन मृतक समान है। क्योंकि जीवन का अस्तित्व संघर्ष एवं पराक्रम में ही दिखलाई देता है। चूंकि अष्टम स्थान संघर्ष का तथा तृतीय स्थान पराक्रम का प्रतिनिधि स्थान है। अतः ये दोनों आयु के स्थान माने जाते हैं।[3]

आयु या जीवन की समाप्ति का नाम मृत्यु है। यह एक ऐसी अनिवार्य एवं अपरिहार्य घटना है, जिसमें वर्तमान जीवन का अस्तित्व हमेशा-हमेशा के लिए नष्ट हो जाता है। यद्यपि आत्मा की अनेकानेक योनियों में विचरण की श्रृंखला में यह घटना परिवर्तन मात्र ही है। किन्तु यह एक ऐसा परिवर्तन है जो वर्तमान जीवन के अस्तित्व को नष्ट कर उसे भूत में विलीन कर देता है। वस्तुतः मृत्यु वर्तमान जीवन की सत्ता को समाप्त कर देने वाली घटना है। अतः कुण्डली में आयु के प्रतिनिधि

---

१. (i) "नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
(ii) अवश्यमिव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।।"

२. "जन्मान्तरकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते।"

३. "अष्टमं ह्यायुषः स्थानं अष्टमादष्टमं च यत्" —लघुपाराशरी श्लो० २३

अष्टम एवं तृतीय इन दोनों स्थानों के व्ययस्थान-अर्थात् सप्तम एवं द्वितीय स्थान को मारक स्थान कहते हैं।[१]

कुण्डली के द्वादश भावों में से सप्तम एवं द्वितीय भाव को ही मारक क्यों माना गया? इस प्रश्न का समाधान करने के लिए इन दोनों भावों के गुण-धर्म एवं प्रतिनिधित्व का विचार करना आवश्यक है। ज्योतिष शास्त्र में सप्तम भाव स्त्री का तथा द्वितीय भाव धन का प्रतिनिधि माना गया है।[२] इस संसार में धन एवं स्त्री ये दोनों झगड़े एवं हत्या की जड़ हैं। यदि महाभारत में से द्रोपदी एवं रामायण में से सीता को अलग कर दिया जाय तो दोनों महाकाव्यों का कथानक पूर्ण विराम के आस-पास चला जाता है। पूरी तटस्थता एवं शालीनता के साथ विचार कर यह कहा जा सकता है कि महाभारत जैसे भीषण युद्ध के मूल में द्रोपदी तथा राम-रावण के भयानक युद्ध में सीता, शूर्पनखा, कैकयी एवं मंथरा आदि की भूमिका प्रमुख कारण रही है। संयोगिता, पद्मावती, नूरजहाँ एवं मुमताजमहल के कारण कितने युद्ध एवं हत्याकाण्ड हुए? इतिहास इसका साक्षी है।

यदि हम अपने पारिवारिक जीवन पर दृष्टि डालें तो यह स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है कि जब तक परिवार में दो, तीन या अधिक भाई कुँआरे रहते हैं तब तक उनमें अटूट प्रेम रहता है। किन्तु शादी के बाद पता नहीं यह अटूट प्रेम कहाँ चला जाता है? कई बार भाई अपने भाई का जानी दुश्मन बन जाता है। इस नयी स्थिति को कौन पैदा करता है?-आप सभी लोग इससे अच्छी तरह परिचित हैं। परिवार के आपसी कलह, झगड़े-झंझट एवं विघटन में सास-बहू, ननद-भाभी या देवरानी-जेठानी की भूमिका युग-युगों से एक प्रमुख रही है। इन सब बातों को ध्यान में रखकर ही सम्भवतः ज्योतिष शास्त्र के चिन्तकों ने सप्तम (स्त्री) स्थान को मारक स्थान माना है।

---

१. "तयोरपि व्ययस्थानं मारकस्थानमुच्यते।" —लघुपाराशरी श्लो० २३

२. बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० १२ श्लो० ३ एवं ८

द्वितीय स्थान धन स्थान होने के कारण सभी अनर्थों की जड़ है। संसार में अधिकतम अपराध, हत्या एवं माफिया गतिविधियाँ इसी के लिए होती हैं और इसी से संचालित होती हैं। धन-सम्पत्ति का प्रलोभन इतना प्रबल है कि इसमें फंस कर व्यक्ति चोरी, डकैती, हत्या, अपहरण या सामूहिक नरसंहार जैसा कोई भी भीषण या वीभत्स काम कर सकता है। सम्भवतः इन्हीं कारणों को ध्यान में रखकर इस शास्त्र के प्रणेताओं ने ध न स्थान को मारक स्थान माना है।

मारक प्रसंग में सप्तम स्थान से द्वितीय स्थान बलवान् मारक स्थान होता है। क्योंकि धनपति-पत्नी में, पिता-पुत्र में, भाई-बहनों में, यार-दोस्तों में तथा नाते-रिश्तेदारों में जो एक दूसरे पर जी-जान देने को तैयार रहते हैं। झगड़े-झंझट, मार-पीट एवं हत्या आदि सभी कुछ कर सकता है। चाहे इतिहास हो या वर्तमान धन के लिए सदैव भीषण एवं जघन्य काण्ड होते रहे हैं। सिकन्दर, हिटलर, नैपोलियन एवं मुसोलिनी के विश्वविजयी बनने के सपनों के पीछे प्रेरक तत्त्व क्या था? मोहम्मद गौरी, महमूद गजनवी, चंगेज खान, नादिरशाह एवं अहमद शाह अब्दाली के बार-बार भारत पर आक्रमण तथा वीभत्स नरसंहार का उद्देश्य क्या था?- केवल धन की लूट-खसोट तथा उस पर एकाधिकार करना। वह धन चाहे गाँव में रहने वाले किसान का हो, हवेली में रहने वाले अमीर का हो, तख्ते ताऊस पर बैठने वाला बादशाह का हो या मन्दिर में ईश्वर के नाम पर रखा हुआ हो-धन ही सदैव से हत्या की जड़ रहा है। इसीलिए पराशर ने धन स्थान को सप्तम स्थान में प्रबल मारक स्थान माना है।[१]

46. मारक-ग्रह

जन्म कुण्डली के योगों तथा अंशायु आदि की रीति से आयु की सम्भावना की जानकारी लेने के बाद मारक ग्रहों का विचार किया जाता है। और योग आदि से निर्णीत सम्भावना काल में जिस मारक ग्रह की दशा-अन्तर्दशा मिलती हो वह मारकेश कहलाता है। मारकेश ग्रह का

---

१. "तत्राप्याद्यव्यस्थानाद् द्वितीयं बलवत्तरम्।" —लघुपाराशरी श्लो० २४

निर्णय करने के लिए लघुपाराशरी में उनकी एक वरीयता क्रम से सूची बतलायी गयी है।[१] जो इस प्रकार है–

१. द्वितीयेश

२. सप्तमेश

३. द्वितीय भाव में स्थित त्रिषडायाधीश

४. सप्तम भाव में स्थित त्रिषडायाधीश

५. द्वितीयेश से युत त्रिषडायाधीश

६. सप्तमेश से युत त्रिषडायाधीश

७. व्ययेश

८. व्ययेश से सम्बन्धित पाप ग्रह

९. व्ययेश से सम्बन्धित शुभ ग्रह

१०. (कभी-कभी) अष्टमेश

११. (कभी-कभी) केवल पापी

जातक चन्द्रिका के संख्या २५-२७ की टिप्पणी में प्रो० बी० सूर्यनारायण राव ने मारक ग्रहों की इस से भिन्न क्रम में सूची दी है, जो इस प्रकार है–

१. द्वितीय एवं सप्तम में स्थित ग्रह

२. द्वितीयेश एवं सप्तमेश

३. द्वितीयेश एवं सप्तमेश से युत ग्रह

४. योगकारकता से रहित और मारकेश से युत दृष्ट केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश

५. तृतीयेश एवं अष्टमेश

६. सबसे निर्बल ग्रह

---

१. तत्रैव श्लो० २४-२७

किन्तु इस सूची का क्रम न तो लघुपाराशरी के अनुरूप है और न ही वृहत्पाराशर होराशास्त्र के अनुरूप ही। लघुपाराशरी में मारक ग्रहों की सूची वृहत्पाराशर होराशास्त्र के अनुरूप है। अतः प्रो० राव के मारक ग्रहों के क्रम को पाराशर-सम्मत नहीं कहा जा सकता। इस विषय में पाराशर का वचन इस प्रकार है।[१]

मारकस्य दशाकाले मारकस्थस्य पापिनः।
पाके पापयुजां पाके संभवे निधनं दिशेत्।।

असंभवे व्ययाधीशदशायां मरणं नृणाम्।
अभावे व्ययभावेशसम्बन्धिग्रहभुक्तिषु।।

तदभावेऽष्टमेशस्य दशायां निधनं पुनः।
एतद्दशांतभुक्त्यादौ विचार्यैवं मृतिं वदेत।।

मारकेश निर्णय करने से पूर्व द्वितीयेश, सप्तमेश, द्वादशेश, अष्टमेश, एवं पापी ग्रहों का गम्भीरतापूर्वक विचार करना आवश्यक है। क्योंकि सभी द्वितीयेश, सप्तमेश आदि मारकेश नहीं होते। कारण यह है कि जो भावेश शुभ प्रभाव में है वह मृत्यु नहीं देता, हाँ कष्ट अवश्य देता है। जैसे कारक ग्रह चरम एवं परम शुभ फल का सूचक होता है वैसे ही मारक ग्रह परम अशुभ फल का सूचक होता है। अतः जो ग्रह द्वितीयेश, द्वादशेश या अष्टमेश होने के साथ-साथ लग्नेश या नवमेश हो वे मारक नहीं होते। इसी प्रकार सूर्य एवं चन्द्रमा अष्टमेश होने पर मारकेश नहीं होते।

मेष आदि लग्नों में मारक-ग्रह

लग्न	द्वितीयेश	सप्तमेश	व्ययेश	अष्टमेश	पापी	केवल पापी
मेष	शुक्र	शुक्र	गुरु (अमारक)	मंगल (अमारक)	शनि	बुध
वृष	बुध	मंगल	मंगल	गुरु	गुरु	चन्द्र

१. बृहत्पाराशर होराशास्त्र मारक भेदाध्याय श्लो० २-३, ६-७

मिथुन	चन्द्र	गुरु	शुक्र	शनि	सूर्य	मंगल
कर्क	सूर्य	शनि	बुध	शनि	शुक्र	बुध
सिंह	बुध	शनि	चन्द्र	गुरु	शनि, शुक्र	बुध
कन्या	शुक्र (अमारक)	गुरु	सूर्य	मंगल	शनि	चन्द्र
तुला	मंगल	मंगल	बुध (अमारक)	शुक्र (अमारक)	X	गुरु
वृश्चिक	गुरु	शुक्र	शुक्र	बुध	बुध, शनि	X
धनु	शनि	बुध	मंगल	चन्द्र (अमारक)	शनि	शुक्र
मकर	शनि (अमारक)	चन्द्र	गुरु	सूर्य (अमारक)	मंगल	गुरु
कुम्भ	गुरु	सूर्य (अमारक)	शनि (अमारक)	बुध	मंगल	चन्द्र
मीन	मंगल (अमारक)	बुध	शनि	शुक्र	शनि	सूर्य

इस प्रसंग में एक महत्त्वपूर्ण एवं ध्यान रखने योग्य बात यह है कि जैसे द्वितीयेश, द्वादशेश एवं अष्टमेश लग्नेश होने पर मारक नहीं होते वैसे ही इसके विपरीत ये ग्रह पापी स्थानों के स्वामी होने पर प्रमुख मारक ग्रह हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि जो ग्रह मारक स्थान के साथ-साथ शुभ स्थान एवं पाप स्थानों का स्वामी हो वह प्रमुख मारक और जो ग्रह मारक स्थान के साथ-साथ शुभ स्थान का स्वामी हो वह मारक लक्षण माना जाता है और कभी-कभी मृत्युदायक होता है।

इसके साथ-साथ एक अन्य यह बात भी स्मरणीय है कि मारक ग्रहों का परस्पर सम्बन्ध उनका अष्टमेश या त्रिषडायाधीश से सम्बन्ध मारक-प्रभाव को बढ़ाता है।

मेष आदि लग्नों में प्रमुख मारक एवं पापी ग्रह

लग्न	प्रमुख मारक	प्रमुख पापी
मेष	शुक्र	बुध
वृष	मंगल,	बुध गुरु, चन्द्र
मिथुन	गुरु, चन्द्र	मंगल, शनि
कर्क	शनि, सूर्य	बुध, शुक्र
सिंह	बुध, शनि	शुक्र
कन्या	गुरु, सूर्य	मंगल, चन्द्र
तुला	मंगल	गुरु
वृश्चिक	शुक्र	बुध
धनु	शनि, बुध	शुक्र
मकर	चन्द्र	गुरु
कुम्भ	गुरु, सूर्य	चन्द्र
मीन	बुध, शनि	शुक्र, सूर्य

47. मारकेश-निर्णय

मारकेश ग्रह का निर्णय करने से पूर्व योगों के द्वारा अल्पायु, मध्यायु या दीर्घायु है। यह निश्चित कर लेना चाहिए।[१] क्योंकि योगों द्वारा निर्णीत आयु का समय ही मृत्यु का सम्भावना-काल है और इसी सम्भावना काल में अनुच्छेद ४५ में बतलाये गये मारक ग्रहों की दशा में मनुष्य की मृत्यु होती है। इसलिए सम्भावना-काल में जिस मारक ग्रह की

---

१. देखिए–परिशिष्ट संख्या

दशा आती है वह मारकेश कहलाता है।

इस ग्रन्थ में आयु निर्णय के लिए ग्रहों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया है- १. मारक-लक्षण, २. मारक एवं ३. मारकेश। जो ग्रह कभी-कभी मृत्युदायक होता है उसे मारक लक्षण कहते हैं। जिन ग्रहों में से कोई एक परिस्थितिवश मारकेश बन जाता है। वे मारक ग्रह कहलाते हैं। और योगों के द्वारा निर्णीत आयु के सम्भावना काल में जिस मारक ग्रह की दशा-अन्तर्दशा में जातक की मृत्यु हो सकती है वह मारकेश कहलाता है।

बृहद्पाराशर होराशास्त्र के अनुसार आयु के तीन प्रमुख योग होते हैं- १. अल्पायु, २. मध्यमायु एवं ३. दीर्घायु। १३ वर्ष से ३२ वर्ष तक अल्पायु, ३३ से ६४ वर्ष तक मध्यमायु तथा ६५ से १०० वर्ष तक दीर्घायु मानी जाती है। सौ वर्षों से अधिक की आयु को उत्तमायु भी कह सकते हैं।[१]

महर्षि पराशर का मत है कि बीस वर्ष तक आयु विचार नहीं करना चाहिए[२] क्योंकि समय में कुछ बालक पिता के, कुछ बालक माता के और कुछ अपने अनुचित कर्मों के प्रभाववश मर जाते हैं[३] अपने अनुचित कर्मों का विचार करने के लिए अरिष्ट योगों का प्रतिपादन किया गया है। यद्यपि माता-पिता के अनुचित कर्मों का विचार भी अरिष्ट योगों द्वारा किया जा सकता है। किन्तु यह विचार बहुधा आनुमानिक होता है, पूर्व प्रामाणिक नहीं। अतः बीस वर्ष की उम्र तक आयु का विचार नहीं करना चाहिए।

---

१. "त्रिविधाश्चायुषो योगाः स्वल्पायुर्मध्योत्तमाः।
द्वात्रिंशद् पूर्वमल्पायुर्मध्यमायुस्ततः परम्।।
चतुष्षष्ट्याः पुरस्तात् तु ततो दीर्घमुदाहृतम्।
उत्तमायुः शतादूर्ध्वं ज्ञातव्यं द्विजसत्तम।।"-बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ४५ श्लो० १०-११

२. तत्रैव श्लो० १२

३. तत्रैव श्लो० १३-१४

बीस वर्ष की आयु हो जाने के बाद आयु का विचार किया जाता है जो इस प्रकार है- सर्वप्रथम अल्पायु, मध्यायु या दीर्घायु योगों के द्वारा जातक की आयु अल्प, मध्य या दीर्घ होगी। यह निर्धारित कर लेना चाहिए। अल्पायु योग होने पर २१ वर्ष ३२ वर्ष की आयु के कालखण्ड में, मध्यमायु योग होने पर ३३ वर्ष से ६४ वर्ष के कालखण्ड में और दीर्घायु योग होने पर ६५ से १०० वर्ष की आयु के कालखण्ड में कभी भी मृत्यु हो सकती है। इस कालखण्डों में जातक की मृत्यु कब और किस मारक ग्रह की दशा में होगी? इसका निर्णय इस प्रकार किया जाता है-

योगों के द्वारा निर्णीत मृत्यु के कालखण्ड में यदि (१) द्वितीयेश (२) सप्तमेश (३) द्वितीय स्थान में स्थित पापी (४) सप्तम स्थान में स्थित पापी (५) द्वितीयेश से युक्त पापी या (६) सप्तमेश से युक्त पापी ग्रह की दशा आती हो तो उसकी दशा में और उक्त ग्रहों में से प्राथमिकता क्रम से आने वाले ग्रह की अन्तर्दशा में मनुष्य की मृत्यु होती है।[१]

यदि निर्णीत कालखण्ड में उक्त ग्रहों की दशा न मिलती हो तो (१) व्ययेश (२) व्ययेश से सम्बन्धी पापी या (३) व्ययेश से सम्बन्धित शुभ ग्रह की दशा में मारक ग्रह की अन्तर्दशा में मनुष्यों की मृत्यु होती है।[२]

यदि कदाचित् निर्णीत कालखण्ड में इनकी दशा भी न मिलती हो तो अष्टमेश या केवल पापी ग्रह की दशा में पापग्रहों से युत/दृष्ट मारक ग्रह की अन्तर्दशा में मनुष्य की मृत्यु निर्धारित की जाती है।[३]

(i) मारकेश निर्णय के महत्त्वपूर्ण सूत्र

मारकेश निर्णय के लिए मारक ग्रहों का प्राथमिकता क्रम इस प्रकार होता है-

---

१. लघुपाराशरी श्लो० २४-२४/

२. तत्रैव श्लो० २५

३. तत्रैव श्लो० २६

१. मारकेश स्थान में स्थित द्वितीयेश।

२. सप्तम स्थान में स्थित सौम्य ग्रह सप्तमेश।

३. सप्तम स्थान में स्थित क्रूर ग्रह सप्तमेश।

४. त्रिषडाय का अष्टम में द्वितीयेश

५. द्वादश में स्थित द्वितीयेश एवं द्वितीय में स्थित द्वादशेश।

६. त्रिषडाय या अष्टम में स्थित सप्तमेश।

७. द्वितीय में स्थित सप्तमेश एवं सप्तमेश में स्थित द्वितीयेश।

८. द्वितीय एवं सप्तम का स्वामी ग्रह।

९. सप्तम एवं द्वादश का स्वामी ग्रह।

१०. पापी ग्रहों से युत दृष्ट द्वितीयेश।

११. पापी ग्रहों से युत दृष्ट सप्तमेश।

१२. पापी ग्रहों से युत दृष्ट द्वादशेश।

१३. द्वितीयेश से युत-दृष्ट त्रिषडायाधीश या अष्टमेश।

१४. सप्तमेश से युत-दृष्ट त्रिषडायाधीश या अष्टमेश।

१५. द्वादशेश से युत-दृष्ट त्रिषडायाधीश या अष्टमेश।

१६. द्वादशेश से सम्बन्धी शुभ ग्रह।

१७. अष्टमेश (यदि वह स्वराशि में लग्न या अष्टम में स्थित न हो)।

१८. शनि (सदैव)।

१९. मारक ग्रह से युत-दृष्ट राहु या केतु।

२०. पापी ग्रहों से युत/दृष्ट राहु या केतु।

२१. मारक स्थान में स्थित राहु या केतु।

२२. त्रिषडाय या अष्टम में स्थित राहु या केतु।

२३. षष्ठ, अष्टम या द्वादश में स्वराशिगत चन्द्रमा।

२४. सूर्य के अलावा सभी षष्ठेश।

२५. त्रिक स्थान में स्थित चन्द्रमा।

(ii) मारक ग्रहों का परस्पर सम्बन्ध-विशेषमारक

१. जैसे केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश का सम्बन्ध विशेष शुभफलदायक होता है। वैसे ही उक्त मारक ग्रहों का पारस्परिक सम्बन्ध विशेष रूप से मारक होता है। यहाँ मारक निर्णय में दृष्टि सम्बन्ध, अन्यतर दृष्टि सम्बन्ध, युति सम्बन्ध एवं स्थान सम्बन्ध यथा क्रमेण उत्तरोत्तर ह्रास क्रम से माने जाते हैं। अर्थात् मारक ग्रहों में दृष्टि सम्बन्ध सर्वोत्तम तथा स्थान सम्बन्ध सबसे कमजोर सम्बन्ध होता है।

२. किन्तु इस विषय में स्मरणीय है कि मारक ग्रह आपसी सम्बन्ध से बलवान होकर प्रबल मारक हो जाते हैं। यदि कोई ग्रह लग्नेश, नवमेश या अन्य शुभ प्रभाव से अमारक हो तो भी वह मारक ग्रहों के साथ सम्बन्ध होने पर प्रबल मारक बन जाता है।

३. मारक ग्रह से सम्बन्ध होने पर पाप स्थान में स्थित राहु एवं केतु मारक हो जाते हैं।

४. मारक ग्रहों से सम्बन्ध होने पर त्रिषडायाधीश या अष्टमेश प्रबल मारक हो जाता है, जबकि मारक ग्रह यथावत् रहता है अर्थात् उसमें प्रबलता नहीं आती।

५. त्रिषडायाधीश या अष्टमेश सूर्य एवं चन्द्रमा पापी होते हैं। इनका पापी ग्रह से सम्बन्ध होने पर ये मारक नहीं होते जबकि पापी ग्रह मारक बन जाते हैं।

६. केन्द्रेश या त्रिकोणेश सूर्य या चन्द्रमा-षष्ठेश, अष्टमेश एवं व्ययेश-इन तीनों में से दो के साथ सम्बन्ध होने पर मारक हो जाते हैं। किन्तु प्रबल मारक नहीं होते।

७. त्रिषडायाधीश मंगल या शनि का मारक ग्रहों से सम्बन्ध होने पर ये प्रबल मारक बन जाते हैं। इस प्रकार शनि प्रबल मारक होता है।

(iii) राहु-केतु का मारकत्व

लघुपाराशरी में विंशोत्तरी दशा के आधार पर फल (जीवन के घटनाक्रम) का विचार किया गया है। किन्तु मारकेश निर्णय के प्रसंग में राहु एवे केतु के बारे में कोई विचार या विवेचना नहीं मिलती। किन्तु इस ग्रन्थ में ग्रहों के शुभाशुभत्व के नियमों के साथ-साथ राहु-केतु का शुभाशुभत्व निर्धारित करने के जो नियम बतलाये गये हैं[१] तथा बृहत्पाराशर होरा शास्त्र के मारक भेदाध्याय में जिस प्रकार राहु एवं केतु का मारकत्व प्रतिपादित है[२] उसके आधार पर राहु एवं केतु का मारकत्व निर्धारित किया जा सकता है यथा–

१. राहु या केतु, सप्तम, अष्टम व्यय में हों।

२. राहु या केतु मारक ग्रह के साथ या उससे सप्तम में हो।

३. वृश्चिक एवं मकर लग्न में राहु-केतु मारक होते हैं।

४. राहु या केतु त्रिषडाय या अष्टम में हो और मारक से दृष्ट हो।

५. राहु या केतु त्रिषडाय या अष्टम में सप्तमेश शुक्र या गुरु के साथ हो।

६. राहु एवं केतु मारक स्थान में स्थित और मारक से दृष्ट हो।

७. केन्द्र या त्रिकोण में स्थित राहु या केतु का मारक से सम्बन्ध हो और उस पर पापी ग्रह की दृष्टि हो।

८. वृष राशि का राहु शुक्र के साथ या दृष्ट हो तो वह पापी होने पर भी नहीं मारता।

९. मीन राशि में राहु सदैव अरिष्टप्रद होता है। यदि वह द्वितीय, षष्ठ, सप्तम या अष्टम में हो तो मारक होता है।

---

१. लघुपाराशरी श्लो० ६-१३

२. बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ४५ श्लो० २२-२४

(iv) मारकेश की दशा में मृत्युदायक अन्तर्दशा

सामान्यतया मारकेश ग्रह का निश्चय कर उसकी दशा में मृत्यु होती है-यह सिद्धांत पक्ष है और मारकेश की दशा में उसके सम्बन्धी या सधर्मी पापी ग्रह की भुक्ति में मृत्यु होती है-यह इस शास्त्र का विशेष नियम है। क्योंकि मारकेश सम्बन्ध होने पर भी शुभ ग्रह की भुक्ति में नहीं मारता जबकि सम्बन्ध न होने पर पापी ग्रह की भुक्ति में मृत्यु देता है।[१]

लघुपाराशरी में ग्रहों के चार सम्बन्ध माने गये हैं-इन सम्बन्धों में मारक-प्रसंग में वरीयता क्रम इस प्रकार होता है- १. दृष्टि सम्बन्ध, २. एकान्तर दृष्टि सम्बन्ध, ३. युति सम्बन्ध एवं ४. स्थान सम्बन्ध। जिन दो ग्रहों में गुण-धर्म समान हों, वे सधर्मी कहलाते हैं। इस दृष्टि से समस्त मारक ग्रह परस्पर एक-दूसरे के समर्धी होते हैं। फिर भी उनमें विशेष सधर्मिता इस प्रकार होती है-

१. द्वितीयेश, सप्तमेश एवं द्वादशेश=परस्पर सधर्मी।

२. त्रिषडायाधीश एवं अष्टमेश=परस्पर सधर्मी।

३. शनि, मंगल, राहु एवं केतु पापी होने पर=परस्पर सधर्मी।

४. शुक्र एवं शनि स्वाभाविक रूप से परस्पर सधर्मी।

५. बुध एवं शुक्र बहुधा परस्पर सधर्मी।

मारकेश ग्रह अपने सम्बन्धित सधर्मी के अन्तर्दशा में निश्चित रूप से मृत्यु देता है। यदि उसका कोई सम्बन्धित सधर्मी ग्रह न हो तो वह अपने सम्बन्धी या सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा में मृत्यु देता है।

शनि एवं शुक्र ये दोनों तथा बुध एवं शुक्र ये दोनों परस्पर सम्बन्धी होते हैं। यदि ये मारक या पापी होकर परस्पर सम्बन्ध करें तो एक की दशा में दूसरे की अन्तर्दशा आने पर मृत्यु होती है।

---

१. लघुपाराशरी श्लो० ३९

मारक शनि से सम्बन्धित चन्द्रमा यदि राहु से ग्रसित हो तो शनि की दशा एवं राहु की अन्तर्दशा में मृत्यु होती है।

यदि मारक शनि के साथ राहु स्थित हो तो शनि की दशा राहु की अन्तर्दशा में मृत्यु होती है।

मारक शनि अपनी दशा में अपने सम्बन्धी की अन्तर्दशा में नहीं मारता अपितु वह अपने सधर्मी शुक्र की अन्तर्दशा में मारता है।

मारक राहु अपनी दशा में केतु के अन्तर में नहीं मारता अपितु अपने सम्बन्धी पापी ग्रह या मंगल या शनि की अन्तर्दशा में मारता है।

सूर्य अष्टमेश होने पर मारक नहीं होता। साथ ही वह षष्ठस्थ होने पर भी मारक नहीं होता। किन्तु अन्य मारक स्थानों का स्वामी होने पर या अष्टम एवं द्वादश स्थान में स्थित होने पर मारक हो जाता है।

इसी प्रकार चन्द्रमा अष्टमेश होने पर मारकेश नहीं होता। किन्तु वह अन्य मारक स्थान का स्वामी होने पर या षष्ठ, अष्टम एवं व्यय स्थान में पापी ग्रह के स्थित होने पर मारक हो जाता है।

मारक सूर्य या चन्द्रमा बहुधा अपनी दशा में मारक फल नहीं देते।[१] किन्तु अन्य मारक ग्रहों से सम्बन्ध होने पर उनकी दशा एवं अन्तर्दशा में मृत्युदायक होते हैं।

इस विषय में महर्षि पराशर का मत है कि मारक ग्रहों, मारक स्थान में स्थित पापी ग्रह, मारक से युत, अष्टमस्थ ग्रह और मारक के सम्बन्धी पापी ग्रह में से एक की दशा और दूसरे की अन्तर्दशा में मृत्यु होती है।[२] इस सूत्र का भली भाँति विचार कर मृत्युकाल निश्चित किया जा सकता है।

---

१. "चन्द्रभानू विना सर्वे मारका: मारकाधिपा:।
षष्ठाष्टमव्ययेशास्तु राहु: केतुस्तथैव च।।" —बृहत्पाराशर होराशास्त्र

२. देखिए—बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ४९ श्लो० १९-२०

47. पापी शनि मारक ग्रह से सम्बन्ध होने पर मुख्य मारक होता है

मारकेश-निर्णय के प्रसंग में यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि पापी शनि मारक ग्रहों के साथ सम्बन्ध हो तो वह सभी मारक ग्रहों का अतिक्रमण कर स्वयं मारक हो जाता है। इसमें संदेह नहीं है।[१]

पापी या पापकृत का अर्थ है पापफलदायक कोई भी ग्रह तृतीय, षष्ठ, एकादश या अष्टम का स्वामी हो तो वह पापफलदायक होता है। ऐसे ग्रह को लघुपाराशरी में पापी कहा जाता है। मिथुन एवं कर्क लग्न में शनि अष्टमेश, मीन एवं मेष लग्न में वह एकादशेश, सिंह एवं कन्या लग्न में वह षष्ठेश तथा वृश्चिक एवं धनु लग्न में शनि तृतीयेश होता है। इस प्रकार मेष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, वृश्चिक, धनु एवं मीन इन आठ लग्नों में उत्पन्न व्यक्ति की कुण्डली में शनि पापी होता है। इस पापी शनि का अनुच्छेद ४५ में बतलाये गये मारक ग्रहों से सम्बन्ध हो तो वह मुख्य मारक बन जाता है। तात्पर्य यह है कि शनि मुख्य मारक बन कर अन्य मारक ग्रहों को अमारक बना देता है और अपनी दशा में मृत्यु देता है।

कारण यह है कि ज्योतिष शास्त्र में शनि को मृत्यु एवं यम का सूचक माना गया है। उसके त्रिषडायाधीश या अष्टमेश होने से उसमें पापत्व तथा मारक ग्रहों से सम्बन्ध होने से उसकी मारक शक्ति चरम बिन्दु पर पहुँच जाती है। तात्पर्य यह है कि शनि स्वभावतः मृत्यु का सूचक है। फिर उसका पापी होना और मारक ग्रहों से सम्बन्ध होना-वह परिस्थिति है जो उसके मारक प्रभाव के अधिकतम कर देते हैं।[२] इसीलिए मारक ग्रहों के सम्बन्ध से पापी शनि अन्य मारक ग्रहों को हटाकर स्वयं मुख्य मारक हो जाता है। इस स्थिति में उसकी दशा-अन्तर्दशा मारक ग्रहों

---

१. "मारकैः सह सम्बन्धान्निहन्ता पापकृच्छनिः।
अतिक्रम्येतरान् सर्वान् भवत्येव न संशयः" —लघुपाराशरी श्लो० २८

२. "शनि यम एवातो विख्यातो मारकः पुनः।
अन्यमारकसम्बन्धात् प्राबल्यं तस्य संस्फुटम्।।"

से पहले आती हो तो पहले और बाद में आती हो तो बाद में मृत्यु होती है।

इस प्रकार पापी शनि अन्य मारक ग्रहों से सम्बन्ध होने पर उन मारक ग्रहों को अपना मारक-फल देने का अवसर नहीं देता और जब भी उन मारक ग्रहों से आगे या पहले उसकी दशा आती है उस समय में जातक को काल के गाल में पहुँचा देता है।

मुख्य मारक शनि के होने पर-मारक, अमारक एवं अरिष्टप्रद दशा-भुक्ति

लग्न-	मारक दशा भुक्ति-	अरिष्टप्रद दशा भुक्ति-	अमारकदशा
मेष	शनि शुक्र	शुक्र शनि	शुक्र
मिथुन	शनि गुरु	गुरु शनि	गुरु, शनि
कर्क	शनि बुध	बुध शनि	बुध, शुक्र
सिंह	शनि बुध	बुध शनि	चन्द्र, शुक्र
कन्या	शनि गुरु	गुरु शनि	गुरु, मंगल
वृश्चिक	शनि शुक्र	शुक्र शनि	शुक्र, बुध
धनु	शनि बुध	बुध शनि	बुध, शुक्र
मीन	शनि बुध	बुध शनि	बुध, शुक्र

इस विषय में महत्त्वपूर्ण बिन्दुः-

१. पापी शनि जिस मारक ग्रह से सम्बन्ध करता है वह अमारक हो जाता है। अतः मारक ग्रह की दशा में मृत्यु नहीं होती और शनि की दशा में मृत्यु होती है।

२. किन्तु ऐसा अमारक ग्रह राहु से ग्रस्त हो तो वह पुनः मारक बन जाता है।

३. शनि शुभ होते हुए भी मारक ग्रहों से सम्बन्ध होने पर मारक हो जाता है।

४. मुख्य मारक शनि की दशा में शुक्र या अन्य मारक ग्रहों की अन्तर्दशा मृत्युदायक होती है।

५. अमारक शनि स्वयं नहीं मारता। किन्तु मारक शुक्र की दशा में अपनी भुक्ति में मृत्यु देता है।

६. शनि एवं शुक्र दोनों मारक हों और उनमें सम्बन्ध हो तो शुक्र अमारक जो जाता है तथा शनि की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा में मृत्यु होती है।

७. मारक या अमारक शनि का मारक शुक्र से सम्बन्ध हो तो शनि की मारक होता है।

८. मारक शनि के साथ राहु या केतु बैठे हों तो राहु या केतु मारक हो जाते हैं।

९. शनि का जिस पाप ग्रह से सम्बन्ध हो उसका शुक्र के साथ सम्बन्ध तो शुक्र मारक हो जाता है।

१०. मारक शनि से मारक शुक्र का सम्बन्ध न हो तो शुक्र मारक रहता है।

११. शनि-शुक्र, शुक्र-बुध, गुरु-मंगल, सूर्य-चन्द्र, गुरु-सूर्य एवं सूर्य-मंगल परस्पर मित्र होते हैं। इनमें शनि एवं शुक्र अभिन्न मित्र हैं। अतः ये दोनों मारक या कारक होने पर अपना फल एक-दूसरे की दशा-अन्तर्दशा मे देते हैं। इसी प्रकार अन्य मित्र भी मारक होने पर एक-दूसरे की दशा-अन्तर्दशा में मृत्युदायक हो जाते हैं।

49. आयुनिर्णय के प्रसंग में स्मरणीय बिन्दु

१. आयु निर्णय सचमुच में एक जटिल कार्य है। क्योंकि जन्म-मृत्यु का रहस्य गूढ़ तथा उसको जानने का मार्ग भी गहन है। अतः फलित ज्योतिष में किसी एक नियम या मत से बंधकर आयु का निर्णय नहीं किया गया।

२. आयु का निर्णय करने के लिए चार रीतियाँ प्रमुख हैं- १. अल्पायु, मध्यमायु एवं दीर्घायु योग, २. लग्नेश-अष्टमेश आदि की चर आदि राशियों में स्थिति, ३. अंशायु आदि स्पष्टीकरण एवं ४. मारकेश ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा।

३. इन सब रीतियों से परिणाम में एकरूपता होने पर निर्धारित मृत्यु-काल असंदिग्ध होता है।

४. किन्तु एक-रूपता न होने पर प्रथम तीन रीतियों से आयु खण्ड का निर्धारण करना चाहिए। क्योंकि पराशर, जैमिनी आदि सभी का मत है कि जातक की मृत्यु निर्धारित आयु खण्ड में ही होगी। आयु खण्ड निर्धारित कर उस समय में जिस मारक ग्रह की दशा उपलब्ध हो वह ग्रह मारकेश होता है।

५. आयु निर्णय की रीतियों से किसी व्यक्ति की आयु अल्पायु-खण्ड में हो और उस समय किसी मारक ग्रह की दशा न मिलती हो तो ऐसी स्थिति में कभी-कभी शुभ ग्रह या अष्टमेश की दशा में मृत्यु हो जाती है।

६. यदि किसी मनुष्य की आयु मध्यमायु खण्ड में हो और मारक ग्रहों की दशा अल्पायु खण्ड में हो तो इन ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा में कष्ट एवं अरिष्ट मिलता है मृत्यु नहीं होती। उसकी मृत्यु मध्यमायु के कालखण्ड में आने वाली मारक ग्रह की दशा में होती है। यदि वहाँ भी मारक ग्रह की दशा उपलब्ध न हो तो केवल पापी ग्रह, अष्टमेश या शुभ ग्रह की दशा में मृत्यु होती है।[१]

७. यदि उक्त रीतियों से मनुष्य की आयु दीर्घायु खण्ड में हो तो अल्प एवं मध्य आयु खण्ड में आने वाली मारक ग्रहों की दशा अरिष्ट मात्र देती है। उस समय में व्यक्ति को मृत्यु तुल्य कष्ट एवं संकट हो

---

१. (i) "केवलानां च पापानां दशासु निधनं क्वचिद्।
कल्पनीयं बुधैः नृणां मारकणामदर्शने।।"
(ii) "क्वचिच्छुभानां च दशास्वष्टमेश दशासु च।" —लघुपाराशरी श्लो० २६-२७

सकता है। किन्तु मृत्यु नहीं होती। उसकी मृत्यु दीर्घायु खण्ड में आने वाली मारक ग्रह की दशा में होती है। ऐसा लघुपाराशरी का मत है।

८. किन्तु इस मत को लघुपाराशरीकार ने नियामक नहीं माना। इस विषय में उनका कहना है कि ऐसा बहुधा होता है क्योंकि इसके अपवाद भी हैं।

९. इस नियम का एक अपवाद यह है कि यदि शनि त्रिषडायाधीश या अष्टमेश हो और उसका मारक ग्रहों से सम्बन्ध हो तो उस शनि की जब भी दशा आती है तभी जातक की मृत्यु होती है। अर्थात् ऐसा होने पर अन्य मारक ग्रहों की दशा या निश्चित आयु खण्ड में मृत्यु होना निश्चित नहीं है।

१०. मारक प्रकरण में मारक ग्रहों का परस्पर सम्बन्ध होना या पापी ग्रहों से सम्बन्ध होना मारक फल को असंदिग्ध बनाता है।

११. जबकि द्वितीयेश, अष्टमेश एवं द्वादशेश का लग्नेश या नवमेश होना उसकी मारकता को संदिग्ध बनाता है।

१२. मृत्यु निश्चित भी है और अपरिहार्य भी। अतः प्रत्येक जातक की मृत्यु अवश्य होगी। पर वह कब होगी? इस प्रश्न का विचार सभी रीतियों से करना चाहिए और उन रीतियों के परिणामों का गम्भीरतापूर्वक मनन कर सर्वसम्मत या बहुसम्मत पक्ष के आधार पर मृत्यु का पूर्वानुमान करना चाहिए।

१३. राहु या केतु लग्न, सप्तम, अष्टम या द्वादश में हो अथवा मारकेश में सप्तमेश में हो या मारकेश के साथ हो या पापी ग्रहों से युत दृष्ट हो तो उसकी दशा में मृत्यु होती है।

१४. सूर्य एवं चन्द्रमा संदिग्ध मारक और शनि, राहु एवं मंगल असंदिग्ध मारक होते हैं। षष्ठ एवं अष्टम भाव में त्रिषडायाधीश के साथ स्थित राहु असंदिग्ध मारक होता है।

१५. मारकेश अपने से सम्बन्ध होने पर भी त्रिकोणेश या लग्नेश की अन्तर्दशा में नहीं मारता जबकि वह सम्बन्ध न होने पर भी त्रिषडायाधीश या अष्टमेश की दशा में मृत्यु देता है।

उदाहरण-

कुण्डली संख्या २९

कुण्डली संख्या ३३

कुण्डली संख्या ७

कुण्डली संख्या २९ एक प्रसिद्ध राजनेता की है, जिन्होंने दो बार भारत के कार्यवाहक प्रधान मंत्री का दायित्व निभाया और अच्छी आयु भोगकर बुध की दशा में मंगल की अन्तर्दशा में महाप्रयाण किया। इनकी मृत्यु के समय सप्तमेश (मारक) बुध की दशा में द्वितीयेश (मारक) मंगल की अन्तर्दशा चरम रही थी।

कुण्डली संख्या ३३ भारत के उस प्रधान मंत्री की है, जिनके अंगरक्षकों ने उनके निवास में उनकी हत्या कर दी। मृत्यु के समय उनको शनि की दशा में राहु की अन्तर्दशा चल रही थी। इस कुण्डली में शनि सप्तमेश एवं अष्टमेश (मारकेश) है तथा षष्ठ स्थान में एकादशेश शुक्र के साथ स्थित राहु भी मारक है।

कुण्डली संख्या ७ ब्रिटेन की प्रसिद्ध युवराज्ञी की है, जिनकी आकस्मिक दुर्घटना पर पूरा देश स्तब्ध एवं शोक ग्रस्त हो गया था। इनकी मृत्यु गुरु की दशा में राहु की अन्तर्दशा में हुई। इनकी कुण्डली में गुरु-केवल पापी है तथा राहु मारकेश-मंगल के साथ पाप स्थान (एकादश में) होने से मारक है।

दशाफलाध्याय

50. दशा-फल

भारतीय ज्योतिष शास्त्र में फल शब्द कर्मफल का वाचक एवं बोधक है। क्योंकि कर्मफल वर्तमान जीवन में उसके घटनाचक्र के रूप में घटित होते हैं, अतः जीवन में घटित होने वाली घटनाओं को अथवा जीवन के घटनाचक्र को भी फल कहते हैं। कर्मफल जन्म जन्मान्तरों में अर्जित कर्मों का फल होता है, जिसे यह शास्त्र ठीक उसी प्रकार अभिव्यक्ति देता है जैसे दीपक अन्धकार में रखे हुए पदार्थों का स्पष्ट रूप से बोध करा देता है।[१]

कर्मवाद के सिद्धांतानुसार जन्म जन्मान्तरों में अर्जित कर्म तीन प्रकार के होते हैं- १. संचित, २. प्रारब्ध एवं ३. क्रियमाण। इन त्रिविध कर्मों के फल को जानने के लिए ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तक महर्षियों ने तीन पद्धतियों का आविष्कार एवं विकास किया है, जिन्हें होराशास्त्र में १. योग २. दशा एवं ३. गोचर कहा जाता है।

कर्मफल

संचितफल	**प्रारब्धफल**	**क्रियमाणफल**
योग	**दशा**	**गोचर**

संचित कर्म परस्पर विरोधी होते हैं इसलिए उनके फल के सूचक योग भी परस्पर विरोधी होते हैं। क्योंकि संचित कर्म एवं ग्रहयोग में

---

१. "यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पंक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत्तमसि द्रव्याणि दीप इव।।"

कर्म-कारण सम्बन्ध हैं जैसे काली मिट्टी से काला घड़ा बालू मिट्टी से लाल घड़ा, पीली मिट्टी से पीला घड़ा या सफेद धागे से सफेद कपड़ा और रंगीन धागों से रंगीन कपड़ा बनता है; उसी प्रकार परस्पर विरोधी संचित कर्मों के परिणाम के सूचक योग भी परस्पर विरोधी होते हैं। इस प्रसंग में अरिष्टयोग एवं उसके भंग तथा राजयोग एवं उसके भंग को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है।

इस विषय में एक बात ध्यान रखने योग्य है कि जैसे समस्त कर्मों का फल मनुष्य को वर्तमान जीवन में नहीं भोगना होता-अपितु उन्हें भोगने के लिए जीव को अनेकों जन्म लेने पड़ते हैं। उसी प्रकार समस्त योगों का फल भी मनुस्य को वर्तमान जीवन में नहीं मिलता, अपितु योगों के समस्त फल भोगने के लिए कई जन्म लग जाते हैं। अत: समस्त योगों का फल मनुष्य को उसके जीवनकाल में नहीं मिलता। समस्त योगों में से केवल उन्हीं योगों का फल मनुष्य को अपने जीवन में मिलता है, जिनकी दशा उसके जीवनकाल में आती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मनुष्यों को उसकी कुण्डली के समस्त योगों फल नहीं मिल पाता इसीलिए जीवन के घटनाचक्र का पूर्वानुमान करने में योगों के फल की अपेक्षा दशा-फल अधिक उपयोगी होता है।

50. दशाफल के भेद

जातक ग्रन्थों में दशाफल तीन प्रकार का मिलता है। १. सामान्यफल २. योगफल एवं ३. स्वाभाविकफल।

दशाफल

सामान्यफल **योगफल** **स्वाभाविकफल**

४० प्रमुख आधार प्रमुख योग=८३२ २० आधार ६ आधार

स्वभाव अन्यभाव योगज सधर्म दृष्टि युति

(i) सामान्यफल

दशाकाल में ग्रहों का जो फल उनकी स्थिति, युति, दृष्टि, बल एवं अवस्था के आदि के अनुसार सभी जातकों को मिलता है-वह सामान्य फल कहलाता है। यह सामान्य फल विविध चालीस आधारों पर निर्णीत होने के कारण ४० प्रकार का होता है। इस फल के निर्णायक प्रमुख आधार इस प्रकार हैं- १. परमोच्च २. उच्च ३. आरोही ४. अवरोही ५. परमनीच ६. नीच ७. मूलत्रिकोण ८. स्वगृही ९. अतिमित्र गृही १०. मित्रगृही ११. समगृही १२. शत्रुगृही १३. अतिशत्रु गृही १४. उच्चनवांशस्थ १५. नीचनवांशस्थ १६. वर्गोत्तमस्थ १७. शत्रुनवांशस्थ १८. शुभषष्ठ्यंशस्थ १९. पापषष्ठ्यंश २०. परिजातादिवर्गस्थ २१. शुभद्रेष्काणस्थ २२. क्रूरद्रेष्काणस्थ २३. उच्चस्थ के साथ २४. शुभग्रह के साथ २५. पापग्रह के साथ २६. नीचस्थ ग्रह के साथ २७. शुभदृष्ट २८. पापदृष्ट २९. स्थानबली ३०. दिग्बली ३१. कालबली ३२. चेष्टाबली ३३. नैसर्गिकबली ३४. क्रूराक्रान्त ३५. बलहीन ३६. मार्गी ३७. वक्री ३८. अवस्थानुसार ३९. राशि में स्थिति के अनुसार तथा ४०. भाव में स्थिति के अनुसार।

(ii) योगफल

होराग्रन्थों में अनेक प्रकार के योगों का वर्णन मिलता है। "सर्वेषां च फल स्वपाके"- इस नियम के अनुसार सब योगों का फल उन योगकारक[१] ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा में मिलता है। यह योगफल विशेष फल है। क्योंकि जिस जातक की कुण्डली में जो-जो योग होते हैं। उनका फल उस व्यक्ति का उन-उन ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा में मिलता है।

होराग्रन्थों में प्रतिपादित समस्त योगों की संख्या और उनके भेदोपभेदों का कहीं भी एक स्थान पर संकलन नहीं हो पाया है। फिर भी अनेक प्रसिद्ध एवं उपलब्ध होराग्रन्थों के कोष का निर्माण करने के लिए किए गये एक संकलन में प्रमुख योगों की संख्या ८३२ मिलती है।

---

१. योगों को बनाने वाला ग्रह।

इस संख्या में द्विग्रह आदि योग, अरिष्टयोग, अरिष्टभंग योग, आयुयोग, षोडशवर्ग योग, संन्यास योग और स्त्री योगों का समावेश नहीं है।

८३२ योगों से अवशिष्ट योगों को निम्नलिखित २२ वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है- १. प्रमुखयोग (लगभग ८३२) २. द्विग्रह योग ३. त्रिग्रह योग ४. चतुर्ग्रह योग ५. पंचग्रह योग ६. षड्ग्रह योग ७. सप्तग्रह योग ८. अष्टग्रह योग ९. अरिष्ट योग १०. अरिष्टभंग योग ११. षोडशवर्ग योग १२. राजयोग १३. स्त्रीजातक योग १४. राजयोग १५. अल्प-मध्य-दीर्घायु योग १६. धन योग १७. दरिद्री-भिक्षु-रेका योग १८. व्यवसाय योग १९. कारकांश योग २०. स्वांश योग २१. पद योग एवं २२. उपपद् योग। इन २२ प्रकार के योगों के ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा में इनका योगफल मिलता है।

(ii) स्वाभाविक फल

ग्रहों के आत्म भावानुरूपी फल को स्वाभाविक फल कहते हैं। यह फल मुख्य रूप से भाव सम्बन्ध एवं सधर्म पर आधारित होता है। दशाफल से सामान्य एवं योगफल की तुलना में यह स्वाभाविक फल निर्णायक होता है।

क्योंकि ग्रहों का सामान्यफल एवं योगफल इन दोनों में बहुधा विरोधाभास लगा रहता है; जैसे कोई भी ग्रह उच्च राशि में होने के नवांश में तथा नीच राशि में होने पर उच्च आदि के नवांश में हो सकता है। इसी प्रकार कोई भी ग्रह केन्द्र में स्थितिवशात् पंच महापुरुष योग बनाने के साथ रेका योग या मारक योग बना सकता है। अथवा मालिका योग के साथ-साथ कालसर्प योग बना सकता है। सम्भवतः इन्हीं कारणों से लघुपाराशरी में ग्रहों के सामान्य एवं योगफल का विचार नहीं किया गया।

इन सब विरोधाभासों को ध्यान में रखकर इससे बचने तथा फल में एकरूपता रखने के लिए ही लघुपाराशरी में विंशोत्तरी दशा के आधार

पर ग्रहों के स्वाभाविक फल का प्रतिपादन किया गया है।[१] ग्रहों के स्वाभाविक फल की यह प्रमुख विशेषता है कि इसमें परिवर्तन होता तो है किन्तु वह सकारण होता है और उसकी तर्क पूर्ण व्याख्या की जा सकती है। ग्रहों के सामान्य एवं योगफल में विरोधाभास जितना सांयोगिक है ग्रहों के स्वाभाविक फल में विरोधाभास उतना सांयोगिक नहीं है।

क्योंकि स्वाभाविक फल में विरोधाभास लगता है पर होता नहीं है-जैसे "योगकारक ग्रहों से सम्बन्ध होने पर पापी ग्रह भी अपनी अन्तर्दशा में योगज फल देते हैं।[२] यहाँ प्रथम दृष्टि में लगता है कि योगकारक ग्रह की दशा में पापी ग्रह की अन्तर्दशा में योगजफल मिलना एक विरोधाभास है। क्योंकि योगकारक एवं पापी ग्रह आपस में विरुद्ध धर्मी होते हैं। किन्तु वास्तविकता में इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध इस विरोधाभास को दूर करने में सक्षम है। कारण यह है कि कोई भी ग्रह अपना आत्मभावानुरूपी (स्वाभाविक फल) अपनी दशा और अपने सम्बन्धी या सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा में देता है।[३] इस नियम के अनुसार योगकारक ग्रह का योगजफल उसकी दशा में उसके सम्बन्धी (पाप या शुभ) ग्रह की अन्तर्दशा में मिलना नियम, तर्क एवं युक्तिसंगत है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि स्वाभाविक फल में विरोधाभास लगता है-पर होता नहीं है।

52. ग्रहों का आत्मभावानुरूपी या स्वाभाविक फल

ग्रहों का आत्मभावानुरूपी या स्वाभाविक फल वह है जो कि ग्रहों के भाव-स्वामित्व, उनके आपसी सम्बन्ध एवं सधर्म आदि पर आधारित होता है। जैसे समय एवं परिस्थितियों के दबाववश व्यक्ति की मानसिकता में कभी-कभी कुछ अन्तर दिखलाई देने पर भी उसके स्वभाव में अन्तर नहीं पड़ता। लगभग उसी प्रकार ग्रहों के स्वाभाविक फल में बहुधा कोई अन्तर नहीं पड़ता।

---

१. देखिए-लघुपाराशरी श्लो० ३

२. देखिए-तत्रैव श्लो० १९

३. देखिए-तत्रैव श्लो० ३०

एक बात अवश्य है कि इस स्वाभाविक फल का निर्णय करने की प्रक्रिया में कभी-कभी कुछ अन्तर अवश्य दिखलाई देता है जैसे केन्द्राधिपत्य दोष, सदोष केन्द्र-त्रिकोणेश एवं पापी ग्रह, जिनका स्वाभाविक फल शुभ नहीं होता-त्रिकोणेश से सम्बन्ध होने पर परम शुभफलदायक हो जाते हैं।[१] अथवा मारक ग्रहों से त्रिषडायाधीश शनि का सम्बन्ध होने पर मारक ग्रह अमारक हो जाते हैं।[२] वस्तुतः यह अन्तर प्रक्रिया की गतिशीलता का अंग या प्रक्रिया की विविध अवस्थाओं का गुण है। क्योंकि निर्णय की समस्त प्रक्रिया से निर्णीत होकर निकलने के बाद ग्रह का स्वाभाविक-फल बदलता नहीं है। यह अलग बात है कि स्वाभाविक मिश्रित फल में ही विरोधाभास की कल्पना कर उसमें विरोधाभास खोजने या प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाय। वस्तुतः मिश्रित फल मिलाजुला होता है। अतः असमें विरोधाभास लगना स्वाभाविक है किन्तु इसमें भी मिश्रण एक सुनिश्चित मात्रा में होता है और वह तर्क पर आधारित होता है न कि संयोग पर। इसलिए मिश्रित फल के मिश्रण तथा उसकी मात्रा का निर्धारण तर्क एवं नियम के द्वारा किया और बतलाया जा सकता है।

(i) स्वाभाविक फल के प्रमुख आधार

स्वाभाविक फल का निर्धारण निम्नलिखित छः आधारों पर किया जाता है- १. स्वभाव, २. अन्यभाव, ३. योगज, ४. सधर्म, ५. दृष्टि एवं ६. युति। इन छः आधारों पर नियम एवं उपनियमों की प्रक्रिया (अनुशासन) से गुजरने के बाद निर्णीत फल स्वाभाविक फल कहलाता है। इस फल का नाम स्वाभाविक इसलिए है कि इसके निर्णय के उक्त आधारों में सर्वप्रथम एवं सर्वप्रमुख आधार स्व-भाव है। यहाँ स्वभाव का अर्थ अपना भाव है न कि ग्रह की प्रकृति। इसलिए स्वभाव अर्थात् अपने भाव आदि उक्त छः तत्त्वों पर आधारित फल को स्वाभाविक फल कहा जाता है।

---

१. देखिए-लघुपाराशरी श्लो० १५ एवं श्लो० १९

२. देखिए-तत्रैव श्लो० २८

स्वाभाविक फल के मुख्य आधार

स्व-भाव अन्यभाव योगज सधर्मी दृष्टि युति

स्वभाव

ग्रह के अपने भाव को, जिसका वह स्वामी है-स्व-भाव या अपना भाव कहते हैं। इस भाव का गुण-धर्म ग्रह के शुभाशुभ फल का निर्धारक होता है। जैसे-"सभी ग्रह त्रिकोण के स्वामी होन पर शुभ फल और त्रिषडाय के स्वामी होने पर पाप फलदायक होते हैं। तथा भाग्य भाव से बारहवें भाव का स्वामी होने से अष्टमेश शुभफल नहीं देता।[१]

अन्यभाव

ग्रह के फल निर्णय का दूसरा आधार उसका दूसरा भाव है। जैसे एक भाव उसके शुभाशुभ फल का निर्णायक होता है उसी प्रकार दूसरा भाव भी निर्णायक होता है[२]; जैसे-"यदि अष्टमेश लग्न का स्वामी हो तो शुभ फल देता है।[३] द्विर्द्वादशेश अपने अन्य भाव के गुण धर्मानुसार शुभाशुभफल देते हैं।[४] नैसर्गिक क्रूर ग्रह केन्द्रेश के साथ-साथ त्रिकोणेश हो तो शुभफल देते है।[५] तथा केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश यदि अष्टमेश हों तो उनके सम्बन्धमात्र से योगज फल नहीं मिलता।[६]

योगज

यदि केन्द्र एवं त्रिकोण के स्वामियों में आपसी सम्बन्ध हो तो दोषयुक्त होने पर भी वे योगकारक हो जाते हैं।[७] और इस प्रकार दोष होने पर भी शुभफल मिलता है। इसलिए योगकारकता को स्वाभाविक फल

---

१. देखिए-तत्रैव श्लो० ९
२. देखिए-उद्योतटीका श्लो० ४
३. लघुपाराशरी श्लो० ९
४. तत्रैव श्लो० ८
५. तत्रैव श्लो० १२
६. तत्रैव श्लो० २२
७. तत्रैव श्लो० १५

का आधार माना जाता है। इसी प्रकार "केन्द्र या त्रिकोण में स्थित राहु अथवा केतु का त्रिकोणेश या केन्द्रेश से सम्बन्ध होना-उन्हें योगकारक बना देता है।[१]

सधर्मी

एक-समान गुण धर्म वाले ग्रह परस्पर सधर्मी होते हैं जैसे त्रिकोणेश-त्रिकोणेशों का, केन्द्रेश-केन्द्रेशों का त्रिषडायाधीश -त्रिषडायाधीशों का, कारक-कारकों का तथा मारक-मारकों का सधर्मी होता है। यह सधर्मी ग्रह भी फल निर्णय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः स्वाभाविक फल का एक आधार माना जाता है, जैसे- केन्द्रपति अपनी दशा एवं त्रिकोणेश की भुक्ति में शुभफल देता है।[२] राहु एवं केतु नवम या दशम में हो तो सम्बन्ध न होने पर भी योगज कारक की दशा में योगकारक होते हैं।[३] मारकग्रह स्वयं में सम्बन्ध न होने पर भी पापग्रह की अन्तर्दशा में मारता है।[४] यहाँ सम्बन्ध न होते हुए भी सधर्मता के प्रभाववश फल मिल रहा है।

दृष्टि

ग्रहों की परस्पर दृष्टि एक महत्त्वपूर्ण आधार हैं जो दृष्टि-सम्बन्ध या अन्यतर दृष्टि सम्बन्ध द्वारा ग्रहों के फल में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर देती है। अतः दृष्टि को दशाफल का प्रमुख आधार माना जाता है उदाहरणार्थ- "यदि राहु या केतु केन्द्र अथवा त्रिकोण में स्थित हो और वे यथाक्रमेण त्रिकोणेश या केन्द्रेश से युत या दृष्ट हों तो योगकारक होते हैं।[५] वस्तुतः चतुर्विध सम्बन्धों में दो सम्बन्ध-दृष्टिसम्बन्ध एवं अन्यतर

---

१. तत्रैव श्लो० २१

२. तत्रैव श्लो० ३२

३. तत्रैव श्लो० ३६

४. तत्रैव श्लो० ३९

५. "यदि केन्द्र त्रिकोणे वा निवसेतां तमोग्रहो।
नाथेनान्यतेरेणाढ्यौ दृष्टौ वा योगकारकौ।।" -बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० १७

दृष्टिसम्बन्ध-दृष्टि पर आधारित होते हैं। अतः दृष्टि को दशाफल का आधार माना गया है।

युति

ग्रहों की आपसी युति दशाफल का निर्णायक आधार है। क्योंकि इसकी ग्रहों के शुभाशुभ फल का निर्धारण करने में निर्णायक भूमिका होती है। यथा- "द्वितीयेश एवं द्वादशेश अन्य ग्रहों के साहचर्य (युति) के अनुसार शुभाशुभ फल देते हैं।[१] राहु एवं केतु जिस भावेश से युत हो, उसके अनुसार शुभाशुभ फल देते हैं।[२] इसके अलावा चतुर्विध सम्बन्धों में युति एक सम्बन्ध है जो ग्रहों के फल में कभी-कभी चमत्कार या परिवर्तन पैदा करता है। अतः युति को दशाफल के निर्धारण का प्रमुख आधार माना गया है।

(ii) स्वाभाविक फल के प्रमुख छः या चार

इस प्रसंग के कुछ लोग कह सकते हैं कि यदि स्वभाव, अन्यभाव, सम्बन्ध एवं सधर्म इन चारों को स्वाभाविक फल का आधार मान लिया जाय तो योग, दृष्टि एवं युति का सम्बन्ध में अन्तर्भाव होने के कारण उन सभी का इन चारों में समावेश हो जायेगा और स्वाभाविक फल के निर्धारण में कोई कठिनाई नहीं आयेगी। अपितु आधारों की संख्या छः से घट कर चार हो जाने पर सुविधा रहेगी।

किन्तु योग, दृष्टि एवं युति के साथ पर सम्बन्ध को आधार मानने से लघुपाराशरी के कुछ प्रसंग अछूते रह जाते हैं। जैसे "द्वितीयेश एवं द्वादशेश-अन्य ग्रहों के साहचर्य (युति) से शुभाशुभ फल देते हैं या राहु एवं केतु जिस भावेश से युत हों वैसा शुभाशुभ फल देते हैं"[३] आदि। योगकारकता के प्रसंग को छोड़कर अन्यत्र युति एवं दृष्टि के फल से दो ग्रहों में से एक प्रभावित होता है। जबकि युति/दृष्टि-सम्बन्ध दोनों को

---

१. लघुपाराशरी श्लो० ८

२. लघुपाराशरी श्लो० १३

३. तत्रैव श्लो० ८ एवं १३

प्रभावित करता है। अतः युति एवं दृष्टि का सम्बन्ध में अन्तर्भाव करने से द्वितीयेश, द्वादशेश राहु एवं केतु के शुभाशुभ फल के निर्णय में कठिनाईयाँ आ सकती है। इसलिए स्वाभाविक फल के निर्धारण हेतु चार आधार न मान कर उक्त छः आधारों को ही मानना समीचीन होगा।

(iii) उक्त आधारों की कसौटी का परिणाम

स्वाभाविक फल के उक्त छः आधारों की कसौटी पर कसकर निर्णय करने के परिणामस्वरूप ग्रह छः प्रकार का होता है- १. शुभ, २. योगकारक, ३. पापी, ४. मारक, ५. सम एवं, ६. मिश्रित। शुभ ग्रह के दो भेद होते हैं- १. शुभ तथा २. अतिशुभ। पापी ग्रह के तीन भेद होते हैं-

१. पापी, २. केवल पापी, ३. परम पापी, यथा

ग्रह

शुभ कारक पापी मारक सम मिश्रित

शुभ अतिशुभ पापी केवल पापी परम पापी

शुभ

जो लग्नेश, पंचमेश या नवमेश हो किन्तु त्रिषडायाधीश न हो वह शुभफलदायक होने के कारण शुभ कहलाता है। जैसे मेष लग्न में-मंगल, सूर्य एवं गुरु।

अतिशुभ

जो ग्रह केन्द्र एवं त्रिकोण दोनों भावों का स्वामी हो वह स्वतः कारक होने के कारण अतिशुभ माना जाता है। जैसे वृष एवं तुला लग्न में शनि, कर्क एवं सिंह लग्न में मंगल तथा मकर एवं कुम्भ लग्न में शुक्र अति शुभ होता है।

पापी

तृतीय, षष्ठ एवं एकादश भावों के स्वामी तथा मारकेश ग्रह पापी ग्रह कहलाते हैं। जैसे मेष लग्न में शनि एवं शुक्र।

केवल पापी

जिस ग्रह की दोनों राशियाँ त्रिषडाय में हों या जिस ग्रह की एक राशि त्रिषडाय एवं दूसरी राशि द्विर्द्वादश में हो वह ग्रह केवल पापी कहा जाता है। केवल पाप स्थान का स्वामी होने के कारण उसकी संज्ञा केवल पापी होती है। जैसे मेष लग्न में बुध, वृष लग्न में चन्द्रमा, मिथुन लग्न में सूर्य, तुला लग्न में गुरु, धनु लग्न में शनि तथा कुम्भ लग्न में गुरु आदि।

परमपापी

जिस ग्रह की एक राशि अष्टम में तथा दूसरी राशि त्रिषडाय में हो वह परमपापी कहलाता है। जैसे वृष लग्न में गुरु, कन्या लग्न में मंगल, वृश्चिक लग्न में बुध एवं मीन लग्न में शुक्र।

कारक

जिन दो केन्द्रेश एवं त्रिकोणेशों में परस्पर सम्बन्ध हो और उनमें से कोई अष्टम या एकादश भाव का स्वामी न हो- वे केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश कारक कहलाते हैं। यदि केन्द्र में स्थित राहु या केतु का त्रिकोणेश से सम्बन्ध हो अथवा त्रिकोण में स्थित राहु या केतु का केन्द्रेश से सम्बन्ध हो तो वे भी कारक कहलाते हैं।

मारक

द्वितीयेश एवं सप्तमेश, द्वितीय एवं सप्तम में स्थित त्रिषडायाधीश और द्वितीयेश या सप्तमेश से युत त्रिषडायाधीश प्रमुख मारकेश होते हैं। इसके अलावा विशेष स्थिति में व्ययेश, व्ययेश से सम्बन्धित ग्रह, अष्टमेश एवं केवल पापी भी मारकेश हो जाते हैं।

सम

जो ग्रह शुभ या अशुभ दोनों प्रकार का फल नहीं देते वे सम कहलाते हैं। उदाहरणार्थ मिथुन एवं सिंह लग्न में स्वराशिस्थ चन्द्रमा, कर्क एवं कन्या लग्न में स्वराशिस्थ सूर्य और द्वितीय या द्वादश में स्थित अकेला राहु या केतु।

मिश्रित

जिस ग्रह की एक राशि त्रिकोण में और दूसरी राशि त्रिषडाय या अष्टम में हो वह मिश्रित कहलाता है। क्योंकि वह दोनों भावों का मिलाजुला फल देता है। अतः उसकी संज्ञा मिश्रित होती है, जैसे-मिथुन एवं कन्या लग्न में शनि, कर्क एवं सिंह लग्न में गुरु तथा मकर एवं कुम्भ लग्न में बुध।

इस प्रकार उक्त छः आधारों की कसौटी पर भली-भाँति जाँच-परखकर अन्तिम परिणाम के अनुसार यह निर्णय होता है कि ग्रह शुभ, कारक, पापी, मारक, सम या मिश्रित है। इस अन्तिम निर्णय के आधार पर उसका आत्मभावानुरूपी या स्वभाविक फल निश्चित हो जाता है।

53. ग्रहों की अपनी दशा एवं अन्तर्दशा में स्वाभाविक फल नहीं मिलता

लघुपाराशरी के श्लोक संख्या २९ में एक सामान्य नियम का निर्देश दिया गया है कि सभी ग्रह अपनी दशा एवं अपनी ही अन्तर्दशा के समय में अपना आत्मभावानुरूपी या स्वाभाविक फल नहीं देते।[१] तात्पर्य यह है कि किसी ग्रह की दशा में उसकी अन्तर्दशा के समय में उस ग्रह का स्वाभाविक फल नहीं मिलता। कारण यह है कि फल यौगिक होता है, जैसे हाइड्रोजन एवं आक्सीजन के मिलने से जल बनता

---

१. "न दिशेयुर्ग्रहाः सर्वे स्वदशासु स्वभुक्तिषु।
शुभाशुभफलं नृणामात्मभावानुरूपतः।।" —लघुपाराशरी श्लो० २९

है। उसी प्रकार सम्बन्धी या सधर्मी के मिलने से फल बनता है। इसलिए एक ही ग्रह की दशा में उसी की अन्तर्दशा में उस ग्रह के स्वाभाविक फल का निषेध किया गया है। महर्षि पराशर ने अपने बृहत्पाराशर होराशास्त्र में इस ओर संकेत देते हुए कहा है-

"स्वदशायां स्वभुक्तौ च नराणां मरणं न हि।"

अर्थात् अपनी दशा एवं अपनी ही भुक्ति में मारक ग्रह मनुष्यों को नहीं मारता।

अनुच्छेद ५१ में ग्रहों के आत्मभावानुरूप या स्वाभाविक फल का निर्णय करने के मुख्य आधारों पर परिणामों की विस्तार से चर्चा की गयी है, जिनके आधार पर ग्रह के आत्मभावानुरूप या स्वाभाविक फल का निर्धारण या निर्णय किया जा सकता है।

इस प्रसंग में एक स्वाभाविक प्रश्न उत्पन्न होता है कि ग्रह की दशा में उसी अन्तर्दशा के समय में उसका स्वाभाविक फल नहीं मिलता तो उस समय में कैसा या क्या फल मिलता है? इस प्रश्न का उत्तर होरा ग्रन्थों में दिया गया है- "सर्वेषां फलं चैव स्पाके" अर्थात् सभी ग्रहों की दशा-अन्तर्दशा में उनका साधारण एवं योगफल मिलता है। ग्रहों के सामान्य फल की जानकारी उनके ४० आधारों पर तथा योगफल की जानकारी उनके २२ आधारों पर अनुच्छेद ५० के अनुसार की जा सकती है।

लघुपाराशरी की विषय-वस्तु में दशाफल उसका मुख्य प्रतिपाद्य है और लघुपाराशरीकार ने दशाफल का प्रतिपादन नियम एवं उपनियमों के आधार पर इस प्रकार किया है कि उसमें सर्वत्र नियमितता एवं तर्कसंगति दिखलाई देती है। क्योंकि सामान्य होरा ग्रन्थों में सामान्य एवं योगफल के आधार पर दशाफल बतलाया गया है जो भिन्न-भिन्न आधारों पर भिन्न-भिन्न स्थितियों में भिन्न-भिन्न प्रकार का होने के कारण अनेक प्रकार की कठिनाईयाँ पैदा करता है। वैसी कठिनाई इस ग्रन्थ के दशाफल में नहीं है। हाँ ग्रह का स्वाभाविक फल निर्धारित करने की प्रक्रिया अवश्य लम्बी है और इसीलिए इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक तीन अध्यायों में

ग्रहों के स्वाभाविक फल के निर्णयार्थ आधारभूत सिद्धांतों की विवेचना की गयी है। कौन-सा ग्रह शुभ, पाप, सम या मिश्रित होगा? इसकी विवेचना संज्ञाध्याय में और कौन-सा ग्रह, कारक या मारक होगा? इसकी विवेचना योगाध्याय एवं आयुर्दायाध्याय में की गयी है। इस प्रकार इन तीनों अध्यायों में प्रतिपादित आधारभूत सिद्धांतों के अनुसार ग्रह का स्वाभाविक फल निश्चित हो जाने पर वह फल मनुष्य को उसके जीवनकाल में कब-कब मिलेगा? इस प्रश्न पर इस अध्याय में प्रकाश डाला जा रहा है।

54. ग्रहों की दशा में उनके सम्बन्धी या सधर्मी की अन्तर्दशा में स्वाभाविक फल मिलता है।

दशाधीश ग्रह का जो आत्मभावारूप (स्वाभाविक) शुभ या अशुभ फल है वह मनुष्य को उसके जीवन काल में कब मिलेगा? इस प्रश्न का समाधान करते हुए लघुपाराशरीकार ने बतलाया है कि सभी ग्रह अपनी दशा में अपने सम्बन्धी या सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा के समय में अपना आत्मभावानुरूपी फल देते हैं।[१]

कुछ टीकाकारों ने आत्म सम्बन्धी पद का अर्थ अपनी कल्पनानुसार इस प्रकार किया है-"आत्म सम्बन्धी ग्रह वे होते हैं जो परस्पर मित्र होते हैं अथवा दोनों उच्चस्थ या नीचस्थ होते हैं। यथा सूर्य-चन्द्र, सूर्य-गुरु, सूर्य-मंगल, मंगल-गुरु, बुध-शुक्र तथा शुक्र-शनि ये परस्पर मित्र हैं। कारण वे आत्मसम्बन्धी हैं। इनमें से शनि-शुक्र अभिन्न मित्र हैं। कारण समस्त कुण्डलियों में जहां-जहां शनि केन्द्रेश होता है। वहाँ-वहाँ शुक्र भी केन्द्रेश होता है शनि यदि त्रिकोणेश हो तो शुक्र भी त्रिकोणेश होता है।[२] किन्तु लघुपाराशरी में मित्र ग्रहों, उच्चस्थ या नीचस्थ ग्रहों को सम्बन्धी नहीं माना गया है। यहाँ सम्बन्ध या आत्म सम्बन्ध का अभिप्राय स्थान सम्बन्ध, दृष्टि सम्बन्ध, एकान्तर सम्बन्ध एवं युतिसम्बन्ध इन चार

---

१. "आत्मसम्बन्धिनो ये च ये वा निजसधर्मिणः।
तेषामन्तर्दशास्वेव दिशन्ति स्वदशाफलम्।।" —लघुपाराशरी श्लो०

२. देखिए-लघुपाराशरी भाष्य-दीवान रामचन्द्र कपूर पृ० ७४

सम्बन्धों से है।[१] यदि इस ग्रन्थ के किसी भी प्रसंग में इस ग्रन्थ की विशेष-संज्ञाओं को छोड़कर अन्य होराग्रन्थों की संज्ञाओं को आधार पर उनका विचार एवं निर्णय किया जायेगा तो ग्रहों के शुभत्व, पापत्व, समत्व, मिश्रित, कारकत्व एवं मारकत्व के निरूपण एवं निर्णय में अनेक भ्रान्तियाँ उपस्थित हो जायेंगी। अतः आत्मसम्बन्धी का अर्थ मित्र ग्रह, उच्चस्थ ग्रह या नीचस्थ ग्रह मानना तर्करहित कल्पना मात्र है। क्योंकि इस विषय में लघुपाराशरीकार ने योगाध्याय में नियम एवं उदाहरणों द्वारा स्वयं बतलाया है कि उक्त चार प्रकार के सम्बन्धों में से किसी भी प्रकार का आपस में सम्बन्ध करने वाले ग्रह परस्पर आत्मसम्बन्धी होते हैं।[२] इस विषय में यही मत महर्षि पराशर का भी है।[३]

इसलिए किसी भी ग्रह की दशा में उसके सम्बन्धी ग्रह की अन्तर्दशा के समय में उस ग्रह का स्वाभाविक फल मिलता है। यदि दशाधीश ग्रह का किसी भी ग्रह से सम्बन्ध न हो तो उसके सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा के समय में उसका स्वाभाविक फल मिलता है।

सधर्मी ग्रह का अभिप्राय है-समान गुण-धर्म वाला ग्रह। अतः जिन ग्रहों का गुण-धर्म समान हो वे सधर्मी कहलाते हैं यथा-केन्द्रेश-केन्द्रेश, त्रिकोणेश-त्रिकोणेश, त्रिषडायाधीश-त्रिषडायाधीश, द्विर्द्वादशेश-वे आपस में सधर्मी होते हैं। इसी प्रकार मारक एवं कारक ग्रह भी आपस में सधर्मी होते हैं। इसी प्रकार मारक एवं कारक ग्रह भी आपस में सधर्मी होते हैं। यहाँ धर्म का अर्थ है-धारणाद्धर्म इत्याहु-अर्थात् जिसको धारण किया जाय उस गुण को धर्म कहते हैं। यथा-त्रिकोणेश होने के कारण शुभता एवं त्रिषडायाधीश होने के कारण अशुभता आदि। भावाधीश होने से ग्रहों के गुणधर्मों में अन्तर आता है। क्योंकि एक ही ग्रह भिन्न-भिन्न भावों का स्वामी होकर शुभत्व, पापत्व, समत्व, कारकत्व या मारकत्व धर्म धारण कर लेता है। इसलिए समान गुण-धर्म को धारण करने वाले ग्रह परस्पर

---

१. विस्तृत जानकारी के लिए देखिए अनुच्छेद ३४

२. देखिए-लघुपाराशरी श्लो० १४-१६

३. बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लो० ११-१२

सधर्मी होते हैं और दशाधीश ग्रह का आत्मभावानुरूपी (स्वाभाविक) फल उसके सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा में मिलता है जैसा कहा गया है-

"प्राप्ते सम्बन्धिवर्गे ना सधर्मिणि समागते।
स्वाधिकारफलं केऽपि दर्शयन्ति दिशन्ति च।।

इति संदृश्यते लोके तथा ग्रहगणा अपि।
सम्बन्ध्यन्तर्दशास्वेव दिशन्ति स्वदशाफलम्।।"

55. अन्तर्दशाफल

अनुच्छेद १४ में बतलाया गया है कि ग्रह आपसी सम्बन्ध के आधार पर मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं यथा- १. सम्बन्धी तथा २. असम्बन्धी। ये दोनों गुण-धर्मो के आधार पर चार-चार प्रकार के होते हैं। १. सम्बन्धी-सधर्मी, २. सम्बन्धी-विरुद्धधर्मी, ३. सम्बन्धी-उभयधर्मी तथा ४. सम्बन्धी अनुभयधर्मी और १. असम्बन्धी-सधर्मी, २. असम्बन्धी-विरुद्धधर्मी, ३. असम्बन्धी-उभयधर्मी एवं असम्बन्धी-अनुभयधर्मी।

अन्तर्दशाधीश-ग्रह

सम्बन्धी **असम्बन्धी**

सधर्मी विरुद्धधर्मी उभयधर्मी अनुभयधर्मी- सधर्मी विरुद्धधर्मी उभयधर्मी अनुभयधर्मी

जो ग्रह चतुर्विध सम्बन्धों में किसी प्रकार के सम्बन्ध से परस्पर सम्बन्धित हो-वे सम्बन्धी तथा जो परस्पर सम्बन्धित न हों-वे असम्बन्धी कहलाते हैं। एक जैसे समान गुण-धर्मो वाले ग्रह सधर्मी होते हैं। शुभ एवं अशुभ दोनों प्रकार के गुण धर्मो वाले ग्रह उभयधर्मी और न तो शुभ और न ही अशुभ गुण-धर्मो वाले ग्रह अनुभयधर्मी होते हैं।

सधर्मी आदि ग्रह

सधर्मी ग्रह-केन्द्रेशों का केन्द्रेश, त्रिकोणेशों का त्रिकोणेश, त्रिषडायाधीशों या अष्टमेश, कारकों का कारक तथा मारकों का मारक या द्विर्द्वादशेश सधर्मी होता है।

विरुद्धधर्मी ग्रह- त्रिकोणेश का त्रिषडायाधीश, योगकारक का मारक, अष्टमेश या लाभेश, विरुद्धधर्मी होते हैं।

उभयधर्मी ग्रह- चतुर्थेश, सप्तमेश एवं दशमेश उभयधर्मी होते हैं।

अनुभयधर्मी ग्रह- द्वितीय या द्वादश में स्वराशि में स्थित सूर्य एवं चन्द्रमा तथा अकेले राहु या केतु अनुभयधर्मी होते हैं।

इन आठ प्रकार के ग्रहों में से सम्बन्धी सधर्मी सम्बन्धी-विरुद्धधर्मी, सम्बन्धी उभयधर्मी, सम्बन्धी अनुभयधर्मी एवं असम्बन्धी-सधर्मी इन पाँचों की अन्तर्दशा में दशाधीश का आत्मभावानुरूपी फल मिलता है। क्योंकि इन पाँचों में अन्तर्दशाधीश या तो सम्बन्धी है अथवा सधर्मी है। और श्लोक संख्या ३० के अनुसार दशाधीश अपने सम्बन्धी या सधर्मी की अन्तर्दशा में अपना आत्मभावानुरूप फल देता है।[१]

(i) उदाहरण

(i) सम्बन्धी-सधर्मी

१. "प्राय: योगकारक ग्रहों की दशा एवं अन्तर्दशा में उनसे सम्बन्ध न करने वाले त्रिकोणेश की प्रत्यन्तर दशा में राजयोग घटित होता है।"[२]

२. "योगकारक ग्रह के सम्बन्धी त्रिकोणेश की दशा और योगकारक की भुक्ति में कभी-कभी योगजफल मिलता है।"[३]

(ii) सम्बन्धी विरुद्धधर्मी

१. "स्वभाव से पापी ग्रह भी योगकारक ग्रह से सम्बन्ध होने के कारण-योगकारक की दशा और अपनी अन्तर्दशा में योगजफल देते हैं।"[४]

२. "यदि योगकारक ग्रह की दशा में मारक ग्रह की अन्तर्दशा में

---

१. देखिए--अनुच्छेद ५३
२. लघुपाराशरी श्लो० १८
३. तत्रैव श्लो० ३५
४. तत्रैव श्लो० १९

राजयोग का प्रारम्भ हो तो मारक ग्रह की अन्तर्दशा उसका प्रारम्भ कर उसको क्रमशः बढ़ाती है।"[१]

(iii) सम्बन्धी उभयधर्मी

केन्द्रेश अपनी दशा एवं अपने सम्बन्धी त्रिकोणेश की भुक्ति में शुभफल देता है।[२]

(iv) सम्बन्धी अनुभयधर्मी

"यदि राहु एवं केतु केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हो तब अन्यतर के स्वामी से सम्बन्ध होने पर योगकारक होते हैं।"[३]

(v) असम्बन्धी-सधर्मी

१. "योगकारक ग्रह की दशा और उनके असम्बन्धी शुभ ग्रह की अन्तर्दशा में योगकारी ग्रहों का फल समान होता है।"[४]

(vi) असम्बन्धी-अनुभयधर्मी

नवम या दशमभाव में स्थित राहु या केतु सम्बन्ध न होने पर योगकारक ग्रह की भुक्ति में योगकारक होते हैं।"[५]

(vii) असम्बन्धी विरुद्धधर्मी

१. "यदि दशाधीश पाप ग्रह हो तो उसके असम्बन्धी शुभ ग्रह की अन्तर्दशा पापफलदायक होती है।"[६]

२. "यदि दशाधीश पापग्रह हो तो उसके असम्बन्धी योगकारक ग्रहों की अन्तर्दशाएँ अत्यधिक पापफलदायक होती हैं।"[७]

---

१. तत्रैव श्लो० ३३
२. तत्रैव श्लो० ३२
३. तत्रैव श्लो० २१
४. तत्रैव श्लो० ३४
५. तत्रैव श्लो० ३६
६. तत्रैव श्लो० ३७
७. तत्रैव श्लो० ३८

(viii) असम्बन्धी उभयधर्मी

"दशाधीश के विरुद्ध फलदायी अन्य ग्रहों की भुक्तियों में उनके गुणधर्मों के आधार पर दशाफल निर्धारित करना चाहिए।"[१]

(ii) अपवाद

जिस प्रकार कोई भी सिद्धांत या वाद-चाहे वह दर्शन का हो या विज्ञान का अपवाद से अछूता नहीं रहता। उसी प्रकार लघुपाराशरी के दशा-सिद्धांत में कुछ अपवादों का समावेश है।

शास्त्र का स्वभाव है कि वह सिद्धांतों के साथ-साथ उसके अपवादों का भी प्रतिपादन करता है। क्योंकि शास्त्र एक अनुशासन है और इस अनुशासन की दो प्रमुख विशेषताएँ होती हैं-पहली यह कि यह अनुशासन नियमों एवं आधारभूत सिद्धांतों को समन्वय के सूत्र में बाँधता है तथा दूसरी यह है कि किसी भी नियम या सिद्धांत को व्यर्थ नहीं होने देता। इसलिए सभी शास्त्रों में नियम, वाद एवं सिद्धांतों के साथ-साथ अपवाद अवश्य मिलते हैं।

लघुपाराशरी के ४२ श्लोकों में पहला श्लोक मंगलाचरण, दूसरा प्रस्तावना, ३७ श्लोकों में नियम एवं सिद्धांत तथा ३ श्लोकों में अपवादों का वर्णन एवं विवेचन किया गया है।

अपवाद उन नियमों को कहा जाता है-जो किसी वाद या सिद्धांतों की सीमा में न आते हों और जो वाद या सिद्धांतों के समान तथ्यपूर्ण एवं उपयोगी हों। इसलिए अपवाद के नियम सदैव सिद्धांतों की सीमा से परे होते हैं। लघुपाराशरी में निम्नलिखित ३ अपवाद मिलते हैं, जिनका दशाफल के विचार-प्रसंग में सदैव ध्यान रखना चाहिए।

१. "मारक ग्रह स्वयं से सम्बन्ध होने पर भी शुभग्रह की अन्तर्दशा में नहीं मारता। किन्तु सम्बन्ध न होने पर भी पापग्रह की दशा में मारता है।"[२]

---

१. तत्रैव श्लो० ३१

२. तत्रैव श्लो० ३९

२. शनि एवं शुक्र एक दूसरे की दशा में और अपनी भुक्ति में व्यत्यय से एक-दूसरे का शुभ एवं अशुभ फल विशेष रूप से देते हैं।[1]

३. दशमेश एवं लग्नेश एक-दूसरे के भाव में स्थित हो तो राजयोग होता है और इसमें उत्पन्न व्यक्ति विख्यात एवं विजयी होता है।[2]

56. दशाधीश के विरुद्धफलदायक ग्रहों की अन्तर्दशा का फल

अनुच्छेद ५३ में बतलाया गया है कि प्रत्येक ग्रह अपनी दशा में अपने सम्बन्धी या सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा के समय में अपना स्वाभाविक फल देता है। किन्तु सभी अन्तर्दशाधीश दशास्वामी के सम्बन्धी या सधर्मी नहीं हो सकते। अनुच्छेद ५४ के अनुसार अन्तर्दशाधीशों को निम्नलिखित आठ वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

१. सम्बन्धी-सधर्मी

२. सम्बन्धी-विरुद्धधर्मी

३. सम्बन्धी-उभयधर्मी

४. सम्बन्धी-अनुभयधर्मी

५. असम्बन्धी-सधर्मी

६. असम्बन्धी-विरुद्धधर्मी

७. असम्बन्धी-उभयधर्मी

८. असम्बन्धी-अनुभयधर्मी

इन आठ प्रकार के ग्रहों में से पहले पाँच प्रकार के ग्रह या तो सम्बन्धी अथवा अवशिष्ट सधर्मी होते हैं। अतः इनकी अन्तर्दशा में दशाधीश का आत्मभावानुरूपी फल मिलता है। अवशिष्ट तीन प्रकार के ग्रहों-सम्बन्धी विरुद्धधर्मी, असम्बन्धी-उभयधर्मी एवं असम्बन्धी-अनुभयधर्मी की अन्तर्दशा में कैसा फल मिलेगा? इस प्रश्न का समाधान करने के लिए

---

१. तत्रैव श्लो० ४०

२. तत्रैव श्लो० ४१

लघुपाराशरीकार ने कहा है–"दशाधीश के विरुद्ध फलदायक अन्य ग्रहों की अन्तर्दशा में विद्वानों को उनके फल का भली भाँति अनुगुणन कर फल की कल्पना करनी चाहिए।"[१]

इस प्रसंग में दशानाथ के विरुद्धफलदायक का अर्थ है- वो ग्रह, जो दशानाथ जैसा फल न देते हों। असमान गुण-धर्मो वाले ग्रह परस्पर विरुद्धफलदायक होते हैं। ये विरुद्धफलदायक अन्तर्दशाधीश तीन प्रकार के होते हैं- १. असम्बन्धी विरुद्धधर्मी, २. असम्बन्धी उभयधर्मी एवं ३. असम्बन्धी अनुभयधर्मी।

विरुद्धधर्मी से अभिप्राय उन ग्रहों से है जिनके गुणधर्म समान हों, जैसे त्रिकोणेश एवं त्रिषडायाधीश अथवा कारक एवं मारक आदि। उभयधर्मी उन ग्रहों को कहा जाता है जो शुभ एवं अशुभ दोनों प्रकार का फल देते हैं। जैसे चतुर्थेश, सप्तमेश एवं दशमेश। उभयधर्मी की यह विशेषता होती है कि यह शुभ एवं पाप ग्रहों का आंशिक रूप से सधर्मी और आंशिक रूप से विरुद्धधर्मी होता है। इसमें दोनों प्रकार के गुण-धर्म होने के कारण ही यह उभयधर्मी कहलाता है। और अनुभयधर्मी उन ग्रहों को कहते हैं जो न तो शुभ हो और न ही जो पाप हो जैसे द्वितीयेश एवं द्वादशेश स्वराशिस्थ चन्द्रमा एवं सूर्य। इनमें शुभ एवं पाप दोनों धर्म नहीं होते। अतः ये न तो सधर्मी होते हैं और न ही विरुद्धधर्मी।

लघुपाराशरी के सिद्धांतानुसार ग्रह छः प्रकार के होते हैं- १. शुभ, २. पाप, ३. कारक, ४. मारक, ५. सम एवं ६. मिश्रित। इनमें से शुभग्रहों के शुभ, पापग्रहों के पाप, कारक ग्रहों के कारक, मारक ग्रहों के मारक, सम ग्रहों के सम तथा मिश्रित ग्रहों के मिश्रित सधर्मी होते हैं। जबकि शुभ एवं पाप, कारक एवं मारक, शुभ एवं मारक तथा पाप एवं कारक एक-दूसरे के विरुद्धधर्मी होते हैं। इनमें से मिश्रित ग्रह उभयधर्मी तथा समग्रह अनुभयधर्मी होते हैं। क्योंकि मिश्रित ग्रह में दोनों प्रकार के गुण-

---

१. "इतरेषां दशानाथविरुद्धफलदायिनाम्।
तत्तत्फलानुगुण्येन फलान्युह्यानिसूरिभिः।।" –लघुपाराशरी श्लो० ३१

धर्म होते हैं और मिश्रित को उभयधर्मी एवं सम को अनुभयधर्मी कहा जाता है।

इसलिए विरुद्धधर्मी, उभयधर्मी एवं अनुभयधर्मी-ये तीनों विरुद्धफलदायक होते हैं। किन्तु यदि इनका दशानाथ से सम्बन्ध हो तो ये उस सम्बन्ध के प्रभाववश दशाधीश का स्वाभाविक फल देते हैं जैसा कि लघुपाराशरी के श्लोक संख्या १९, २१, ३२ एवं ३३ में बतलाया गया है।[१] किन्तु यदि इनका दशाधीश से सम्बन्ध न हो तो इनका फल दशानाथ के विरुद्ध होता है।

यहाँ एक स्वाभाविक प्रश्न उत्पन्न होता है-कि दशानाथ के विरुद्धफलदायक-असम्बन्धी विरुद्धधर्मी, असम्बन्धी उभयधर्मी और असम्बन्धी अनुभयधर्मी की अन्तर्दशा में क्या इनका फल समान या असमान होगा? और वह फल कैसा होगा?-इनको जानने के लिए लघुपाराशरीकार ने एक रीति बतलायी है-"यदि अन्तर्दशाधीश दशानाथ का सम्बन्धी या सधर्मी न हो तो उस-उस (असम्बन्धी विरुद्धधर्मी, असम्बन्धी अनुभयधर्मी) के फलों का अनुगुणन कर विभिन्न स्थितियों मे फल की तदनुरूप कल्पना कर लेनी चाहिए।

निर्णायक-सूत्र

इस विषय में निर्णायक सूत्र हैं-"तत्तद् फलानुगुण्येन" लघुपाराशरी के इस सांकेतिक सूत्र का अर्थ है- उन दशाधीश एवं अन्तर्दशाधीश के फलों का अनुगुणन कर फल का निर्धारण करना चाहिए। इस सूत्र का सार 'अनुगुणन' शब्द में अन्तर्निहित है। अनुगुणन का तात्पर्य है-अनु=बार-बार, गुणन=गुणों का मूल्यांकन अर्थात् समग्र परिस्थिति एवं सन्दर्भ में दशाधीश एवं अन्तर्दशाधीश के फलों का गुणों के आधार पर मूल्यांकन करना-अनुगुणन कहलाता है।

उदाहरणार्थ मान लीजिए कि दशानाथ धनदायक तथा अन्तर्दशानाथ धननाशक है-तो इस दशा-अन्तर्दशा में धन लाभ एवं धन नाश दोनों ही

---

१. विस्तृत जानकारी के लिए देखिए अनुच्छेद ५४

फल होंगे। इस विषय में स्मरणीय है कि दशानाथ एवं अन्तर्दशानाथ-इन दोनों में जिसका सामर्थ्य अधिक होगा-अन्ततोगत्वा वैसा ही फल मिलेगा। यदि इस स्थिति में एक ही ग्रह में भावादि स्वामित्वशात् दोनों विरुद्धलक्षण हों, जैसे नवमेश एवं द्वादशेश एक ही ग्रह हो या पंचमेश एवं द्वादशेश एक ही हो अथवा अष्टमेश-नवमेश एक ही हो या पंचमेश-अष्टमेश एक ही ग्रह हो तो ग्रह के गुण-दोषों की समान सत्ता के कारण गुण एवं अवगुणों का नाश हो जायेगा। किन्तु यदि एक ग्रह में एक और दूसरे में एकाधिक गुण हो, जैसे दशाधीश एवं अन्तर्दशाधीश में से एक व्ययेश हो और दूसरा धनेश-पंचमेश या धनेश लग्नेश अथवा धनेश-भाग्येश हो तो धनदायक दो हेतु तथा धननाशाक एक हेतु होने के कारण अनुगुणन के आधार पर (२-१=१) एक धनदायक गुण शेष रहेगा। इसलिए इस उदाहरण में धन लाभ एवं धन नाश के बाद लगभग आधा धन बच जायेगा। इसी प्रकार दशाधीश एवं अन्तर्दशाधीश की सभी स्थितियों का समग्र सन्दर्भ में गुणों के आधार पर मूल्यांकन किया जा सकता है। पाठक चाहे तो इस प्रसंग में अनुच्छेद ३७ में दी गयी-भाव एवं उसके गुणों की तालिका का उपयोग कर सकते हैं।

इस सन्दर्भ में एक बात स्पष्ट है कि दशानाथ के असम्बन्धितविरुद्धधर्मी, उभयधर्मी एवं अनुभयधर्मी ग्रहों की अन्तर्दशा में दोनों का फल मिलता है। इन दोनों के फलों में परस्पर विरुद्धता भी होती है। किन्तु इन दोनों प्रकार के फलों में से किसका फल कम और किसका अधिक होगा? इसका मूल्यांकन उन दोनों के गुणों के आधार पर समग्र दृष्टि से करना चाहिए।

57. सम्बन्ध होने या न होने पर केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश की दशा-अन्तर्दशा का फल

त्रिकोणेश लघुपाराशरी के अनुसार शुभ तथा केन्द्रेश उभयधर्मी होता है। अतः इन दोनों में सम्बन्ध होने पर यह सम्बन्धी-उभयधर्मी और सम्बन्ध न होने पर असम्बन्धी-उभयधर्मी का उदाहरण माना जाता है।

सम्बन्ध होने पर तथा सम्बन्ध न होने पर केन्द्रेश की दशा एवं त्रिकोणेश की भुक्ति में अथवा त्रिकोणेश की दशा एवं केन्द्रेश की भुक्ति में क्या एवं कैसा फल होगा? इस प्रश्न का समाधान करते हुए लघुपाराशरीकार कहते हैं-"कि सम्बन्ध होने पर केन्द्रेश अपनी दशा एवं त्रिकोणेश की अन्तर्दशा में शुभ फल देता है और वह त्रिकोणेश भी अपनी दशा एवं केन्द्रेश की अन्तर्दशा में शुभ फल देता है। यदि उन दोनों में सम्बन्ध न हो तो पाप फलदायक होता है।[१]

कारण यह है कि केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश आपस में सधर्मी नहीं होते। इसलिए इन दोनों में जब तक सम्बन्ध न हो तब तक ये एक-दूसरे की दशा-अन्तर्दशा में पापफल देते हैं जैसा कि कथन है-

उक्तं शुभत्वं सम्बन्धात् केन्द्रकोणेशयोः पुरा।
सम्बन्धेऽत्र शुभं तस्मादसम्बन्धेऽन्यथा फलम्।।

इस प्रकार केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश-इनका आपस में सम्बन्ध हो तो केन्द्रेश की दशा और त्रिकोणेश की अन्तर्दशा में शुभ फल मिलता है। इसी प्रकार त्रिकोणेश की दशा एवं केन्द्रेश की अन्तर्दशा में शुभ फल मिलता है। और इनमें सम्बन्ध न होने पर एक-दूसरे की अन्तर्दशा में पाप फल मिलता है।[२]

यहाँ एक शंका उत्पन्न होती है कि जब केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश में परस्पर सम्बन्ध होगा तो वे योगकारक हो जायेंगे।[३] अतः योगकारक होने के कारण इन दोनों में से किसी एक की दशा में दूसरे की अन्तर्दशा में योगजफल मिलना चाहिए न कि केवल शुभ फल। इस शंका का समाधान इस प्रकार किया जा सकता है कि श्लोक संख्या ३२ में "शुभं दिशेत्" पद का अर्थ "शुभ फल देता है"-यह है न कि योगजफल देता है। अतः मूल श्लोक के अनुसार शुभ फल ही मिलना चाहिए।

---

१. "स्वदशायां त्रिकोणेशभुक्तौ केन्द्रपतिः शुभम्।
दिशेत्सोऽपि तथा नो चेदसम्बन्धेन पापकृत्।।" —लघुपाराशरी श्लो० ३२

२. देखिए—सुश्लोक शतक—दशाध्याय श्लो० २४

३. देखिए—लघुपाराशरी श्लो० १४ एवं श्लो० १५

किन्तु केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश में सम्बन्ध होने पर भी योगज फल क्यों नहीं बतलाया गया? इस प्रश्न का समाधान करने के लिए लघुपाराशरी के टीकाकारों से कुछ हटकर श्लोक संख्या ३२ की नयी व्याख्या करनी होगी।

इस व्याख्या में "पापकृत्" पद को 'केन्द्रवति' तथा 'सोऽपि' का विशेषण मान लिया जाय तो इस प्रश्न तथा उक्त शंका का समाधान हो जाता है, यथा-"पापकृत् केन्द्रेश-सम्बन्ध होने पर अपनी दशा एवं त्रिकोणेश की भुक्ति में शुभ फल देता है। और वह त्रिकोणेश भी पापकृत हो तो सम्बन्ध होने पर अपनी दशा एवं केन्द्रेश की भुक्ति में शुभ फल देता है। किन्तु इन दोनों में सम्बन्ध न हो तो पापकृत केन्द्रेश की दशा एवं त्रिकोणेश की भुक्ति में पाप फल मिलता है। इस व्याख्या की तुलना श्लोक संख्या ३७ से की जा सकती है यथा-"यदि दशानाथ पापी हो तो उससे सम्बन्ध न करने वाले त्रिकोणेश की भुक्ति पाप फल देती है।[१]

यहाँ "पापकृत्" का अर्थ है पाप स्थान का स्वामी होना। अर्थात् जो केन्द्रेश या त्रिकोणेश-त्रि, षड्, आय या अष्टम का स्वामी हो वह पापकृत् या सदोष ऐसे पापकृत् केन्द्रेश की दशा में त्रिकोणेश(यदि वह पापकृत् न हो) की अन्तर्दशा आती है तब शुभ फल ही मिलता है-योगज नहीं।

58. योगकारक की दशा एवं मारक की अन्तर्दशा का फल

सामान्यतया कारक एवं मारक ग्रह एक दूसरे के विरुद्धधर्मी होते हैं। अतः यदि इनमें परस्पर सम्बन्ध न हो तो श्लोक संख्या ३१ के अनुसार पाप फल मिलेगा। किन्तु श्लोक संख्या ३३ में मारक ग्रह की अन्तर्दशा में-"राजयोगस्य प्रारम्भ"-अर्थात् राजयोग का प्रारम्भ बतलाया गया है। राजयोग का फल तभी संभव है जब इनमें सम्बन्ध हो। कारक ग्रह का मारक से सम्बन्ध होने पर श्लोक संख्या ३० के अनुसार कारक

---

१. "पापाः यदि दशानाथाः शुभानां तदसंयुजाम्।
भुक्तयो पापफलदा ....।।" —लघुपाराशरी श्लो० ३७

ग्रह की दशा में उसके सम्बन्धी मारक ग्रह की दशा की अन्तर्दशा के समय में राजयोग का फल मिलना संभव है। इसलिए यह सम्बन्धी विरुद्ध धर्मी का उदाहरण है।

उदाहरण-

कुण्डली संख्या ३४

इस कुण्डली में शनि स्वयं योगकारक है और उसका सप्तमेश मंगल से युति सम्बन्ध होने के कारण में दोनों योग कारक हैं। और द्वितीयेश बुध सप्तम स्थान में स्थित होने के कारण मारक है।

इस व्यक्ति जो कि प्रसिद्ध फिल्म अभिनेता एवं राज्यसभा के सदस्य हैं को दिनांक १८ मार्च १९९१ में शनि की दशा शुरू हुई। इस शनि की दशा में दिनांक २१ मार्च १९९४ तक शनि की अन्तर्दशा में अनुच्छेद ५३ के अनुसार शनि का आत्मभावानुरूप योगजफल नहीं मिला। तदुपरान्त शनि की दशा में दिनांक २८ नवम्बर १९९६ तक बुध की अन्तर्दशा में इन्हे राज्यसभा की सदस्यता मिली। वस्तुतः कारक शनि की दशा में मारक बुध की भुक्ति में इनको राजयोग का फल मिला है। इस फल का अष्टमस्थ केतु एवं षष्ठेश शुक्र की भुक्ति में विस्तार होना चाहिए।

लघुपाराशरी के कुछ टीकाकारों[१] ने श्लोक संख्या ३३[२] के 'प्रथयन्ति' पद के स्थान पर 'प्रलयन्ति' मान कर इसका अर्थ यह माना है-"कि मारक ग्रहों की अन्तर्दशा में राजयोग का प्रारम्भ हो तो वह अन्तर्दशा राजयोग का फल देकर जातक को नष्ट कर देती है। वस्तुतः 'प्रथयन्ति' का अर्थ है-शनैः शनैः या धीरे-धीरे बढ़ाना और 'प्रलयन्ति' का अर्थ है-पूर्णरूपेण या एकदम नष्ट कर देना। किन्तु लघुपाराशरी के जिन २२ संस्करणों का इस समीक्षा के लिए अध्ययन किया गया है तथा लघुपाराशरी की परम्परा के भावकुतूहल, भावार्थरत्नाकर, भावप्रकाश एवं सुश्लोक शतक आदि में सर्वत्र 'प्रथयन्ति' पाठ ही मिलता है।[३] अतः 'प्रथयन्ति' पाठ ठीक है तथा निर्विवाद है। इसकी जगह 'प्रलयन्ति' पाठ मानना उचित नहीं है। वस्तुतः कारक में मारक की भुक्ति राजयोग का फल देती है। किन्तु जातक का तेज, प्रताप एवं सुख उतनी मात्रा में नहीं होता जितना भोगकारक की भुक्ति में होता है।

इस श्लोक में 'पाप भुक्तयः'- यह बहुवचनान्त पद है जो इस बात का ज्ञापक है अन्तर्दशाएँ तीन होनी चाहिए। क्योंकि संस्कृत में तीन या उससे अधिक के लिए बहुवचन का प्रयोग होता है। गम्भीरतापूर्वक ध्यान देने से लगता हे कि यहाँ योगकारक से सम्बन्धित तीन प्रकार के ग्रहों की अन्तर्दशाओं का विवेचन किया गया है। ये ग्रह हैं- १. मारक, २. पाप तथा ३. शुभ ग्रह।

यदि योगकारक ग्रह की दशा में सम्बन्धित मारक ग्रह की अन्तर्दशाएँ हों तो मारक भुक्ति योग फल देती है पाप भुक्ति उसका विस्तार करती है और शुभ भुक्ति पाप भुक्ति की अपेक्षा अधिक विस्तार करती है।

---

१. लघुपाराशरी-मराठी टीका-पं० रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन अ० ४ श्लो० ५

२. "आरम्भो राजयोगस्य भवेन्मारकभुक्तिषु।
प्रथयन्ति तमारभ्य क्रमशः पापभुक्तयः।।" —लघुपाराशरी श्लो० ३३

३. "आरम्भो राजयोगस्य पापमारकभुक्तिषु।
नाम्नैव स भवेद्राजा तेजोहीनोल्पसौख्यभाक्।।"
—सुश्लोक शतक-दशाध्याय श्लो० १

इस प्रकार अन्तर्दशानाथों को- १. मारक, २. पाप एवं शुभ इन तीन वर्गों में रखा जाय तो इनको यथाक्रमेण १. निम्न, २. मध्यम एवं ३. उत्तम कह सकते हैं। मारकेश जो सबसे बुरा ग्रह है जब वह सम्बन्ध के प्रभाव से राजयोग का फल देता है और पापग्रह जो उससे कम बुरा है, वह राजयोग का विस्तार करता है तो शुभ-ग्रह, जो बिल्कुल बुरा नहीं है। वह योगकारक से सम्बन्ध के प्रभाववश राजयोग का अत्यधिक विस्तार करेगा। इस विषय में किसी तर्क-वितर्क की आवश्यकता नहीं है।

59. योगकारक के सम्बन्धी/असम्बन्धी शुभ ग्रह की अन्तर्दशा का फल

सुश्लोक शतक के अनुसार योगकारक ग्रह की दशा में सम्बन्धित शुभ ग्रह की अन्तर्दशा में तेज, सुख, यश एवं धन बढ़ता है। जबकि योगकारक की दशा में असम्बन्धित शुभ ग्रह की अन्तर्दशा के सम फल-अर्थात् विशेष शुभ नहीं होता।[१] किन्तु यहाँ एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि योग कारक ग्रह एवं शुभ ग्रह परस्पर सधर्मी हैं। सम्बन्ध होने पर वह सम्बन्धी और सम्बन्ध न होने पर वह सधर्मी होता है। अतः अनुच्छेद ५३ के अनुसार योगकारक ग्रह का फल उसके सम्बन्धी शुभ ग्रह अथवा असम्बन्धी (सधर्मी) शुभ ग्रह की अन्तर्दशा में मिलना चाहिए। अतः सम्बन्धी शुभ ग्रह की अन्तर्दशा में तेज, सुख, यश एवं धन का बढ़ना जैसा विशेष फल और असम्बन्धी अर्थात् सधर्मी की अन्तर्दशा में सम-अर्थात् साधारण फल मानना उचित नहीं है।[२]

इस विषय में लघुपाराशरीकार का स्पष्ट कथन है-"कि उस (योगकारक) के सम्बन्धी शुभ ग्रहों की अन्तर्दशा में और असम्बन्धी शुभ ग्रहों की अन्तर्दशा में सम फल मिलता है।"[३] यहाँ श्लोक संख्या ३४

---

१. "सम्बन्धी राज्यदातुर्यः शुभस्यान्दर्शा भवेत्।
प्रारम्भे राजयोगस्य तेजः सौख्य यशोऽर्थदा।।
असम्बन्धिशुभस्येह समा चान्तर्दशा भवेत्।।" --तत्रैव श्लो० २-३

२. देखिए-लघुपाराशरी श्लो० ३०

३. "तत्सम्बन्धिशुभानां च तथा पुनरसंयुजाम्।
शुभानां तु समत्वेन संयोगो योगकारिणाम्।।" -लघुपाराशरी श्लो० ३४

में 'समत्वेन' पद का अर्थ है-"समानत्वेन न तु वैषम्येन साधारण्येन वा" अर्थात् समान रूप से न तो विषय रूप से और न ही साधारण रूप से। तात्पर्य यह है कि योगकारक ग्रह की दशा में उसके सम्बन्धी या असम्बन्धी शुभ ग्रह की अन्तर्दशा में फल एक समान मिलता है। क्योंकि शुभ ग्रह योगकारक से सम्बन्ध होने पर सम्बन्धी और सम्बन्ध न होने पर सधर्मी होता है। वस्तुतः यह सम्बन्धी-सधर्मी एवं असम्बन्धी-सधर्मी का उदाहरण है।

यदि तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाय तो योगकारक ग्रह की अन्तर्दशा में योगज फल मिलता है-यह फल विशेष या उत्कृष्ट फल है। और योगकारक की दशा में उसके सम्बन्धी या असम्बन्धी शुभ ग्रह (त्रिकोणेश) की अन्तर्दशा में जो फल मिलता है-वह उससे कम ही होता है।

इस उदाहरण से एक बात साफ हो जाती है कि अपने सधर्मी अन्तर्दशाधीश से दशानाथ सम्बन्ध की अपेक्षा नहीं करता। उसके साथ दशानाथ का सम्बन्ध हो या न हो केवल सधर्मिता के आधार पर वह समान फल देता है-ऐसा श्लोक संख्या ३० का फलितार्थ है। इसीलिए उक्त दोनों स्थितियों में सम्बन्धी सधर्मी तथा असम्बन्धी सधर्मी अन्तर्दशाधीश का फल एक समान बतलाया गया है।

60. कारक के सम्बन्धी शुभ ग्रह की दशा में कारक की भुक्ति का फल

लघुपाराशरी के श्लोक संख्या ३५ में कारक ग्रह के सम्बन्धी शुभग्रह की महादशा में कारक ग्रह की भुक्ति में क्या और कैसा फल मिलेगा? इस बात का प्रतिपादन करते हुए बतलाया गया है-"कि इस (योगकारक) के सम्बन्धी शुक्र ग्रह की (दशा में) योगकारक ग्रहों की भुक्तियों में कभी-कभी या कुछ-कुछ योगज फल मिलता है।"[१] किन्तु

---

१. "शुभस्यास्य प्रसक्तस्य दशायां योगकारकाः।
स्वभक्तिषु प्रयच्छन्ति कुत्रचिद्योगजं फलम्।।" -लघुपाराशरी श्लो० सं० ३५

यह कथन तर्कसंगत या उचित नहीं लगता। क्योंकि योगकारक का शुभ (त्रिकोणेश) से सम्बन्ध होने पर योगजफल का उत्कर्ष होता है। ऐसी स्थिति में कारक ग्रह के सम्बन्धी शुभ ग्रह भी दशा में (उसके सम्बन्धी एवं सधर्मी) योगकारक ग्रह की भुक्ति में निश्चित रूप से राजयोग का फल मिलना चाहिए न कि कदाचित् कभी-कभी या कुछ-कुछ।

इस विषय में सुश्लोक शतककार का मत स्पष्ट एवं तर्कसंगत है। उनका कहना है कि "शुभ ग्रह की दशा में उसके सम्बन्धी योगकारक की अन्तर्दशा में राजसौख्य निश्चित मिलता है।"[१] कारण स्पष्ट है कि यहाँ त्रिकोणेश एवं कारक सम्बन्धी भी है और सधर्मी भी। अतः सम्बन्धी सधर्मी का उदाहरण है। अतः अनुच्छेद ५३ के अनुसार यहाँ निश्चित रूप से योगजफल मिलना चाहिए।

किन्तु हिन्दी प्रायः सभी टीकाओं में यह योगजफल-कदाचिद्, कभी-कभी या कुछ-कुछ मिलता है। यह माना गया है। इसके पीछे मूलश्लोक "स्वभुक्तिषु प्रयच्छन्ति कुत्रचिद् योगजं फलम्"-इस वाक्य को आधार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस वाक्य में 'कुत्रचिद्' शब्द का अर्थ कदाचित्, कभी-कभी या कुछ-कुछ होता है।

यदि योगजफल को कदाचिद् कभी-कभी या कुछ-कुछ ही मानना अभीष्ट हो तो लघुपाराशरी की हिन्दी टीकाओं की प्रतियों के "शुभास्यास्य प्रसक्तस्य" पाठ के स्थान पर नागपुर, पूना, मद्रास एवं रा. ए. केशव गोविन्द परांजे की प्रतियों के "१. शुभस्यास्य वियुक्तस्य" अथवा "२. शुभस्य स्ववियुक्तस्य" पाठ को मान लेना श्रेयस्कर है। क्योंकि इस पाठ को मानने पर इस श्लोक का अर्थ होगा-"कि योगकारक ग्रह से सम्बन्ध न रखने वाले शुभ ग्रह में योगकारक की अन्तर्दशा में कभी-कभी या

---

१. "शुभग्रहास्य सम्बन्धी योगकर्त्ता हि यो ग्रहः।
अस्याप्यन्तर्दशामध्ये राजसौख्यं भवेद् ध्रुवम्।।"
-सुश्लोक शतक-दशाध्याय श्लो० २५

कुछ-कुछ योगजफल मिलता है।" यह अर्थ तर्कसंगत एवं उचित है। सुश्लोक शतक में बतलाया गया है-"यदि योगकारक और शुभ ग्रह का सम्बन्ध नहीं होगा तो सधर्मी होने के कारण शुभ ग्रह की महादशा में योगकारक का शुभ फल तो होगा किन्तु उतना नहीं जितना सम्बन्ध होने से होता।"[१] इस पाठान्तर के आधार पर यह असम्बन्धी-सधर्मी का उदाहरण बन जाता है।

61. शुभ स्थान में स्थित राहु-केतु की दशा में असम्बन्धी ग्रहों का फल-

इस विषय में लघुपाराशरीकार का कथन है-"कि राहु एवं केतु शुभ स्थान में आरूढ़ (स्थित) हों तो (किसी योगकारक से) सम्बन्ध न होने पर भी योगकारक ग्रह की अन्तर्दशा में योगकारक होते हैं।[२]

इस प्रसंग में शुभ स्थान का अर्थ कुछ आचार्यों ने त्रिकोण स्थान तो कुछ अन्य आचार्यों ने चतुर्थ दशम स्थान माना है। किन्तु यदि ऐसा मान लिया जाय तो श्लोक संख्या ३० से काम चल जायेगा और श्लोक संख्या ३६ की रचना की आवश्यकता नहीं रहेगी।

यदि शुभ स्थान का अर्थ केवल त्रिकोण स्थान मान लिया जाय तो पंचम में राहु या केतु में से एक के रहने पर दूसरा एकादश में रहेगा तथा नवम में राहु या केतु में से एक के रहने पर दूसरा तृतीय में रहेगा। इस स्थिति में पंचमस्थ राहु या केतु का एकादशस्थ केतु या राहु से सम्बन्ध क्या इनकी कारकता को प्रभावित नहीं करेगा? क्योंकि एकादशस्थ राहु या केतु लाभेश के समान होता है और लाभेश तथा अष्टमेश का सम्बन्ध राजयोग को भंग कर देता है। अतः शुभ स्थान का अर्थ "कर्मधर्मों शुभौ प्रोक्तौ"-के अनुसार नवम एवं दशम स्थान में दोनों शुभ स्थान हैं। धर्म

---

१. देखिए-सुश्लोक शतक-गोपेश कुमार ओझा पृ० ९३-९४ मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली सन् १९९४

२. "तमोग्रहौ शुभारूढावसम्बन्धेन केनचित्।
अन्तर्दशानुसारेण भवेतां योगकारकौ।।" —लघुपाराशरी श्लो० ३६

स्वभावतः शुभ स्थान है और कर्म बिना धर्म हो ही नहीं सकता। वस्तुतः धर्म एवं कर्म एक दूसरे के पूरक होते हैं तथा लघुपाराशरी के अनुसार ये दोनों शुभ स्थान भी हैं। इस विषय में श्लोक सुख्या १६, २२, ४१ एवं ४२ को साक्ष्य माना जा सकता है। इसलिए शुभ स्थान का अर्थ नवम एवं दशम स्थान मानना चाहिए।

राहु एवं केतु जिस भाव में हों, उस भाव के अनुसार फल देते हैं। इसलिए नवमस्थ राहु-केतु नवमेश के समान और दशमस्थ राहु-केतु दशमेश के समान शुभ फलदायक होते हैं। यदि इनका योगकारक ग्रह से सम्बन्ध हो तो ये अनुच्छेद ५३ के अनुसार योगजफलदायक हो जायेंगे। किन्तु यदि इनका योगकारक से सम्बन्ध न हो तो इनका फल कैसा होगा? इस प्रश्न का विचार एवं निर्णय करने के लिए श्लोक संख्या ३६ की रचना की गयी है और इस श्लोक में बतलाया गया है कि राहु-केतु यदि नवम या दशम स्थान में हों, तो इनकी दशा में इनसे असम्बन्धी कारक की अन्तर्दशा में योगजफल मिलता है। यह असम्बन्धी सधर्मी का उदाहरण है।

(i) उदाहरण

कुण्डली संख्या ३५

इस कुण्डली में राहु दशम (शुभ) स्थान में स्थित है। तथा लग्नेश एवं दशमेश युति के कारण श्लोक संख्या ४१ के अनुसार राजयोग है।

इनको दिनांक १८ नवम्बर, १९९५ से १७ नवम्बर, १९९८ के मध्य राहु की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा के समय में दो बार भारत का प्रधान मंत्री पद मिला। शुक्र के अष्टमेश होने के कारण प्रथम बार में राजयोग का भंग होना और कारक की अन्तर्दशा के कारण पुनः योगज फल मिलना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

इस कुण्डली में कर्क राशि में केन्द्रस्थ राहु पराशर के अनुसार राजयोग कारक है, यथा-

अजकर्कालिकन्यैण युग्मस्थ केन्द्रगः फणी।
पाराशरमुनिप्राह राजयोगकरः स्वयम्।।

अर्थात् मेष, कर्क, वृश्चिक, कन्या, मकर या मिथुन राशि में केन्द्र स्थान में राहु हो तो पाराशर का कथन है कि वह स्वयं राजयोग कारक होता है।

(ii) निष्कर्ष

१. नवम या दशम में स्थित राहु एवं केतु की दशा में असम्बन्धित योग कारक की अन्तर्दशा में योगजफल मिलता है।

२. नवम या दशम में स्थित राहु-केतु की दशा में असम्बन्धित त्रिकोणेश की भुक्ति में शुभ फल मिलता है।

३. नवम या दशम में स्थित राहु-केतु की दशा में असम्बन्धित केन्द्रेश की भुक्ति में अल्प मात्रा में शुभ फल मिलता है।

४. नवम या दशम में स्थित राहु-केतु की दशा में सम्बन्धी कारक की भुक्ति में विशेष योगजफल मिलता है।

५. नवम में स्थित राहु-केतु की दशा में सम्बन्धित त्रिकोणेश की भुक्ति में पूर्ण शुभ फल मिलता है।

६. दशम में स्थित राहु-केतु की दशा में सम्बन्धित त्रिकोणेश की भुक्ति में योगज फल मिलता है।

७. त्रिकोणेस्थ राहु-केतु की दशा में असम्बन्धित कारक ग्रह की भुक्ति में परिस्थितिवश योगज या शुभ फल मिलता है।

(iii) तारतम्य

शुभ भावों में राहु-केतु की स्थिति के अनुसार फल में इस प्रकार तारतम्य होता है-

१. दशम में स्थित राहु या केतु दशा में असम्बन्धी कारक की भुक्ति में योगजफल सर्वाधिक होता है।

२. उससे कम योगज फल नवमस्थ राहु-केतु की दशा में असम्बन्धी कारक की भुक्ति में होता है।

३. उससे कम योगज फल चतुर्थस्थ राहु-केतु की दशा में असम्बन्धी कारक की भुक्ति में होता है।

४. सबसे कम योगज फल पंचमस्थ राहु-केतु की दशा में असम्बन्धी कारक की भुक्ति में होता है।

५. यदि नवम या दशमस्थ राहु-केतु की दशा में सम्बन्धित कारक की अन्तर्दशा हो तो योगज फल परम मानना चाहिए।

मिश्रफलाध्याय

62. मिश्रफल

साधारण दृष्टि से मिश्रफल का अर्थ होता है-मिलाजुला या मिश्रित फल। यदि मिश्रफल का अर्थ मिलाजुला या मिश्रित फल मान लिया जाय तो इस अध्याय के श्लोक संख्या ३७, ३८, ३९, ४० एवं ४१ इन पाँच श्लोकों में केवल एक स्थान पर श्लोक संख्या ३८ में "भवन्ति मिश्रफलदा"-यह वाक्यांश मिश्रित या मिले-जुले फल का प्रतिपादक है और इस वाक्यांश को छोड़कर इस पूरे अध्याय में कहीं भी मिश्रफल की चर्चा नहीं मिलती। क्या इस पूरे अध्याय में केवल एक वाक्यांश में मिश्रफल की चर्चा मात्र से इस सम्पूर्ण अध्याय का मिश्रफल-अर्थात् मिले-जुले फल वाला अध्याय माना जा सकता है; सम्भवतः नहीं।

तो मिश्र या मिश्रफल क्या है? इस बात का शास्त्रीय आधार पर विचार कर इसका अर्थ सुनिश्चित करना आवश्यक है ताकि इस मिश्रफलाध्याय का स्वरूप स्पष्ट हो सके। शास्त्र एक अनुशासन है जो नियम, उपनियम एवं सिद्धांतों में व्यवस्था बनाने के लिए इस सब को समन्वय के सूत्र से बांधता है। ताकि परिणामों में एकरूपता एवं विश्वसनीयता रहे और उनकी तर्कपूर्ण व्याख्या की जा सके।

इस अध्याय में श्लोक संख्या ३७ से ४० तक चारों श्लोकों में दशा फल के आधारभूत नियमों का; जिनका प्रतिपादन श्लोक संख्या ३० एवं ३१ में दिया गया है, पालन नहीं किया गया। जबकि श्लोक संख्या ४० में द्वितीयाध्याय में प्रतिपादित योगकारकता के नियमों का जिनका प्रतिपादन श्लोक संख्या १४ एवं १५ में किया गया है-पालन नहीं किया गया। इस

प्रकार इस अध्याय के अन्तिम (मंगल) श्लोक को छोड़कर सभी जगह आधारभूत नियमों का पालन नहीं हुआ है।

क्योंकि दशाफल के आधारभूत नियमों में बताया गया है कि- (१) सभी ग्रह अपनी दशा एवं अपनी ही अन्तर्दशा में अपना आत्मभावानुरूप शुभाशुभ फल नहीं देते, (२) सभी ग्रह अपना आत्मभावानुरूप (स्वाभाविक) फल अपनी दशा में अपने सम्बन्धी या सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा में देते हैं और (३) दशानाथ के विरुद्धधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा में विद्वानों को उनके फलों का अनुगुणन कर फल निर्धारित करना चाहिए।[१]

किन्तु इस अध्याय के सभी श्लोकों में इन नियमों का पालन नहीं किया गया। इस प्रसंग में श्लोक संख्या ३७-४० को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

इसी प्रकार योगकारकता के नियमों का इस प्रकार प्रतिपादन किया गया है- (१) केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश आपस में सम्बन्धित हों और इतर ग्रहों से सम्बन्ध न करते हों तो योगकारक होते हैं और (२) केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश दोषयुक्त होने पर भी आपसी सम्बन्धी मात्र से योगकारक होते हैं।[२] किन्तु इस अध्याय के श्लोक संख्या ४१ में इन नियमों का पूरी तरह से पालन नहीं किया गया जबकि श्लोक संख्या ४२ में इसका पालन किया गया है।

इस प्रकार इस अध्याय में न तो मिश्रित फल का प्रतिपादन है और न ही दशाफल एवं योगकारकता के नियमों का पालन किया गया है। अतः मिश्रफलाध्याय में "मिश्रफल" क्या है? इसका निर्धारण होना-आवश्यक है।

वस्तुतः पाप, मारक एवं पूरक ग्रह निरंकुश होते हैं। इनकी निरंकुशता को नियमानुकूल करना अपवाद है। परस्पर विरोधियों को अनुशासन के सूत्र में बाँधना नियम होता है और नियमों के अपवाद को

---

१. देखिए-अनुच्छेद ५२-५५
२. देखिए-अनुच्छेद ३४-३६

मिश्रत्व कहा जाता है।[१] क्योंकि अपवाद पहले से स्थापित नियमों में अपमिश्रण-मिलावट करते हैं। अतः मिश्रत्व एवं अपवाद एक ही बात के दो पहलू होते हैं।

इस प्रकार इस अध्याय के श्लोक संख्या ३७ से ४१ तक पाँचों श्लोकों के अपवाद के नियमों का प्रतिपादन होने के कारण तथा मिश्रत्व एवं अपवादत्व का परस्पर समानार्थक होने के कारण "मिश्रफल" का अर्थ है-अपवाद नियमों का फल। और इसका प्रतिपादन करने वाला अध्याय मिश्रफलाध्याय होता है।

63. पापी ग्रह की दशा में शुभ एवं योगकारक की अन्तर्दशा का फल

लघुपाराशरी में पापी ग्रह का अभिप्राय है-त्रिषडायाधीश, अष्टमेश एवं पापयुक्त मारकेश। ये पापी ग्रह चार प्रकार के होते हैं-१. वे ग्रह जिनकी एक राशि त्रिषडाय और दूसरी राशि केन्द्र या त्रिकोण में हो-इनको सुविधानुसार पापी ग्रह कहते हैं। २. वे ग्रह जिनकी दोनों राशियाँ त्रिषडाय में हो-उनको यहाँ केवल पापी कहते हैं। ३. वे जिनकी एक राशि अष्टम में और दूसरी राशि त्रिषडाय में हो-उनको परमपापी कहते हैं और ४. वे मारकेश जो त्रिषडाय या अष्टमेश के साथ हो, उनको सुविधानुसार अतिपापी कहते हैं। यहाँ शुभ ग्रह का तात्पर्य उस त्रिकोणेश से है, जिसकी दूसरी राशि त्रिषडाय या अष्टम में न हों। और योगकारक का अर्थ-उन केन्द्रेश एवं त्रिकोणेशों से है, जिनका आपस में सम्बन्ध हो और अष्टम या एकादश के स्वामी न हों।

श्लोक संख्या ३७-३८ में पापी ग्रह की दशा में असम्बन्धी या सम्बन्धी शुभ की अन्तर्दशा तथा असम्बन्धी योगकारक की अन्तर्दशा का विवेचन करते हुए लघुपाराशरीकार कहते हैं-"कि यदि दशाधीश पापी हो

---

१. "पापाः मारकाः पूरकाश्च निरंकुशाः भवन्ति तेषां नियमानुकूलत्वमपवादत्व नियमावादत्वञ्च मिश्रत्वमिति।।"-उद्योत टीका श्लो० ३७

तो उससे असम्बन्धी शुभ ग्रह की भुक्ति पापफलदायक, उससे सम्बन्धी शुभ ग्रह की भुक्ति मिश्रफलदायक और उससे असम्बन्धी योगकारक की भुक्ति अत्यन्त पापफलदायक होती है।"[१]

इस विषय में सुश्लोक शतक का मत है-"कि पापी ग्रह की दशा में पाप ग्रह की भुक्ति अत्यन्त अशुभफलदायक, सम्बन्धी शुभ ग्रह की भुक्ति मिश्रित फलदायक तथा असम्बन्धी शुभ ग्रह की भुक्ति अशुभ फलदायक होती है।"[२]

इस प्रसंग में विचारणीय बात यह है कि पापी ग्रह की दशा में असम्बन्धी शुभ ग्रह की भुक्ति का पापफलदायक होना-श्लोक ३०-३१ में प्रतिपादित नियमों का उल्लंघन है। क्योंकि यहाँ अन्तर्दशाधीश न तो सम्बन्धी है और न ही सधर्मी-फिर वह दशाधीश का आत्मभावानुरूपी पाप फल कैसे देगा? यहाँ श्लोक ३१ के अनुसार असम्बन्धी एवं विरुद्धध र्मी होने के कारण उनके फलों का अनुगुणन कर फल निर्धारित करना चाहिए। किन्तु ऐसा फल लघुपाराशरीकार ने नहीं बतलाया। अतः इसका समन्वय करने के लिए इस फल को 'अपवाद' मान लेना उचित है।

इस प्रकरण में लघुपाराशरी के कुछ टीकाकारों[३] ने पौराणिक शैली में इस प्रश्न का समाधान इस प्रकार किया है-"जैसे पापी राजा के अधि कार में रहने वाले सज्जन व्यक्ति भी राजा की आज्ञानुसार ही कार्य करता है, उसकी आज्ञा की अवहेलना या उसके विरुद्ध कार्य नहीं करता। कारण राजा के प्रतिकूल कार्य करेगा तो स्वामी की आज्ञा पालनरूप धर्म का भंग होना और अपनी प्रतिष्ठा भंग होने का उसे अधिक भय रहेगा।

---

१. "पापाः यदि दशानाथाः शुभानां तदसंयुजाम्।
भुक्तयः पापफलदास्तत्संयुक् शुभभुक्तयः।।
भवन्ति मिश्रफलदा भुक्तयो योगकारिणाम्।
अत्यन्तपापफलदा भवन्ति तदसंयुजाम्।।" —लघुपाराशरी श्लो० ३७-३८

२. "अन्यन्ताशुभदः पापः पापमध्ये यदा भवेत्।
सम्बन्धी तु शुभो मिश्रोऽसम्बन्धीत्व शुभप्रदः।।" —सुश्लोक शतक—दशाध्याय श्लो० २६

३. देखिए—लघुपाराशरी—विनायक शास्त्री टीका—मिश्रफलाध्याय श्लो० १-२

इसलिए सज्जन की अपेक्षा अतिसज्जन अधिक रूप से (पापी) राजा की मनोवांछित प्रवृत्ति को कार्यरूप में परिणत करेगा। इस उदाहरण में सज्जन को शुभ ग्रह और अतिसज्जन को योगकारक समझना चाहिए। इसलिए पापी ग्रह की दशा में शुभ ग्रह के असम्बन्धित होने के कारण पापफल मिलेगा और (असम्बन्धित) योगकारक अधिक से अधिक पापफल अपनी अन्तर्दशा में देगा।

जिस प्रकार किसी असज्जन का राजा से सम्बन्ध होने से उसमें निर्भयता आती है और वह राजा की मनोवृत्ति के प्रतिकूल भी अपनी इच्छानुसार अपने मन सरीखा कुछ अंश कर लेता है। उसी प्रकार पापी दशानाथ से सम्बन्धित शुभ ग्रह अपनी अन्तर्दशा में मिश्रित फल देता है।

(i) तारतम्य

पाप ग्रह चार प्रकार के होते हैं- १. पापी, २. केवल पापी, ३. परमपापी एवं ४. अतिपापी। ये चारों उत्तरोत्तर बलवान होते हैं और इनकी दशा में उत्तरोत्तर पाप फल की प्रबलता होती है।

इसी प्रकार शुभ फलदायक ग्रह भी चार प्रकार के होते हैं- १. दोषयुक्त शुभ ग्रह, २. शुभ ग्रह, ३. स्वयं कारक एवं ४. योगकारक। ये चारों भी उत्तरोत्तर बलवान् होते हैं।

(ii) निष्कर्ष

लघुपाराशरी के श्लोक संख्या ३७ एवं ३८ का समग्र-दृष्टि से विचार एवं चिन्तन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है।

यदि दशानाथ पापी हो तो–

(क) दशानाथ से असम्बन्धित शुभ ग्रहों की अन्तर्दशा पापफल देने वाली होती है। यहाँ दोष युक्त ग्रह से शुभ ग्रह और उससे स्वयं कारक की अन्तर्दशा में पाप फल अधिक होता है।

(ख) दशानाथ से सम्बन्धित शुभ ग्रहों की अन्तर्दशा मिश्रित फल देती है। इस स्थिति में मिश्रित-फल की मात्रा में दोषयुक्त शुभ की

अन्तर्दशा से शुभ ग्रह की अन्तर्दशा में और उससे स्वयं कारक की अन्तर्दशा में शुभ फल उत्तरोत्तर अधिक होता है।

(ग) दशानाथ से असम्बन्धित योगकारक ग्रहों की अन्तर्दशाएँ अत्यन्त पाप फलदायक होती हैं। यहाँ स्वयं कारक की अन्तर्दशा से योगकारक की भुक्ति में पाप फल अधिक होता है।

(घ) दशानाथ से सम्बन्धित योगकारकों की अन्तर्दशा में मिश्रित फल मिलता है, जिसमें शुभफल अधिक एवं पापफल कम होता है। यहाँ भी स्वयंकारक की अपेक्षा योगकारक की अन्तर्दशा में शुभफल की मात्रा अधिक होती है।

(ङ) समग्रह की अन्तर्दशा में पाप फल मिलता है किन्तु उतना नहीं जितना शुभ ग्रह या योगकारक ग्रह की भुक्ति में मिलता है अपितु उससे अपेक्षाकृत कम मिलता है।

(च) पाप ग्रहों की अन्तर्दशा में पूर्ण पापफल मिलता है। चाहे अन्तर्दशानाथ, पापी, केवल पापी, परम पापी या अतिपापी हो-दशानाथ एवं अन्तर्दशानाथ के सधर्मी होने के कारण।

मेषादि लग्नों में पाप एवं शुभ ग्रहों की तालिका

लग्न	पापी	केवल पापी	परमपापी	सदोष	शुभ	शुभ	स्वयंकारक
मेष	शनि	बुध	X		मंगल	सूर्य, गुरु	X
वृष	शुक्र	चन्द्र	गुरु		X	बुध	शनि
मिथुन	X	सूर्य,मंगल	X		शनि	शुक्र	X
कर्क	बुध, शुक्र	X	X		गुरु	X	मंगल
सिंह	बुध, शनि, शुक्र		X	X	गुरु	X	मंगल
कन्या	X	चन्द्र	मंगल		शनि	शुक्र	X
तुला	X	गुरु, सूर्य	X		शुक्र	बुध	शनि

वृश्चिक	शनि,मंगल,	X	बुध	X	चन्द्र, गुरु	X
धनु	शनि	शुक्र	X	X	मंगल, सूर्य	X
मकर	मंगल, गुरु	X	X	बुध	X	शुक्र
कुम्भ	मंगल, गुरु	चन्द्र	X	बुध	X	शुक्र
मीन	शनि	सूर्य	शुक्र	X	मंगल, चन्द्र	X

64. मारकग्रह एवं मृत्यु

अनुच्छेद ६१ में बतलाया गया है कि पापी, मारक एवं पूरक ग्रह निरंकुश होते हैं। इनकी निरंकुशता को नियमानुकूल बनाने के लिए अपवाद नियमों का लघुपाराशरी में प्रतिपादन किया गया है। क्योंकि शास्त्र अपने स्वभावतः परस्पर विरोधी तत्त्वों एवं तथ्यों को समन्वय के सूत्र से बाँध कर अनुशासित करता है। अतः प्रत्येक नियम, वाद एवं सिद्धांत का अपवाद भी होता है।

इस विषय में लघुपाराशरीकार का मन्तव्य है कि मारक ग्रह अपनी दशा में अपने सम्बन्धी शुभ ग्रह की अन्तर्दशा में मृत्यु नहीं देता। जबकि अपने असम्बन्धी पापग्रह की अन्तर्दशा में मृत्यु देता है।[१] इस विषय में सुश्लोक शतककार का मत भी यही है। केवल एक बात यह विशेष है कि उनके मतानुसार मारक ग्रह की दशा में सम्बन्धी पाप ग्रह की भुक्ति में निश्चित रूप से मृत्यु होती है।[२] महर्षि पराशर का भी यही मत है।[३]

---

१. "सत्यपि स्वेन सम्बन्धे न हन्ति शुभभुक्तिषु।
हन्ति सत्यप्यसम्बन्धे मारकः पापभुक्तिषु।।" —लघुपाराशरी श्लो० ३९

२. "मारकस्य दशायां तु शुभसम्बन्धिनो भवेत्।
अन्तर्दशा तदा नैव मृत्युः पाराशरं मतम्।।
असम्बन्धिखलस्यान्तर्दशेह मरणप्रदा।
सम्बन्धिनः पुनः किं स्यादिति निश्चयमीरितम्।।" —सुश्लोक दशाध्याय श्लो० २७-२८

३. देखिए—बृहत्पाराशर होराशास्त्र—मारकभेदाध्याय—श्लो० ८

लघुपाराशरी के श्लोक संख्या ३० में बतलाया गया है कि दशाधीश अपने सम्बन्धी ग्रह की अन्तर्दशा में अपना स्वाभाविक फल देता है। यहाँ मारक ग्रह एवं उसके फल का निरूपण करते हुए ग्रन्थकार ने यह अपवाद-नियम बतलाया है-कि मारक ग्रह अपनी दशा में सम्बन्ध होने पर भी शुभ ग्रह की अन्तर्दशा में मृत्यु नहीं देता। जबकि मारक ग्रह अपनी दशा में सम्बन्ध न होने पर भी पाप ग्रह की अन्तर्दशा में मृत्यु देता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि मारक-फल निरूपित करने के लिए यह नियम श्लोक संख्या ३० का अपवाद है।

दशाफल के प्रसंग में "सम्बन्धी" एवं "सधर्मी" इन दोनों का विचार एवं मनन गम्भीरतापूर्वक करना चाहिए। यहाँ मारक ग्रह की दशा में सम्बन्धी शुभ ग्रह की अन्तर्दशा में मृत्यु न होना-अपवाद नियम है। क्योंकि यहाँ सम्बन्ध होने पर भी मृत्यु जो कि मारक ग्रह का स्वाभाविक फल है का न मिलना अपवाद है। यहाँ एक अन्य बात स्मरणीय है कि सम्बन्ध होने पर शुभ ग्रह की भुक्ति में मृत्यु का निषेध किया गया है जो योगकारक की भुक्ति में मृत्यु नहीं हो सकती। शुभ ग्रह से योगकारक के अधिक शुभफलदायक होने के कारण और जब सम्बन्धी शुभ या योगकारक की भुक्ति में मृत्यु का निषेध किया गया है तो असम्बन्धी शुभ या योगकारक की भुक्ति में मृत्यु का प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

यद्यपि मारक एवं पापग्रह पूर्वरूपेण सधर्मी नहीं होते किन्तु उनमें "अशुभता" नामक एक धर्म समान रूप से पाया जाता है। इसलिए सम्बन्ध न होने पर भी मारक ग्रह अपनी दशा में पाप ग्रह की भुक्ति में मारक फल देता है। यहाँ यह ध्यान रखने योग्य बात है कि यदि मारक ग्रह का पापग्रह से सम्बन्ध हो तो ऐसे पापग्रह की भुक्ति में निश्चित रूप से मृत्यु होती है।

निष्कर्ष

इस विषय में लघुपाराशरी के श्लोक संख्या ३९ का गम्भीरतापूर्वक विचार कर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है-

मारक ग्रह की महादशा में–

(क) सम्बन्धी शुभ ग्रह की अन्तर्दशा में मृत्यु नहीं होती।

(ख) असम्बन्धी शुभ ग्रह की अन्तर्दशा में मृत्यु की सम्भावना भी नहीं होती।

(ग) सम्बन्धी योगकारक ग्रह की अन्तर्दशा में मृत्यु नहीं हो सकती।

(घ) सम्बन्धी योगकारक ग्रह की अन्तर्दशा में मृत्यु का प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

(ङ) असम्बन्धित पाप ग्रह की अन्तर्दशा में मृत्यु होती है।

(च) सम्बन्धित पाप ग्रह की अन्तर्दशा में निश्चित रूप से मृत्यु होती है।

(छ) सम्बन्धित या असम्बन्धित सम ग्रह की भुक्ति परिस्थिति अनुसार मृत्यु संभव है।

(ज) सम्बन्धित या असम्बन्धित मारक ग्रह की दशा में अवश्य मृत्यु होती है। दोनों के सधर्मी होने के कारण।

वस्तुतः मारक की दशा में शुभ ग्रह की अन्तर्दशा चाहे वह सम्बन्धी हो या असम्बन्धी में मृत्यु नहीं होती। योगकारक ग्रह शुभ ग्रह से भी शुभतर होता है। अतः उसकी अन्तर्दशा में भी मृत्यु का प्रश्न नहीं उठता चाहे वह सम्बन्धी या असम्बन्धी कैसा भी हो। शुभ ग्रह एवं योगकारक कभी-कभी अनिष्ट कर सकते हैं। किन्तु जीवन-हरण या मृत्यु करना शुभ या योगकारक के धर्म के विरुद्ध है।

किन्तु पाप ग्रह एवं मारक ग्रह में आंशिक रूप से अशुभता की समानता होने के कारण तथा मारक ग्रह के सधर्मी होने के कारण पाप ग्रह या मारक ग्रह की अन्तर्दशा में मृत्यु होती है। यदि पाप या मारक ग्रह असम्बन्धी हो तब भी और यदि सम्बन्धी हो तो निश्चित रूप से मृत्यु होती है।

65. दशाफल में शनि एवं शुक्र की विशेषता

शुक्र एवं शनि की अभिन्न-मित्रता को ध्यान में रखते हुए लघुपाराशरीकार का मत है कि शनि की दशा में जब शुक्र की अन्तर्दशा आती है तब शुक्र विशेष रूप से अपना फल न देकर शनि का ही शुभ या अशुभ फल देता है। और इसी प्रकार शुक्र की दशा में जब शनि की अन्तर्दशा आती है तब शनि अपना फल न देकर शुक्र का ही शुभाशुभ फल देता है।[१] सुश्लोक शतककार का भी यही मत है।[२]

जैसे पाप एवं मारक ग्रह निरंकुश होते हैं वैसे ही अभिन्न मित्र या पूरक ग्रह भी निरंकुश होते हैं। अतः ये दशाफल के नियमों का उल्लंघन करते हैं। अनुच्छेद ५३ में बतलाया गया है कि ग्रह अपना स्वाभाविक फल अपने सम्बन्धी या सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा में देता है। किन्तु शनि एवं शुक्र की नैसर्गिक मित्रता, अभिन्नता एवं पूरकता को ध्यान में रखते हुए ग्रन्थकार ने इन दोनों को सम्बन्धी या सधर्मी होने की शर्त से मुक्तकर यह अपवाद नियम बतलाया है कि शनि एवं शुक्र एक-दूसरे की दशा और अपनी भुक्ति में एक-दूसरे का शुभ या अशुभ फल देते हैं।

वस्तुतः शनि एवं शुक्र नैसर्गिक या अभिन्न मित्र ही नहीं अपितु एक-दूसरे के पूरक हैं। यहाँ पूरक का अर्थ है-एक-दूसरे को समग्र या परिपूर्ण बनाने वाला। जैसे स्त्री एवं पुरुष एक-दूसरे के पूरक होते हैं। क्योंकि वे एक-दूसरे को तन, मन एवं धन से परिपूर्णता देते हैं। इसलिए व्यक्ति का व्यक्तित्व विवाह के बाद ही परिपूर्णता की ओर अग्रसर होता है।

शनि एवं शुक्र की इस पूरकता का साक्ष्य है-शुक्र की लग्नों में शनि का तथा शनि की लग्नों में शुक्र का योगकारक होना। ग्रहों की

---

१. "परस्परदशायां स्वभुक्तौ सूर्यजभार्गवौ।
व्यत्ययेन विशेषेण प्रदिशेतां शुभाशुभम्।।" —लघुपाराशरी श्लो० ४०

२. शुक्रमध्ये गतो मन्दः शौक्रं शुक्रोऽपि मन्दगः।
मान्दं शुभाशुभं दत्ते विशेषेण न संशयः।।
—सुश्लोक शतक—दशाध्याय श्लो० २९

शुभता के विकास की प्रक्रिया में दोषयुक्त-त्रिकोणेश से त्रिकोणेश और उससे स्वयं योगकारक उत्तरोत्तर बली होते हैं। स्वयं योगकारक ग्रह केन्द्र एवं त्रिकोण का एक मात्र स्वामी होने के कारण योगकारक[१] और योगकारक होने से अति शुभ हो जाता है।[२] शनि शुक्र को अपनी लग्नों में योगकारक बनाता है। अतः ये दोनों एक-दूसरे के पूरक माने जाते हैं।

जैसे वृष लग्न में शनि नवमेश एवं दशमेश होने के कारण तथा तुला लग्न में शनि चतुर्थेश एवं पंचमेश होने के कारण योगकारक होता है। उसी प्रकार मकर लग्न में शुक्र पंचमेश एवं दशमेश होने के कारण तथा कुम्भ लग्न में शुक्र चतुर्थेश एवं नवमेश होने के कारण योगकारक होता है। शनि एवं शुक्र में केवल नैसर्गिक मित्रता ही नहीं है। वे एक दूसरे की अपनी लग्नों में परिपूर्ण शुभता देते हैं। यह उनकी एक-दूसरे के लिए पूरक-प्रवृत्ति है। इसे ध्यान में रखकर आचार्य ने इन्हें सम्बन्धी होने की शर्त से मुक्त करने के लिए यह अपवाद नियम बतलाया है।

66. राजयोग

लघुपाराशरी के अन्त में श्लोक संख्या ४१ एवं ४२ में दो-दो अर्थात् कुल मिलाकर चार राजयोगों का प्रतिपादन किया गया है यथा-"दशमेश एवं लग्नेश एक-दूसरे के स्थान में हों तो दो राजयोग होते हैं और इन राजयोगों में उत्पन्न व्यक्ति विख्यात एवं विजयी होता है। इसी प्रकार-नवमेश एवं लग्नेश एक-दूसरे के स्थान में हों तो दो राजयोग होते हैं और इन राजयोगों में उत्पन्न व्यक्ति विख्यात एवं विजयी होता है।[३]

---

१. देखिए-अनुच्छेद ३८

२. बृहत्पाराशर होराशास्त्र-योगकारकाध्याय श्लो० १३

३. "कर्मलग्नाधिनेतारावन्योन्याश्रयसंस्थितौ।
राजयोगाविति प्रोक्तं विख्यातो विजयी भवेत्।।
धर्मलग्नाधिनारावन्योन्याश्रयसंस्थितौ।
राजयोगाविति प्रोक्तं विख्यातो विजयी भवेत।।" -लघुपाराशरी श्लो० ४१-४२

लघुपाराशरी की हिन्दी टीकाओं में श्लोक संख्या ४२ में "धर्मकर्माधिनेतारौ" तथा "धर्मलग्नाधिनेतारौ"-ये दो पाठ मिलते हैं। यदि प्रथम पाठ "धर्मकर्माधिनेतारौ" मान लिया जाय तो इसका अर्थ होगा कि नवमेश एवं दशमेश एक-दूसरे के स्थान में हों तो राजयोग होता है। किन्तु यह बात लघुपाराशरी के श्लोक संख्या १४-१६ में बतलायी जा चुकी है। अतः द्वितीय पाठ "धर्मलग्नाधिनेतारौ" मानना उचित रहेगा।

वस्तुतः बृहत्पाराशर होराशास्त्र में लग्न को केन्द्र एवं त्रिकोण स्थान स्वीकार कर विशेष शुभ माना गया है।[१] अतः लग्नेश का बलवान् केन्द्रेश-दशमेश तथा बलवान् त्रिकोणेश-नवमेश के साथ सम्बन्धवशात् राजयोगों का प्रतिपादन यहाँ किया गया है।

हिन्दी टीकाकारों ने लग्नेश दशम और दशमेश लग्न में हो तो राजयोग होता है तथा लग्नेश नवम में और नवमेश लग्न में हो तो राजयोग होता है। प्रायः ऐसा अर्थ माना है। किन्तु मूल श्लोक में "राजयोगौ इति प्रोक्तम्" इस पद में द्विवचन का प्रयोग है। अतः प्रत्येक श्लोक में दो-दो राजयोग होने चाहिए। यह तभी सम्भव है जब "अन्योन्याश्रयसंस्थितौ।" का अर्थ-एक दूसरे के स्थान में साथ-साथ स्थित माना जाय। तब इन श्लोकों का अर्थ होगा-

यदि दशमेश एवं लग्नेश साथ-साथ लग्न या दशम स्थान में स्थित हो तो दो राजयोग होते हैं। इसी प्रकार यदि नवमेश एवं लग्नेश साथ-साथ नवम या लग्न स्थान में स्थित हों तो दो राजयोग होते हैं। इन चारों योगों में उत्पन्न व्यक्ति सुविख्यात एवं विजयी राजा होता है।

कुछ लोगों का कहना है कि लग्नेश एवं दशमेश दोनों केन्द्रेश होते हैं। अतः उनके अन्योन्याश्रय सम्बन्ध से राजयोग नहीं बन सकता। इस विषय में यह ध्यान रखने योग्य बात है कि महर्षि पराशर ने अपने होराशास्त्र में लग्न को केन्द्र एवं त्रिकोण दोनों मानते हुए विशेष शुभफलदायक माना है। तथा लघुपाराशरी के परवर्ती उसकी परम्परा में

---

१. "लग्नं केन्द्रत्रिकोणत्वाद् विशेषेण शुभप्रदम्" -योगकारकाध्याय श्लो० ३

प्रणीत ग्रन्थों में भी ये योग यथावत मिलते हैं।[१] अतः इस बात को नहीं माना जा सकता कि लग्नेश एवं दशमेश के अन्योन्याश्रय सम्बन्ध में राजयोग नहीं बन सकता। क्योंकि लग्नेश को केन्द्राधिपत्य दोष न होना,[२] पाराशरी होरा में लग्न को केन्द्र एवं त्रिकोण दोनों प्रकार का भाव मानना-आदि ऐसे साक्ष्य हैं जो इस योग को सुदृढ़ आधार प्रदान करते हैं।

लघुपाराशरी के मराठी टीकाकार श्री रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन, श्री ह० ने० काटवे तथा श्री वि० गो० नवाथे और गुजराती टीकाकार श्री उत्तम राम मयाराम ठक्कर एवं श्री तुलजाशंकर धीरज राम पंडया ने श्लोक संख्या ४१ एवं ४२ को प्रक्षिप्त माना है। इन टीकाकारों का कहना है कि इन श्लोकों का प्रतिपाद्य राजयोग है। यदि ये दोनों योग लघुपाराशरीकार के होते तो इनका उल्लेख योगाध्याय में होता न कि मिश्रफलाध्याय में। दूसरी बात यह है कि इन दोनों श्लोकों में ऐसी कोई नई बात नहीं बतलायी गयी जो पहले योगाध्याय में न कही जा चुकी हो। उक्त पहले बतलायी गयी बातों की पुनरुक्ति के लिए लघुपाराशरीकार ग्रन्थ की समाप्ति के समय पिष्टपेषण के लिए इन श्लोकों में लिख नहीं सकते। अतः लगता है कि उक्त दोनों श्लोक प्रक्षिप्त हैं।

यद्यपि मराठी एवं गुजराती टीकाकारों का कथन युक्ति-संगत है। किन्तु इस विषय में कुछ तथ्य इस प्रकार के हैं जो इस श्लोक को लघुपाराशरी का मूल पाठ सिद्धांत करते हैं-

(i) हिन्दी, संस्कृत एवं बांगला की सभी टीकाओं में इन श्लोकों का मिलना।

(ii) जातक चन्द्रिका के मद्रास संस्करण में इन श्लोकों का होना।

---

१. "जन्म लग्नेश्वरः खेटो दशमे दशमेश्वरः।
लग्ने विख्यातकीर्तिः स्याद्विजयी च धराधिपः।।"
-सुश्लोकशतक-राजयोगध्याय-श्लो० १४

२. लघुपाराशरी श्लो० ९

(iii) लघुपाराशरी की परम्परा में विरचित सुश्लोक शतक में इन योगों का यथावत होना।[१]

इस विषय में सज्जनरंजिनीकार ने अपनी टीका में एक प्राचीन वचन उद्धृत किया है–

"धर्मकर्मेशसम्बन्धो लग्नेशेनाथता भवेत्।
केवलं वा तयोर्वापि राजयोगाऽयमीरितः।।"

अर्थात् नवमेश एवं दशमेश में सम्बन्ध हो या नवमेश अथवा दशमेश का लग्नेश से सम्बन्ध हो अथवा नवमेश दशमेश एवं लग्नेश में से किन्हीं दो का सम्बन्ध हो तो यह राजयोग कहलाता है। इस प्रकार प्राचीन वचनों में इन योगों का मिलना हिन्दी, संस्कृत एवं बाँगला के सभी टीकाकारों का इनको मूलपाठ मानकर अपनी-अपनी टीका करना तथा परवर्ती सुश्लोक शतक में भी इन योगों का ज्यों का त्यों मिलना इस बात को सिद्ध करता है कि ये श्लोक लघुपाराशरी के मूल पाठ हैं; प्रक्षिप्त नहीं हैं।

---

१. देखिए–सुश्लोक शतक-राजयोगध्याय श्लो० ५ एवं १४

परिशिष्ट-एक

मेष आदि लग्नों में शुभ, पाप, कारक एवं मारक ग्रहों का निरूपण

सारतत्त्व

लघुपाराशरी के पाँच अध्यायों में जिन आधारभूत-सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है उनका पाराशरी-होरा के साथ तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए प्रत्येक लग्न में उत्पन्न व्यक्ति के लिए शुभ, पाप, कारक एवं मारक ग्रहों के स्वाभाविक फल का निर्धारण सहजता और सरलता से कर सकते हैं।

यहाँ मूल पाराशरी होरा में जो पाठान्तर मिलते हैं या जहाँ लघुपाराशरी एवं बृहत्पाराशर होरा शास्त्र में जहाँ परस्पर मतभेद हैं, उनका उल्लेख कोष्ठक में किया गया है।

इस प्रसंग में यह स्वयं-सिद्ध-तथ्य स्मरणीय है कि जहाँ भी लघुपाराशरी एवं बृहत्पाराशर होरा शास्त्र में मतभेद या अन्तर दिखलाई पड़े वहाँ पाराशरी होरा को ही प्रमाण मानना चाहिए। क्योंकि स्वयं लघुपाराशरीकार का कथन है कि हमने महर्षि पराशर प्रणीत होराशास्त्र का अपनी बुद्धि के अनुसार गम्भीरतापूर्वक चिन्तन, मनन एवं परिशीलन कर उसका अनुसरण करते हुए उडुदाय-प्रदीप या लघुपाराशरी की रचना की है।[१] शास्त्रीय नियमानुसार जिस ग्रन्थ का अनुसरण करके रचना की जाती है। उसके सिद्धांत, नियम एवं उपनियमों को तब तक प्रमाण माना जाता है जब-तक कि उनका खण्डन न हो जाय और वह खण्डन

---

१. देखिए-अनुच्छेद ३

विद्वत्समाज में स्थापित न हो जाय। पराशरी-होरा एक आर्ष ग्रन्थ है और वह दैवज्ञ समाज में एक मानक एवं आधार ग्रन्थ माना जाता है, जिसकी परम्परा में अनेकों होरा ग्रन्थों की रचना हुई है। अतः मतभेद की स्थिति में बृहत्पाराशर होराशास्त्र के मत को सिद्धान्तपक्ष या प्रमाण मानना सर्वथा उचित है।

(i) मेष लग्न में शुभ, अशुभ, कारक एवं मारक

बृहत्पाराशर होराशास्त्र एवं लघुपाराशरी के अनुसार मेष लग्न में शुभ, पाप कारक एवं मारक ग्रह इस प्रकार होते हैं।[१]

शुभग्रह

१. सूर्य-पंचमेश (त्रिकोणेश) होने के कारण श्लोक संख्या ६ के अनुसार शुभफल दायक होता है।

२. गुरु-नवमेश (त्रिकोणेश) होने के कारण शुभफल दायक होता है। यह द्वादशेश भी है। अतः "स्थानान्तरानुगुण्य" के आधार पर श्लोक संख्या ६ एवं ८ के अनुसार शुभफलदायक होता है व्ययेश होने के कारण यह मारक भी हो सकता है।

३. मंगल-अष्टमेश एवं लग्नेश होने से श्लोक संख्या ९ के अनुसार शुभ होता है।

४. क्षीण-चन्द्रमा-केन्द्रेश होने के कारण पापफल नहीं देता। इसलिए अल्प शुभ माना जाता है।

---

१. "मन्दसौम्यसिताः पापाः शुभौ गुरुदिवाकरौ।
न शुभं योगमात्रेण प्रभावेच्छनिजीवयोः।।
पारतन्त्रेण जीवस्य पापकर्मापि निश्चितम्।
शुक्रः साक्षान्निहन्ता स्यान्मारकत्वेन लक्षितः
मन्दादयोऽपि हन्तारः भवेयुः पापिनो ग्रहाः।"
—बृहत्पाराशर होराशास्त्र अध्याय ३५ श्लो० २०-२२

पापग्रह

१. बुध-तृतीयेश एवं षष्ठेश होने से श्लोक संख्या ६ के अनुसार पापफल दायक है।

२. शनि-दशमेश एवं एकादशेश होने से श्लोक संख्या ६ के अनुसार पाप फलदायक है।

कारकग्रह

सूर्य एवं चन्द्रमा, सूर्य एवं शुक्र, गुरु एवं चन्द्रमा परस्पर सम्बन्ध होने पर योगकारक होते हैं।

निकृष्ट-योग

सूर्य एवं गुरु, गुरु एवं शुक्र का योग सदोष होने से निकृष्ट योग होता है।

निष्फल योग

गुरु एवं शनि, गुरु एवं मंगल, सूर्य एवं शनि और सूर्य एवं मंगल-इनका सम्बन्ध होने पर भी श्लोक संख्या २२ के अनुसार योग भंग हो जाता है।

मारक ग्रह

१. शनि-मारक ग्रहों से सम्बन्ध होने पर श्लोक २८ के अनुसार प्रबल मारक होता है।

२. शुक्र-द्वितीय एवं सप्तमेश होने से मुख्य मारक होता है। श्लोक संख्या २४ के अनुसार।

३. गुरु-द्वादशेश होने से साधारण मारक होता है श्लोक संख्या २६ के अनुसार।

४. बुध-केवल पापी होने से परिस्थिति के अनुसार मारक हो जाता है श्लोक संख्या २७ के अनुसार।

(ii) वृष लग्न में शुभ, पाप, कारक एवं मारक

बृहत्पाराशर होरा शास्त्र एवं लघुपाराशरी के अनुसार वृष लग्न में शुभ, पाप कारक एवं मारक ग्रह इस प्रकार होते हैं।[१]

शुभ ग्रह

१. शनि-नवमेश एवं दशमेश होने से श्लोक संख्या ६ एवं १२ के अनुसार शुभफलदायक है तथा श्लोक संख्या २० के अनुसार वह स्वयं कारक है।

२. बुध-द्वितीयेश एवं पंचमेश होने से श्लोक संख्या ६ एवं ८ के अनुसार शुभफलदायक है।

पापग्रह

१. चन्द्रमा-तृतीयेश होने से श्लोक संख्या ६ के अनुसार पापफलदायक है।

२. शुक्र-षष्ठेश एवं लग्नेश होने से श्लोक संख्या ६ एवं १० के अनुसार पाप फलदायक है।

३. गुरु-अष्टमेश एवं एकादशेश होने से परमपापी है। यह श्लोक संख्या ६ एवं ९ के अनुसार पापफलदायक है।

कारकग्रह

१. शनि एवं बुध में सम्बन्ध होने पर परम योग बनता है।

२. शनि एवं शुक्र, शनि एवं सूर्य, बुध एवं शुक्र, बुध एवं सूर्य परस्पर सम्बन्ध होने पर श्लोक संख्या १४ एवं १५ के अनुसार योगकारक होते हैं।

---

१. "जीवशुक्रेन्दवः पापाः शुभौ शनिदिवाकरौ (शनिशशीसुता।)।
राजयोगकरः सौरिर्बुधस्त्वल्पशुभप्रदः।।
जीवादयो कुजश्चापि सन्ति मारकलक्षणाः।
वृषलग्नोद्भवस्यैव फलान्यूह्यानि सूरिभिः।।" —तत्रैव श्लो० २३-२४

निकृष्ट योग

१. मंगल एवं शनि और मंगल एवं बुध परस्पर सम्बन्ध होने पर सदोष होने से निकृष्ट योग होता है।

२. शुक्र से सम्बन्ध होने पर कारकत्व में ह्रास होता है।

निष्फल योग

योगकारक का गुरु से सम्बन्ध होने पर योग निष्फल हो जाता है।

मारक ग्रह

मंगल–सप्तमेश एवं द्वादशेश होने से श्लोक २४ एवं २६ के अनुसार मुख्य मारक है।

गुरु–अष्टमेश एवं एकादशेश होने से श्लोक २६ एवं २७ के अनुसार मारक है।

बुध–द्वितीयेश एवं पंचमेश होने से परिस्थिति विशेष में मारक है।

(iii) मिथुन लग्न में शुभ, पाप, कारक एवं मारक

लघुपाराशरी एवं पाराशरी होरा के अनुसार मिथुन लग्न में शुभ, पाप, कारक एवं मारक ग्रह इस प्रकार होते हैं।[१]

शुभग्रह

१. शुक्र–द्वादशेश एवं पंचमेश होने के कारण श्लोक संख्या ६ एवं ७ के अनुसार शुभफलदायक है।

---

१. "भौमजीवारूणा: पापा: एक एव कविशुभ:।
शनैश्चरेण जीवस्य योगो भेषभयो यथा।।
शशी मुख्यनिहन्ताऽसौ साहचर्याच्च पाकद:।
द्वन्द्वलग्नभवस्यैवं फलान्यूह्यानि पण्डितै:।।" –तत्रैव श्लो० २५–२६

२. बुध-लग्नेश एवं चतुर्थेश होने के कारण श्लोक संख्या ११ के अनुसार अल्पदोषी है।

पापग्रह

१. मंगल-षष्ठेश एवं एकादशेश होने के कारण श्लोक संख्या ६ के अनुसार पाप फलदायक है।

२. सूर्य-तृतीयेश होने के कारण श्लोक संख्या ६ के अनुसार पापफलदायक है।

कारक ग्रह

गुरु एवं शुक्र तथा बुध एवं शुक्र-परस्पर सम्बन्ध होने पर योगकारक होते हैं।

निष्फल योग

शनि एवं गुरु, बुध एवं शनि में परस्पर सम्बन्ध होने पर श्लोक संख्या २२ के अनुसार निष्फल होता है।

मारक

१. चन्द्रमा-द्वितीयेश होने के कारण श्लोक संख्या २४ के अनुसार मारक होने पर भी मुख्य मारक नहीं होता।

२. गुरु-सप्तमेश होने के कारण श्लोक संख्या २४ के अनुसार मारक है।

३. शनि-अष्टमेश होने के कारण श्लोक संख्या २६ के अनुसार मारक होता है।

४. मारक-षष्ठेश एवं एकादशेश होने के कारण श्लोक संख्या २७ के अनुसार मारक होता है।

(iv) कर्क लग्न में शुभ, पाप, कारक एवं मारक ग्रह

पाराशरीहोरा एवं लघु पाराशरी के अनुसार कर्क लग्न में शुभ, पाप, कारक एवं मारक ग्रह इस प्रकार होते हैं।[१]

शुभग्रह

१. मंगल–पंचमेश एवं दशमेश होने के कारण श्लोक संख्या १२ के अनुसार शुभ है और वह श्लोक संख्या २० के अनुसार स्वयं कारक है।

२. गुरु–नवमेश होने के कारण श्लोक संख्या ६ के अनुसार शुभफलदायक है। किन्तु यह षष्ठेश होने से सदोष होता है।

पापग्रह

१. शुक्र–चतुर्थेश होने से श्लोक संख्या १० के अनुसार केन्द्राधिपत्य दोष–युक्त है और एकादशेश होने के कारण श्लोक संख्या ६ के अनुसार पापफलदायक है।

२. बुध–तृतीयेश एवं द्वादशेश होने से श्लोक संख्या ६ एवं ८ के अनुसार पाप फलप्रद है।

३. शनि–सप्तमेश एवं अष्टमेश होने से श्लोक संख्या २४ एवं ९ के अनुसार पापी है।

कारक ग्रह

१. चन्द्र एवं मंगल, चन्द्र एवं गुरु और मंगल एवं गुरु परस्पर सम्बन्ध होने पर योगकारक होते हैं।

---

१. "भार्गवेन्दुसुतौ पापौ भूसुतेज्येन्दवः शुभाः।
पूर्णयोगकरः साक्षान्मङ्गलो मङ्गलप्रदः।।
निहन्ताऽर्कसुतोऽर्कस्तु साहचर्यात् फलप्रदः।
कर्कलग्नोद्भवस्यैवं फलं प्रोक्तं मनीषिभिः।।" –तत्रैव श्लो० २७–२८

निष्फल योग

गुरु एवं शुक्र, गुरु एवं शनि, मंगल एवं शुक्र तथा मंगल एवं शनि-परस्पर सम्बन्ध होने पर भी श्लोक संख्या २२ के अनुसार निष्फल होते हैं।

मारक ग्रह

१. सूर्य-द्वितीयेश होने के कारण श्लोक संख्या २४ के अनुसार मारक होता है।

२. शनि-सप्तमेश एवं अष्टमेश होने के कारण श्लोक संख्या २४ एवं २६ के अनुसार मारक होता है।

३. बुध-व्ययेश एवं तृतीयेश होने के कारण श्लोक संख्या २६ के अनुसार मारक होता है।

४. शुक्र-चतुर्थेश एवं एकादशेश होने से श्लोक संख्या २७ के अनुसार मारक होता है।

(v) सिंह लग्न में शुभ, पाप, कारक एवं मारक ग्रह

लघुपाराशरी एवं पाराशरी होरा के अनुसार सिंह लग्न में शुभ, पाप, कारक एवं मारक ग्रह इस प्रकार होते हैं।[१]

शुभग्रह

१. मंगल-चतुर्थेश एवं नवमेश होने से श्लोक संख्या १२ के अनुसार शुभफलदायक तथा श्लोक २० के अनुसार स्वयं कारक होता है।

---

१. "सौम्यशुक्रार्कजाः पापाः कुजेज्यार्काः शुभावहाः।
प्रभवेद्योगमात्रेण न शुभं गुरुशुक्रयोः।।
मारकस्तु शनिचन्द्रः साहचर्यात् फलप्रदः।
सिंहलग्ने प्रजातस्य फलं ज्ञेयं विपश्चिता।" –तत्रैव श्लोक २९-३०

२. गुरु-पंचमेश होने के से श्लोक ६ के अनुसार शुभफलदायक होता है। किन्तु अष्टमेश होने से सदोष होता है।

३. सूर्य-लग्नेश होने से शुभफलदायक होता है।

पापग्रह

१. बुध-द्वितीयेश एवं एकादशेश होने से श्लोक ६ एवं ८ के अनुसार पापी होता है।

२. शुक्र-दशमेश होने से केन्द्राधिपत्य दोषी तथा तृतीयेश होने से श्लोक ६ के अनुसार पापफलप्रद होता है।

३. शनि-षष्ठेश एवं सप्तमेश होने से श्लोक ६ एवं २४ के अनुसार पापी होता है।

कारकग्रह

सूर्य एवं मंगल परस्पर सम्बन्धित हो तो योगकारक होते हैं।

निकृष्ट योग

मंगल एवं शनि तथा मंगल एवं शुक्र परस्पर सम्बन्धित होने पर भी निकृष्ट योग होता है शनि के षष्ठेश एवं शुक्र के तृतीयेश होने के कारण।

निष्फल योग

गुरु एवं शनि, गुरु एवं सूर्य, गुरु एवं मंगल तथा शुक्र एवं गुरु-ये परस्पर सम्बन्धित होने पर भी निष्फल होते हैं श्लोक २२ के अनुसार।

मारकग्रह

१. बुध-द्वितीयेश एवं एकादशेश होने से श्लोक २४ के अनुसार मारक होता है।

२. शनि-सप्तमेश एवं षष्ठेश होने से श्लोक २४ के अनुसार मारक होता है।

३. चन्द्रमा-व्ययेश होने के कारण श्लोक २६ के अनुसार मारक होता है।

(vi) कन्या लग्न में शुभ, पाप, कारक एवं मारक ग्रह

बृहत्पाराशर होराशास्त्र एवं लघुपाराशरी के अनुसार कन्या लग्न में शुभ, पाप, कारक एवं मारक ग्रह इस प्रकार होते हैं।[१]

शुभग्रह

१. शुक्र-द्वितीयेश एवं नवमेश होने के कारण श्लोक ८ एवं ६ के अनुसार शुभफलदायक होता है।

२. बुध-दशमेश एवं लग्नेश होने से शुभ फलदायक होता है।

३. शनि-पंचमेश होने से श्लोक के अनुसार शुभफलदायक एवं षष्ठेश होने से सदोष होता है।

पापग्रह

१. मंगल-तृतीयेश एवं अष्टमेश होने से श्लोक ६ एवं ८ के अनुसार परमपापी होता है।

२. चन्द्रमा-एकादशेश होने के कारण श्लोक ६ के अनुसार केवल पापी होता है।

३. गुरु-चतुर्थेश एवं सप्तमेश होने से श्लोक १० के अनुसार केन्द्राधिपत्य दोषी होता है।

कारकग्रह

१. बुध एवं शुक्र परस्पर सम्बन्धित होने पर योगकारक होते हैं।

---

१. "कुजजीवेन्दवः पापाः बुधशुक्रौ शुभावहौ।
भार्गवेन्दुसुतावेव भवेतां योगकारकौ।।
मारकोऽपि कविः सूर्यः साहचर्यफलप्रदः।
कन्यालग्नोद्भवस्यैवं फलान्यूह्यानि सूरिभिः।।" -तत्रैव श्लोक ३१-३२

निकृष्ट योग

१. बुध एवं शनि, शुक्र एवं शनि, गुरु एवं शनि तथा गुरु एवं शुक्र, परस्पर सम्बन्धित होने पर निकृष्ट योग बनाते हैं।

(vii) तुला लग्न में शुभ, पाप, कारक एवं मारकग्रह

लघुपाराशरी एवं बृहत्पाराशर होराशास्त्र के अनुसार तुला लग्न में शुभ, पाप, कारक एवं मारकग्रह इस प्रकार हैं।[१]

शुभग्रह

१. शनि–चतुर्थेश एवं पंचमेश होने के कारण श्लोक १० के अनुसार शुभफलदायक तथा श्लोक २० के अनुसार स्वयं कारक।

२. बुध–नवमेश एवं व्ययेश होने से श्लोक ६ एवं ८ के अनुसार शुभफलदायक।

३. शुक्र–लग्नेश एवं अष्टमेश होने से शुभसन्धाता अर्थात् अन्ततोगत्वा शुभफलदायक (किन्तु पाराशरी होरा के अनुसार यह सम होता है।)

पापग्रह

१. गुरु–तृतीयेश एवं षष्ठेश होने से श्लोक ६ के अनुसार केवल पापी होता है।

२. सूर्य–एकादशेश होने के कारण श्लोक ६ के अनुसार पापी होता है।

३. मंगल–द्वितीयेश एवं सप्तमेश होने से श्लोक २४ के अनुसार मारकत्वेन पापी होता है

---

१. "जीवार्कभूसुता पापाः शनैश्चरबुधौ शुभौ।
भवेतां राजयोगस्य कारकौ चन्द्रतत्सुतौ।।
कुजो निहन्ति जीवाद्याः पापा मारकलक्षणाः।
शुक्रः समः फलान्येवं विज्ञेयानि तुलोद्भवे।।" –तत्रैव श्लोक ३३–३४।

कारकग्रह

बुध एवं शनि, बुध एवं चन्द्रमा, शनि एवं चन्द्रमा और शनि एवं मंगल-परस्पर सम्बन्धित होने पर योगकारक होते हैं।

निकृष्ट योग

मंगल एवं बुध एक-दूसरे से सम्बन्धित हों तो निकृष्ट योग होता है, क्योंकि दोनों मारक भी हैं।

निष्फल योग

शुक्र एवं शनि तथा शुक्र एवं बुध के परस्पर सम्बन्धित होने पर भी श्लोक २२ के अनुसार योग निष्फल हो जाता है।

मारकग्रह

१. मंगल-द्वितीयेश एवं सप्तमेश होने से श्लोक २४ के अनुसार मारक होता है। (किन्तु वृहत्पाराशर होराशास्त्र के एक पाठन्तर में-"कुजो साक्षान्न हन्ता स्थान्मारकत्वेन लक्षितः" के अनुसार मारक नहीं माना है।)

२. गुरु-तृतीयेश एवं षष्ठेश केवल पापी होने से श्लोक २७ के अनुसार मारक होता है।

३. सूर्य-एकादशेश होने से श्लोक २७ के अनुसार मारक होता है।

(viii) वृश्चिक लग्न में शुभ, पाप, कारक एवं मारकग्रह

बृहत्पाराशर होरा शास्त्र एवं लघुपाराशरी के अनुसार वृश्चिक लग्न में शुभ, पाप, कारक एवं मारक ग्रह इस प्रकार हैं।[१]

---

१. "सितज्ञशनयः पापाः शुभौ गुरुनिशाकरौ।
सूर्याचन्द्रमसावेव भवेतां योगकारकौ।
कुजः समः सिताद्याश्च पापा मारकलक्षणाः।
एवं फलञ्च विज्ञेयं वृश्चिकोदयजन्मनः।।" -तत्रैव श्लोक ३५-३६

शुभग्रह

१. गुरु–द्वितीयेश एवं पंचमेश होने के कारण श्लोक ६ एवं ८ के अनुसार शुभफलदायक।

२. चन्द्रमा–नवमेश होने से श्लोक ६ के अनुसार शुभफलप्रद होता है।

पापग्रह

१. शनि–तृतीयेश एवं चतुर्थेश होने से श्लोक ६ के अनुसार पापी होता है।

२. मंगल–षष्ठेश एवं लग्नेश होने से श्लोक ६ के अनुसार पापफलदायक है। (किन्तु बृहत्पाराशर होरा के अनुसार लग्नेश होने से सम है।)

३. बुध–अष्टमेश एवं एकादशेश होने से श्लोक ६ के अनुसार पापी तथा अष्टमेशवशात् परम पापी है।

कारकग्रह

सूर्य एवं चन्द्रमा, सूर्य एवं गुरु, गुरु एवं शुक्र तथा चन्द्रमा एवं शुक्र परस्पर सम्बन्ध होने पर योगकारक होते हैं।

निकृष्ट योग

मंगल एवं गुरु, शुक्र एवं गुरु, चन्द्रमा एवं मंगल, चन्द्रमा एवं शनि, शनि एवं गुरु तथा चन्द्रमा एवं शुक्र–परस्पर सम्बन्ध होने पर भी सदोष होने के कारण निकृष्ट योगकारक होते हैं।

मारकग्रह

१. गुरु–द्वितीयेश होने के कारण श्लोक २४ के अनुसार मारक है। (किन्तु बृहत्पाराशर होराशास्त्र के एक पाठ में "जीवो निहन्ता" अर्थात् गुरु को मारक तथा पाठान्तर में "जीवो न हन्ता" अर्थात् गुरु मारक नहीं

माना गया है।) वस्तुतः उसका द्वितीयेश एवं पंचमेश होना इसका कारण है।

२. बुध-अष्टमेश एवं एकादशेश होने से श्लोक २६ के अनुसार मारक है।

३. शुक्र-सप्तमेश एवं द्वादशेश होने से श्लोक २४ एवं २६ के अनुसार मारक है।

(ix) धनु लग्न में शुभ, पाप, कारक एवं मारकग्रह

बृहत्पाराशर होराशास्त्र एवं लघुपाराशरी के अनुसार धनु लग्न में शुभ, पाप, कारक एवं मारकग्रह इस प्रकार होते हैं।[१]

शुभग्रह

१. मंगल-पंचमेश एवं द्वादशेश होने के कारण श्लोक ६ एवं ८ के अनुसार शुभ फलदायक है।

२२. सूर्य-नवमेश होने से श्लोक ६ के अनुसार शुभफलप्रद है

समग्रह

१. गुरु-लग्नेश एवं चतुर्थेश होने से शुभफलदायक है। (किन्तु पाराशरी होरा में इसको केन्द्राधिपत्य दोष के कारण सम माना गया है।)

२. चन्द्रमा्-अष्टमेश होने से श्लोक ११ के अनुसार सम है।

पापग्रह

१. शुक्र-षष्ठेश एवं एकादशेश होने से श्लोक ६ के अनुसार केवल पापी है।

---

१. "एक एव कविः पापः शुभौ भौमदिवाकरौ।
योगो भास्करसौम्याभ्यां निहन्ता भास्करात्मजः।।
गुरुसमफलः ख्यातः शुक्रो मारकलक्षणः।
धनुर्लग्नोद्भवस्यैवं फलं ज्ञेयं विपश्चिता।।" —तत्रैव श्लोक ३७-३८

२. शनि-द्वितीयेश एवं तृतीयेश होने के कारण श्लोक ६ एवं ८ के अनुसार पापी है।

३. बुध-सप्तमेश एवं दशमेश होने से केन्द्राधिपत्य दोषी है।

कारकग्रह

मंगल एवं गुरु, सूर्य एवं गुरु तथा सूर्य एवं बुध-परस्पर सम्बन्ध होने पर योगकारक होते हैं।

निकृष्ट योग

मंगल एवं बुध में परस्पर सम्बन्ध होने पर निकृष्ट योग होता है। क्योंकि एक व्ययेश तथा दूसरा केन्द्राधिपत्य दोष-युक्त है।

मारकग्रह

१. शनि-द्वितीयेश एवं तृतीयेश होने से श्लोक २८ के अनुसार मारक है।

२. शुक्र-षष्ठेश एवं एकादशेश होने से श्लोक २७ के अनुसार मारक है।

(x) मकर लग्न में शुभ, पाप, कारक एवं मारकग्रह

बृहत्पाराशर होरा शास्त्र एवं लघुपाराशरी के अनुसार शुभ, पाप, कारक एवं मारकग्रह इस प्रकार होते हैं।[१]

शुभग्रह

१. शुक्र-पंचमेश एवं दशमेश होने से श्लोक ६ के अनुसार शुभ तथा श्लोक २० के अनुसार स्वयं कारक है।

---

१. "कुजजीवेन्दवः पापा शुभौ भार्गवचन्द्रजौ।
मन्दः स्वयं न हन्ता स्याद् घ्नन्ति पापाः कुजादयः।।
सूर्यः समफलः प्रोक्तः कविरेव सुयोगकृत्।
मृगलग्नोद्भवस्यैवं फलान्यूह्यानि सूरिभिः।।" —तत्रैव श्लोक ३९-४०

२. बुध-नवमेश होने से श्लोक ६ के अनुसार शुभफलदायक एवं षष्ठेश होने से सदोष है।

पापग्रह

१. गुरु-तृतीयेश एवं द्वादशेश होने से श्लोक ६ एवं ८ के अनुसार पापी है।

२. मंगल-चतुर्थेश एवं एकादशेश होने से श्लोक ६ के अनुसार पापी है।

समग्रह

१. सूर्य-अष्टमेश है अतः श्लोक ११ के अनुसार सम है।

कारकग्रह

शुक्र एवं शनि, शुक्र एवं बुध तथा शुक्र एवं चन्द्रमा परस्पर सम्बन्ध होने पर योग कारक होते हैं।

निकृष्ट योग

बुध एवं शनि और बुध एवं चन्द्रमा आपस में सम्बन्ध होने पर निकृष्ट योग बनाते हैं-दोषयुक्त होने के कारण।

निष्फल योग

मंगल एवं शुक्र तथा मंगल एवं बुध परस्पर सम्बन्ध होने पर भी श्लोक २२ के अनुसार निष्फल हो जाते हैं।

मारकग्रह

१. शनि-द्वितीयेश होने से श्लोक २४ के अनुसार मारक है। (किन्तु पाराशरी के अनुसार नहीं।)

२. गुरु-तृतीयेश एवं द्वादशेश गुरु श्लोक २६ के अनुसार मारक है।

३. चन्द्रमा-सप्तमेश होने से श्लोक २४ के अनुसार मारक है।

४. मंगल-एकादशेश होने से श्लोक २७ के अनुसार मारक है। (पाराशरी होरा के पाठान्तर "घ्नन्ति भौमाध्य: परे" के अनुसार मारक है।)

(xi) कुम्भ लग्न में शुभ, पाप, कारक एवं मारकग्रह

लघुपाराशरी एवं बृहत्पाराशर होराशास्त्र के अनुसार कुम्भ लग्न में शुभ, पाप, कारक एवं मारकग्रह इस प्रकार होते हैं।[1]

शुभग्रह

१. शुक्र-चतुर्थेश एवं नवमेश होने के कारण श्लोक ६ के अनुसार शुभफलदायक तथा श्लोक २० के अनुसार स्वयं कारक है।

२. बुध-पंचमेश होने से शुभ तथा अष्टमेश होने से अशुभ-परिणामत: मध्यम है।

३. शनि-लग्नेश एवं द्वादशेश होने के कारण शुभ है।

पापग्रह

१. मंगल-तृतीयेश एवं दशमेश होने से श्लोक ६ के अनुसार पापी है।

२. चन्द्र-षष्ठेश होने से श्लोक ६ के अनुसार केवल पापी है।

३. गुरु-द्वितीयेश एवं एकादशेश होने से श्लोक ६ एवं ८ के अनुसार पापी है।

---

१. "जीवचन्द्रकुजा: पापा शुक्रसूर्यात्मजौ शुभौ।
राजयोगकरो ज्ञेय: कविरेव बृहस्पति:।।
सूर्य: भौमश्च हन्तारो बुधो मध्यफल: स्मृत:।
कुम्भलग्नोद्भवस्यैवं फलान्यूह्यानि सूरिभि:।।" —तत्रैव श्लोक ४१-४२

कारकग्रह

शुक्र एवं शनि तथा शुक्र एवं सूर्य तथा शुक्र एवं मंगल परस्पर सम्बन्धित हों तो योगकारक होते हैं।

निकृष्ट योग

शुक्र एवं बुध परस्पर सम्बन्धित हों तो निकृष्ट योग होता है, बुध के अष्टमेश होने से।

निष्फल योग

बुध एवं शनि, बुध एवं सूर्य तथा बुध एवं मंगल परस्पर सम्बन्धित होने पर भी श्लोक संख्या २२ के अनुसार निष्फल हो जाते हैं।

मारकग्रह

१. गुरु-द्वितीयेश एवं एकादशेश होने से श्लोक २४ के अनुसार मारक हैं।

२. सूर्य-सप्तमेश होने से श्लोक २४ के अनुसार मारक है।

३. मंगल-तृतीयेश होने से मारक है श्लोक २७ के अनुसार।

४. चन्द्रमा-षष्ठेश होने से मारक है श्लोक २७ के अनुसार।

(xii) मीन लग्न में शुभ, पाप, कारक एवं मारकग्रह

लघुपाराशरी एवं बृहत्पाराशर होरा शास्त्र के अनुसार मीन लग्न में शुभ, पाप, कारक एवं मारकग्रह इस प्रकार होते हैं।[१]

शुभग्रह

१. मंगल-द्वितीयेश एवं नवमेश होने के कारण श्लोक ६ एवं ८ के अनुसार शुभ फलदायक है।

---

१. "मन्दशुक्रांशुमत्सौम्याः पापा भौमविधू शुभौ।
महीसुतगुरुयोगकारकौ च महीसुतः।।
मारकोऽपि न हन्ताऽसौ मन्दज्ञौ मारकौ स्मृतौ।
मीनलग्नोद्भवस्यैवं फलानि परिचिन्तयेत्।।" —तत्रैव श्लोक ४३-४४

२. चन्द्र-पंचमेश होने के कारण श्लोक के अनुसार शुभफलदायी है।

पापग्रह

१. शनि-लग्नेश एवं व्ययेश होने के कारण श्लोक ६ के अनुसार पापी है।

२. शुक्र-तृतीयेश एवं अष्टमेश होने से श्लोक ६ एवं ९ के अनुसार परम पापी है

३. सूर्य-षष्ठेश होने से श्लोक ६ के अनुसार पापी है।

४. बुध-चतुर्थेश एवं सप्तमेश होने के कारण श्लोक १० के अनुसार केन्द्राधिपत्य दोषी है।

कारकग्रह

मंगल एवं गुरु तथा चन्द्र एवं गुरु परस्पर सम्बन्ध होने पर योगकारक होते हैं।

मारकग्रह

१. मंगल-द्वितीयेश होन पर भी पाराशरी होरा के अनुसार मारक नहीं होता।

२. बुध-सप्तमेश होने से श्लोक २४ के अनुसार मारक होता है।

३. शनि-एकादशेश तथा द्वादशेश होने से श्लोक २६ के अनुसार मारक होता है।

४. शुक्र-तृतीयेश एवं अष्टमेश होने से श्लोक २६ के अनुसार मारक होता है।

परिशिष्ट-दो

ग्रहों के शुभाशुभत्व पर विविध मत एवं उनकी विवेचना

लघुपाराशरी-समीक्षा लिखते समय इसकी जिन २४ टीकाओं के साथ बृहत्पाराशर होरा, भावकुतूहल, भावार्थरत्नाकर, भावप्रकाश एवं सुश्लोक शतक आदि भावफल के मानक एवं आधार ग्रन्थों का अध्ययन किया गया, उनमें ग्रहों के भावेशानुसार शुभाशुभत्व पर अनेक आचार्यों के विविध मत उपलब्ध हुए। ज्योतिषानुरागी, विज्ञपाठकों की जानकारी के लिए उन सभी मतों को यहाँ प्रस्तुत कर उनकी विवेचना की जा रही है-

(i) लग्नेश के शुभाशुभत्व पर विविध मत

(i) लग्नेश-केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश होने के कारण विशेषरूप से शुभफलदायक होता है-पाराशर[१]

(ii) लग्नेश-अष्टमेश हो तो अन्ततोगत्वा शुभफल देता है-लघुपाराशरी[२]

(iii) लग्नेश-षष्ठेश होने पर दोषी नहीं होता-लोमश[३]

(iv) लग्नेश-षष्ठेश हो तो किंचिद् दोषयुक्त होता है-सज्जन रंजिनी टीका[४]

---

१. बृहत्पाराशर होराशास्त्र-अ० ३५ श्लोक ३

२. लघुपाराशरी श्लोक ९

३. "अलौ षष्ठपदोषो न वृषभोऽपि न दोषभाक्।" लोमश संहिता

४. लघुपाराशरी सज्जनरंजिनी-श्लोक ९

(v) लग्नेश-षष्ठेशत्व एवं केन्द्राधिपत्य जैसे दोषों को दूर करता है-श्री विनायक शास्त्री बेताल[1]

(vi) लग्नेश यदि द्वादशेश हो तो मारक प्रसंग में दोषयुक्त होता है-श्री रामरत्न ओझा[2]

(vii) लग्नेश-शुभग्रह ही क्यों न हो, वह यदि निकृष्ट स्थान का स्वामी हो तो कुछ अंशों में पापफल आ ही जाता है-उद्योतटीका[3]

विवेचना

लग्नेश के शुभाशुभत्व के बारे में उक्त सात मतों का प्रतिपादन करने वाले आचार्यों को हम दो वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं-

(i) सिद्धांतवादी एवं

(ii) समन्वयवादी।

सिद्धांतवादी आचार्य वे हैं जो स्वाभाविक फल का निर्धारण करने के लिए भाव-सिद्धांत के आधार पर निर्णय कर रहे हैं। इन सिद्धांतवादियों की दृष्टि में भावों के गुण-धर्म प्रधान हैं और उनका प्रतिपाद्य भाव सिद्धांत पर आधारित ग्रहों का स्वाभाविक (भावानुरूपी) शुभाशुभत्व है। जबकि समन्वयवादी आचार्य भाव सिद्धांत का होराशास्त्र के अन्य शास्त्रीय नियमों के साथ समन्वय करने के लिए प्रयत्नशील दिखलाई देते हैं। इसीलिए उन्होंने लघुपाराशरी के भाव सिद्धांत, भावों के गुण-धर्म आदि का अन्य जातकग्रन्थों से सम्बन्ध करने हेतु अपना मत प्रतिपादित किया है।

लग्नेश के शुभाशुभत्व पर उक्त सात मतों के प्रतिपादकों में से प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं पंचम मत के प्रतिपादक सिद्धांतवादी और चतुर्थ, षष्ठ एवं सप्तम मत के प्रतिपादक समन्वयवादी हैं लघुपाराशरी को

---

१. लघुपाराशरी विनायक शास्त्री टीका श्लोक ९

२. फलित विकास पृष्ठ १२

३. लघुपाराशरी उद्योत टीका श्लोक ९

सही परिप्रेक्ष्य एवं सन्दर्भ में जानने एवं पहचानने के लिए सिद्धांतवादियों के मत अधिक उपयोगी है, जब अन्य ग्रन्थों के साथ तुलनात्मक निष्कर्ष पर पहुँचने के समन्वयवादी आचार्यों के मत भी तथ्यपूर्ण हैं।

(ii) द्वितीयेश एवं द्वादशेश के शुभाशुभत्व पर विविध मत

(i) द्वितीयेश एवं द्वादशेश स्वयं न तो शुभ होते हैं और न ही पापी-पाराशर[१]

(ii) द्विर्द्वादशेश-दूसरों के साहचर्य एवं अन्य भाव के गुणधर्मानुसार शुभ या अशुभ फल देते हैं-लघुपाराशरी[२]

(iii) द्वितीयेश एवं द्वादशेश के साथ-साथ केन्द्र-त्रिकोण में बैठे हों तो शुभ फल देते हैं।[३]-काटवे

(iv) द्वितीयेश एवं द्वादशेश-शुभ और अशुभ ग्रह के सम्बन्ध से और मित्र स्थान के होने से मित्र द्वारा तथा शत्रु स्थान के होने से शत्रु द्वारा अशुभ फल देते हैं-माधवप्रसाद व्यास।[४]

(v) द्वितीयेश एवं द्वादशेश-अन्य ग्रहों से योग करते हुए मित्र या शत्रु क्षेत्र में बैठते-वैसा ही फल करते हैं-चन्द्रशेखर शास्त्री।[५]

(vi) द्वितीयेश एवं द्वादशेश आयु कक्षा में मारक हो जाते हैं-लघुपाराशरी।[६]

विवेचना

द्वितीयेश एवं द्वादशेश के बारे में प्रथम, द्वितीय एवं षष्ठ मत प्रायः सर्वसम्मत हैं। जबकि तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम मत एक पक्षीय है।

---

१. बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लोक ५
२. (i) लघुपारशरी श्लोक ८
   (ii) सुश्लोकशतक-संज्ञाध्याय श्लोक ८
३. जातक चन्द्रिका-ह० ने० काटवे श्लोक ८
४. लघुपाराशरी-माधव प्रसाद व्यास हिन्दी टीका श्लोक ८
५. लघुपाराशरी-चतुर्वेदचन्द्रशेखर शास्त्री टीका श्लोक ८
६. लघुपाराशरी श्लोक २४ एवं २६

कारण यह है कि श्री काटवे के अनुसार द्वितीयेश एवं द्वादशेश के साथ-साथ केन्द्र-त्रिकोण में बैठने को ही शुभ मान लिया जाय तो उनका अकेले या अन्य ग्रह के साथ बैठना शुभ नहीं होगा जबकि उनका त्रिकोणेश के साथ बैठना शुभ माना जाता है।

चतुर्थ एवं पंचम मत में मित्र एवं शत्रु क्षेत्र के आधार पर इनके शुभाशुभ का निर्णय किया गया है जो कि लघुपाराशरी के सिद्धांत के अनुरूप नहीं है। क्योंकि यह ग्रन्थ भाव के गुण-धर्म के आधार पर भावेशों का शुभाशुभत्व निर्धारित करता है न कि ग्रहों की मित्रता या शत्रुता के आधार पर। अतः चतुर्थ एवं पंचम मत लघुपाराशरी की मूल संकल्पना एवं आधारभूत सिद्धांतों के प्रतिकूल है।

वस्तुतः लघुपाराशरी में द्वितीयेश एवं द्वादशेश को शुभ या अशुभ नहीं मानना एवं उनकी शुभता या अशुभता का निर्धारण दूसरे ग्रहों के साहचर्य एवं अन्य भाव के गुण-धर्मानुसार करना सामान्य प्रक्रिया है। इस सामान्य प्रक्रिया में उनका फल इस प्रकार निर्धारित किया जा सकता है-

(i) द्वितीयेश या द्वादशेश-जैसे शुभ या अशुभ ग्रह के साथ हो वैसा फल देता है।

(ii) यदि सूर्य या चन्द्रमा द्विर्द्वादशेश हो तो वह जिस भाव में स्थित हो उसके अनुसार फल देता है।

(iii) यदि सूर्य या चन्द्रमा द्विर्द्वादशेश होकर अपने ही स्थान में हो तो वे सम होते हैं और होराशास्त्र के सामान्य नियमानुसार फल देते हैं।

(iv) यदि द्वितीय या द्वादश में राहु या केतु अकेले स्थित हों तो वह सम होता है और होराशास्त्र के सामान्य नियमानुसार फल देता है।

(v) यदि द्वितीयेश या द्वादशेश किसी ग्रह के साथ न हों तो अपने दूसरे भाव के अनुसार फल देते हैं।

(vi) यदि वे किसी के साथ हों और दो राशियों के स्वामी भी हों तो साहचर्य एवं दूसरे भाव का गुण-धर्म इन दोनों आधार पर शुभ या अशुभ फल देते हैं।

(vii) यदि द्विर्द्वादशेश साथ-साथ हों तो अपने-अपने भाव के गुण-धर्म से परस्पर प्रभावित करते हैं।

(iii) त्रिषडायाधीश के शुभाशुभत्व पर विविध मत

(i) तृतीय, षष्ठ एवं एकादश भावों के स्वामी पाप फल देते हैं-पराशर, लघुपाराशरी, सुश्लोक शतक।[१]

(ii) त्रिषडायाधीश शुभ ग्रह हों तो शुभ और पाप ग्रह हों तो पाप फल देते हैं-उद्योत, बेताल शास्त्री एवं ठक्कर।[२]

(iii) सूर्य त्रिषडायाधीश हो तो अल्पदोषी होता है-विनायक शास्त्री।[३]

(iv) तृतीयेश तृतीय में, षष्ठेश षष्ठ में और एकादशेश एकादश में हों तो शुभ होता है-सज्जन रंजिनी टीका।[४]

विवेचना

त्रिषडायाधीशों के बारे में उक्त चारों मतों में से प्रथम मत सर्वसम्मत है तथा अन्य तीनों मत बहुसम्मत भी नहीं है। भाव सिद्धांत के आधार पर उनके गुण-धर्मानुसार भावेशों का शुभाशुभत्व निरूपित करने वाले महर्षि पराशर एवं उनके अनुयायी आचार्यों ने निरूपण की प्रक्रिया को नियम एवं उप नियमों से अनिबद्ध किया है। इस विषय में आधारभूत नियम है कि-

---

१. (i) बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लोक ४
   (ii) लघुपाराशरी श्लोक ६
   (iii) सुश्लोक शतक संज्ञाध्याय श्लोक ८

२. (i) लघुपारशरी-उद्योत टीका श्लोक ६
   (ii) लघुपाराशरी-विनायक शास्त्री, टीका-संज्ञाध्याय श्लोक ६
   (iii) लघुपाराशरी-गुजराती टीका उत्तम राम मयाराम ठक्कर श्लो० ६

३. लघुपारारशरी-विनायक शास्त्री टीका श्लोक ६

४. लघुपाराशरी-सज्जनरंजिनी टीका श्लोक ६

"त्रिषडायाधिपाः सर्वे ग्रहाः पापफलाः स्मृताः"

–पराशर

"पतयस्त्रिषडायानां यदि पापफलप्रदाः।"

–लघुपाराशरी

अर्थात् सभी ग्रह तृतीय, षष्ठ एवं एकादश स्थानों के स्वामी होने से पापफलदायक होते हैं। यहाँ ग्रहों का समान रूप से उल्लेख होने के कारण ग्रह के शुभ या अशुभ होने से पापफलदायकता में अन्तर का प्रश्न नहीं उठता। अतः द्वितीय एवं तृतीय मत लघुपाराशरी सिद्धांत के अनुकूल नहीं है।

लघुपाराशरी में कहीं भी किसी भी ग्रह की किसी भाव में स्थिति का विचार नहीं किया गया। अतः तृतीयेश षष्ठेश एवं एकादशेश का अपने भाव में या अन्य भाव में बैठना लघुपाराशरी के प्रसंग से बाहर का विषय है, जिसका उपयोग लघुपाराशरी के नियमों की व्याख्या के लिए नहीं किया जा सकता। इसलिए इस विषय में चतुर्थमत भी ग्राह्य नहीं है।

वस्तुतः द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ मत के प्रतिपादक आचार्यों ने अन्य जातक ग्रन्थों में त्रिषडायाधीश का सामान्य फल देखकर जो लघुपाराशरी से भिन्न है–इस प्रकार की व्याख्या की होगी। क्योंकि अन्य जातक ग्रन्थों में मात्र भाव के गुण–धर्मानुसार भावेश का शुभाशुभत्त्व निर्धारित नहीं किया गया अपितु भाव के साथ–साथ राशि (उच्च, नीच, स्वक्षेत्र, मूलत्रिकोण, शत्रुक्षेत्र आदि), भाव में स्थिति, युति, दृष्टि एवं बल आदि को भी भावेश के शुभाशुभत्व का आधार माना गया है। से सभी तत्त्व फलित ज्योतिष के नियामक हैं।

किन्तु लघुपाराशरी की यह प्रमुख विशेषता है कि यहाँ भाव के गुण–धर्मों तथा भावेशों के परस्पर सम्बन्ध के अलावा अन्य पूर्वोक्त तत्त्वों को भावेशों के शुभाशुभत्व में नियामक नहीं माना गया। अतः द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ मत लघुपाराशरी के प्रसंग में मान्य नहीं हो सकते।

केन्द्रेश के शुभाशुभत्त्व पर विविध मत

केन्द्रेश के शुभाशुभत्त्व का निर्णय सौम्य एवं क्रूर ग्रहों के आधार पर किया जाता है। सौम्य ग्रह केन्द्रेश हो तो शुभ फल नहीं देते। यह शुभ फल नहीं देना केन्द्राधिपत्य दोष कहलाता है। यहाँ पर केन्द्रेश के शुभाशुभत्व का विचार इन दोनों आधारों पर किया जा रहा है–

(i) केन्द्रेश

(i) यदि शुभ ग्रह के स्वामी हों तो शुभ फल नहीं देते और क्रूर केन्द्र के स्वामी हों तो पाप फल नहीं देते[१]–पराशर एवं लघुपाराशरी

(ii) शुभ ग्रह केन्द्र का स्वामी हो तो अविचारित रमणीय और पाप ग्रह केन्द्र का स्वामी हो तो विचारित रमणीय होता है–सज्जन रंजिनी।[२]

(iii) शुभ ग्रह केन्द्रेश हो तो पाप फलदायक और पाप ग्रह केन्द्रेश हो तो शुभ फलदायक होता है–सुश्लोक शतक।[३]

(iv) शुभ ग्रह केन्द्रेश हों तो शुभ फल और पाप ग्रह केन्द्रेश हो तो पाप फल देते हैं[४]–श्री रामरत्न ओझा।

विवेचना

कुण्डली में लग्न, चतुर्थ, सप्तम एवं दशम भाव को केन्द्र कहते हैं। इनमें लग्न केन्द्र एवं त्रिकोण दोनों प्रकार का होने के कारण विशेष फलदायक होता है।[५] अतः केन्द्रेश के प्रसंग में चतुर्थेश, सप्तमेश एवं दशमेश के शुभाशुभत्व का विचार किया जाता है। क्योंकि ये तीनों भाव शुद्ध केन्द्र भाव हैं।

---

१. (i) बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लोक २
(ii) लघुपाराशरी श्लोक ७
२. लघुपाराशरी-सज्जनरंजिनी-संज्ञाध्याय श्लोक ७
३. सुश्लोक शतक संज्ञाध्याय श्लोक ५
४. फलितविकास–पं० रामरत्न ओझा पृ० ८
५. बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लोक ३

चतुर्थेश, सप्तमेश एवं दशमेश की विशेषता यह है कि वे अपने नैसर्गिक स्वभाव को भूल जाते हैं,[१] यथा–

"विस्मरन्ति स्वभावं स्वं जायाराज्यसुखाधिपाः।"

अतः प्रथम मतानुसार सौम्य ग्रह केन्द्रेश शुभ फल नहीं देते और क्रूर ग्रह केन्द्रेश पाप फल नहीं देते-यह नियम लघुपाराशरी एवं पाराशरी होरा का सिद्धांत पक्ष है।

शेष तीनों मत एक पक्षीय है और होराशास्त्र के सामान्य नियमों को ध्यान में रखकर लघुपाराशरी के टीकाकारों ने बतलाये हैं। इस विषय में लघुपाराशरीकार का यह कथन सदैव स्मरणीय है कि "विद्वानों को सामान्य जानकारी होराशास्त्र के सामान्य ग्रन्थों से कर लेनी चाहिए। इस ग्रन्थ (लघुपाराशरी) में विशेष नियमों का ही प्रतिपादन किया गया है।[२] अतः लघुपाराशरी के नियमों की व्याख्या लघुपाराशरी या पाराशरी होरा के योगकारकाध्याय के अनुसार करना ही उचित एवं तर्कसंगत है। इसलिए उक्त तीनों मतों को लघुपाराशरी के सिद्धांतों के अनुकूल नहीं माना जा सकता।

लघुपाराशरी के सिद्धांतानुसार संक्षेप एवं निष्कर्ष के रूप में केन्द्रेश का शुभाशुभत्व इस प्रकार निर्धारित किया जा सकता है–

(i) लग्नेश चाहे वह सौम्य या क्रूर ग्रह हों-केन्द्रेश मानने पर भी शुभ फल देता है।

(ii) सौम्य ग्रह केन्द्रेश हो तो शुभ फल नहीं देते।

(iii) सौम्य ग्रह केन्द्रेश के साथ-साथ त्रिषडायाधीश हो तो पाप फल देते हैं।

(iv) सौम्य ग्रह केन्द्रेश होने के साथ-साथ त्रिकोणेश हों तो शुभ फल देते हैं।

---

१. सांसारिक-सुख, स्त्रीसुख एवं सत्तासुख में लिप्त व्यक्ति स्वभाव को भूल जाता है।

२. देखिए–लघुपाराशरी श्लोक ८

(v) क्रूर ग्रह केन्द्रेश हों तो पाप फल नहीं देते।

(vi) क्रूर ग्रह केन्द्रेश होने के साथ-साथ त्रिषडायाधीश या अष्टमेश हो तो पाप फल देते हैं।

(vii) क्रूर ग्रह केन्द्रेश होने के साथ-साथ त्रिकोणेश हो तो शुभ फल देते हैं।

(ii) केन्द्राधिपत्य-दोष

सौम्य ग्रह को केन्द्रेश होकर शुभ फल न देना केन्द्राधिपत्य दोष कहलाता है। यह दोष शुक्र में सर्वाधिक होता है। उससे कम गुरु में, गुरु से कम बुध में और उससे भी कम केन्द्राधिपत्य दोष चन्द्रमा में होता है। इस विषय में लघुपाराशरी के व्याख्याकारों के मत इस प्रकार हैं–

(i) सौम्य ग्रह केन्द्रेशों में गुरु एवं शुक्र को केन्द्राधिपत्य दोष प्रबल होता है।

(ii) सप्तमेश होने पर गुरु एवं शुक्र को केन्द्राधिपत्य दोष प्रबल होता है।

(iii) सप्तमेश होकर सप्तम स्थान में स्थित होने पर गुरु एवं शुक्र को केन्द्राधिपत्य दोष प्रबल होता है।

इन मतों में तीसरा मत अधिक युक्ति-युक्त एवं तर्कसंगत होने के कारण उचित लगता है।

शुभ ग्रह सप्तमेश की मारक, त्रिषडाय, अष्टम या केन्द्र में स्थिति के अनुसार केन्द्राधिपत्य दोष की वरीयता सूची इस प्रकार होती है–

(i) शुभ ग्रह सप्तमेश मारक स्थान में हो।

(ii) शुभ ग्रह सप्तमेश अष्टम या त्रिषडाय में हो।

(iii) शुभ ग्रह सप्तमेश चतुर्थ या दशम में हो।

(iv) शुभ ग्रह चतुर्थेश या दशमेश हो किन्तु त्रिकोणेश न हो।

(v) सप्तमेश का त्रिकोणेश से सम्बन्ध हो।

(v) त्रिकोणेश के शुभाशुभत्व पर विविध मत

(i) सभी ग्रह त्रिकोणेश होने पर शुभ होते हैं[१]—पराशर, लघुपाराशरी एवं सुश्लोक शतक।

(ii) त्रिकोणेश यदि अष्टमेश हो तो दोषयुक्त होता है[२]—विनायक शास्त्री।

(iii) त्रिकोणेश यदि अष्टमेश हो तो खल होता है[३]—सुश्लोक शतक।

(iv) त्रिकोणेश यदि द्वादशेश हो तो शुभ होता है[४]—सज्जन रंजिनी।

(v) त्रिकोणेश अष्टमेश हो तो शुभ होता है[५]—पराशर।

(vi) त्रिकोणेश यदि द्वितीयेश हो तो भाग्योदय के प्रसंग में कारक तथा आयु खण्ड में मारक होता है[६]—जातक चन्द्रिका।

(vii) त्रिकोणेश यदि षष्ठेश हो तो दोषयुक्त होता है[७]—सुश्लोक शतक।

(viii) नैसर्गिक पाप ग्रह त्रिकोणेश हो तो शुभ फलदायक और नैसर्गिक शुभ ग्रह त्रिकोणेश हो तो अत्यन्त विशिष्ट शुभफलदायक होता है[८]—पं. सीता राम झा।

---

१. (i) बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लोक ३
   (ii) लघुपाराशरी श्लोक ६
   (iii) सुश्लोक शतक—संज्ञाध्याय श्लोक ७

२. लघुपाराशरी—विनायक शास्त्री टीका श्लोक ६

३. सुश्लोक शतक—संज्ञाध्याय श्लोक १३

४. लघुपाराशरी—सज्जनसंजिनी टीका श्लोक ६

५. बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५, श्लोक ६

६. जातक चन्द्रिका—नागपुर श्लोक ७

७. सुश्लोक शतक—संज्ञाध्याय श्लोक १४

८. लघुपाराशरी—पं० सीताराम झा श्लोक ६

(ix) त्रिकोणेश यदि केन्द्रेश हो तो योगकारक होता है[१]—लघुपाराशरी एवं पाराशरी होरा।

विवेचना

त्रिकोणेश की शुभता सभी आचार्यों के मत में निर्विवाद है। प्राय: सभी आचार्यों ने लग्न, पंचम एवं नवम भाव को त्रिकोण माना है। और शारीरिक क्षमता, बुद्धि एवं भाग्य को सफलता की कुंजी मानते हुए त्रिकोणेश को मनोनुकूल शुभ फल देने वाला माना है।

इस प्रसंग में यह ध्यान रखने योग्य बात है कि जो ग्रह दो भावों के स्वामी होते हैं वे सामान्यतया उन दोनों भावों के गुण-धर्मानुसार फल देते हैं। इन दोनों भावों में से कोई एक भाव अधिक शुभतादायक हो तो दूसरे भाव की अशुभता पर्याप्त मात्रा में नियन्त्रित हो जाती है। किन्तु वह नष्ट नहीं होती। यदि भावजन्य अशुभता का नाश मान लिया जाय जो भावजन्य फल व्यर्थ हो जायेगा। अत: यह मानना ही उचित एवं तर्कसंगत है कि परिस्थितिवश भाव फल न्यूनाधिक मात्रा में घट या बढ़ जाता है किन्तु वह नष्ट नहीं होता। इस प्रसंग में द्वितीय, तृतीय षष्ठ एवं सप्तम मत इसी नियम पर आधारित है।

उक्त नौ मतों में से प्रथम, चतुर्थ एवं नवम मत सर्वसम्मत है। अष्टममत में पं. सीताराम झा ने पाप ग्रह को त्रिकोणेश होने पर शुभ फलदायक एवं शुभ ग्रह को त्रिकोणेश होने पर अत्यन्त विशिष्ट शुभ फलदायक माना है। वस्तुत: लघुपाराशरी बृहत्पाराशर होरा शास्त्र एवं इनके परवर्ती भावाकुतूहल, भाव प्रकाश तथा सुश्लोक शतक आदि ग्रन्थों में सभी (शुभ एवं पाप) ग्रहों को त्रिकोणेश होने पर शुभ फलदायक ही माना गया है। उनके शुभ फल में नैसर्गिक सौम्य या क्रूर ग्रह के आधार पर किसी प्रकार का अन्तर नहीं किया गया।

---

१. (i) लघुपाराशरी श्लोक २०

(ii) बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लोक १३

पंचम मत महर्षि पराशर मत है कि यदि अष्टमेश त्रिकोणेश हो तो वह शुभ फल देता है यथा–"कोणपत्वे तु सत्फलः"–अर्थात् सामान्यतया भाग्य स्थान का व्ययेश होने के कारण अष्टमेश शुभ नहीं होता वह त्रिषडायाधीश होने पर अशुभ तथा त्रिकोणेश होने पर शुभ फल देता है।[१] किन्तु लघुपाराशरीकार एवं सुश्लोक शतककार अष्टमेश को तीनों (लग्न, पंचम एवं नवम) त्रिकोण स्थानों में से किसी एक का स्वामी होने पर शुभ नहीं मानते। ये केवल लग्नेश होने पर ही अष्टमेश को शुभ मानते हैं, यथा–

(i) "स एव शुभसन्धाता लग्नाधीशोऽपि चेत्स्वयम्।"

–लघुपाराशरी श्लोक 9

(ii) अष्टमेशोऽपि च शुभो यदि स स्यात्तनूपति।
धर्मस्याप्यष्टमेशस्य पतिरकः खलः स्मृतः।
युग्मलग्ने शनिः पापः स एकोष्टधर्मपः।।

–सुश्लोक शतक-संज्ञाध्याय श्लोक 11, 13

इस विषय में किसी निर्णय से पूर्व पराशर के समकालीन ऋषियों के विचारों का अध्ययन करना आवश्यक है। दुर्भाग्यवश तत्कालीन जातक-ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है। किन्तु लघुपाराशरी की प्राचीन संस्कृत टीकाओं में महर्षि शौनक का एक वचन मिलता है, यथा–

"अष्टमाधिपतेर्दोषस्तुलामेषे नहि क्वचित्।
अलौ षष्ठपदोषो न वृषभोऽपि न दोष भाक्।।"

अर्थात् मेष एवं तुला लग्न में अष्टमेश दोष तथा वृष एवं वृश्चिक लग्न में षष्ठेश दोष नहीं होता। इस वचन से लगता है कि अष्टमेशत्व दोष को दूर करने का सामर्थ्य लग्न में ही है। स्वयं पराशर लग्न को

---

१. "तत्र भाग्यव्ययेशत्त्वात् रन्ध्रेशो न शुभप्रदः।
त्रिमदायाधिपत्येऽथो कोणपत्त्वे तु सत्फलः।।"
–बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लोक ६

केन्द्र एवं त्रिकोण स्थान मानकर विशेष रूप से शुभफलदायक माना है।[१] इसलिए जो सामर्थ्य या विशेषता लग्न में है वह पंचम या नवम भाव में नहीं है। अतः लग्नेश के अलावा अन्य त्रिकोणेश अष्टमेशत्व दोष को कैसे दूर कर सकते हैं? इस बात का विद्वज्जनों को गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए।

(vi) अष्टमेश के शुभाशुभत्व पर विविध मत

(i) अष्टमेश अशुभ होता है किन्तु यदि वह लग्नेश हो तो शुभ हो जाता है[२]—लघुपाराशरी एवं सुश्लोक शतक आदि।

(ii) सूर्य एवं चन्द्रमा को अष्टमेश होने का दोष नहीं होता[३]—लघुपाराशरी, पाराशरी होरा एवं सुश्लोक शतक।

(iii) सूर्य एवं चन्द्रमा अष्टमेश होने से पूर्णरूपेण दोषयुक्त नहीं होते तो पूर्णरूपेण दोषमुक्त भी नहीं होते—अर्थात् कुछ न कुछ दोषी रहते हैं[४]—विनायक शास्त्री

(iv) अष्टमेश यदि त्रिकोणेश हो तो खल होता है[५]—सुश्लोक शतक

(v) त्रिकोणेश यदि अष्टमेश भी हो और अष्टम स्थान में स्थित हो तो दोषयुक्त नहीं होता[६]—श्री रामरत्न ओझा

---

१. तत्रैव श्लोक ३

२. (i) लघुपाराशरी श्लोक ९
   (ii) सुशलोक शतक—संज्ञाध्याय श्लोक ११
   (iii) लघुपाराशरी—उद्योत टीका श्लोक ९

३. (i) लघुपाराशरी श्लोक ११
   (ii) बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लोक ८

४. (i) लघुपाराशरी—विनायक शास्त्री टीका श्लोक ९
   (ii) लघुपाराशरी—सज्जनरंजिनी टीका श्लोक ९

५. सुश्लोक शतक —संज्ञाध्याय श्लोक १३

६. फलित विकास पृ० १४

(vi) सूर्य एवं चन्द्रमा अष्टमेश होकर अष्टमस्थ हों तो वे शुभ होते हैं[१]—दीवान रामचन्द्र कपूर

(vii) अष्टमेश यदि त्रिकोणेश हो तो शुभ होता है[२]—पराशर

विवेचना

इन सात मतों में से प्रथम एवं द्वितीय मत प्रायः सर्वसम्मत हैं। तृतीय एवं चतुर्थ मत की विवेचना त्रिकोणेश के प्रसंग में की जा चुकी है। पंचम एवं षष्ठमत एक पक्षीय है। इन मतों का अन्य आचार्यो ने इसलिए समर्थन नहीं किया कि पाप स्थान का स्वामी पाप स्थान में स्थित होकर शुभ नहीं हो सकता। तथा सप्तम मत की विवेचना त्रिकोणेश के प्रसंग में विस्तार से की जा चुकी है।

(vii) राहु एवं केतु का शुभाशुभत्व

राहु एवं केतु के स्वरूप तथा उनके शुभाशुभत्व के बारे में अनुच्छेद 31, 32 एवं 33 में विस्तारपूर्वक विवेचना किया जा चुका है।

---

१. लघुपाराशरी भाष्य—दीवान रामचन्द्र कपूर-श्लोक ९

२. बृहत्पाराशर होराशास्त्र अ० ३५ श्लोक ६

परिशिष्ट-तीन
SADDAM HUSSAIN

जन्म तिथि २८/०७/१९३७ जन्म समय १२:००:०० स्थान Baghdad
अक्षांश ३३:२०: ० उत्तर रेखांश ४४:३०: ० पूर्व मध्य रेखांश ४५:०:० पूर्व
अयनांश २२:५९:२३

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		६:३६:४७	तुला	चित्रा	४	मंगल	चन्द्र
सूर्य		११:५१:३६	कर्क	पुष्य	३	शनि	चन्द्र
चन्द्र		१०:४९:४२	मीन	उ० भाद्रपद	३	शनि	सूर्य
मंगल		२:२५:०८	वृचि	विशाखा	४	गुरु	राहु
बुध		१:२३:१८	सिंह	मघा	१	केतु	शुक्र
गुरु	-व	२७:४६:३०	धनु	उत्तराषाढ़ा	१	सूर्य	चन्द्र
शुक्र		२८:४४:१७	वृष	मृगशिरा	२	मंगल	शनि
शनि	-व	१२:०२:२३	मीन	उ० भाद्रपद	३	शनि	चन्द्र
राहु	-व	२०:४७:३९	वृश्चिक	ज्येष्ठा	२	बुध	शुक्र
केतु	-व	२०:४७:३९	वृष	रोहिणी	४	चन्द्र	शुक्र

लग्न कुंडली
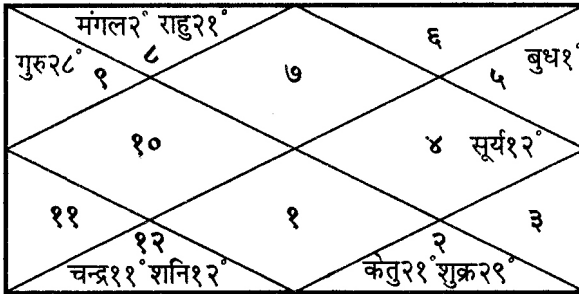
मंगल	विंशोत्तरी चन्द्र	धा०	योगिनी भ्रा०
से: २२/११/२००५	से: २२/११/१९९५	से: ०६/१०/१९९९	से: ०५/१०/२००२
तक: २२/११/२०१२	तक: २२/११/२००५	तक: ०५/१०/२००२	तक: ०५/१०/२००६
मंगल २०/०४/२००६	चन्द्र २२/०९/१९९६	धा० ०५/०१/२०००	भ्रा० १७/०३/२००३
राहु ०८/०५/२००७	मंगल २३/०४/१९९७	भ्रा० ०६/०५/२०००	भ० ०६/१०/२००३
गुरु १३/०४/२००८	राहु २३/१०/१९९८	भ० ०५/१०/२०००	उ० ०५/०६/२००४
शनि २३/०५/२००९	गुरु २२/०२/२०००	उ० ०६/०४/२००१	सि०१६/०३/२००५
बुध २०/०५/२०१०	शनि २२/०९/२००१	सि० ०५/११/२००१	सं० ०४/०२/२००६
केतु १७/१०/२०१०	बुध २१/०२/२००३	सं० ०६/०७/२००२	मं० १७/०३/२००६
शुक्र १७/१२/२०११	केतु २२/०९/२००३	मं० ०६/०८/२००२	पिं० ०६/०६/२००६
सूर्य २२/०४/२०१२	शुक्र २३/०५/२००५	पिं० ०५/१०/२००२	धा० ०५/१०/२००६
चन्द्र २२/११/२०१२	सूर्य २२/११/२००५		

I.K.GUJRAL

जन्म तिथि ०४/१२/१९१९ जन्म समय २२:००:०० स्थान JHELAM
अक्षांश ३४:३१:० उत्तर रेखांश ६७:१३:० पूर्व मध्य रेखांश ८२:३०:० पूर्व
अयनांश २२:४४:३२

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		२२:३१:०१	कर्क	आश्लेषा	२	बुध	चन्द्र
सूर्य		१८:४४:३०	वृश्चिक	ज्येष्ठा	१	बुध	केतु
चन्द्र		१०:१६:५९	मेष	अश्विनी	४	केतु	शनि
मंगल		९:३३:२२	कन्या	उ०फाल्गुनि	४	सूर्य	शुक्र
बुध	-व अ	१४:४०:२५	वृश्चिक	अनुराधा	४	शनि	राहु
गुरू		२५:२३:५८	कर्क	आश्लेषा	३	बुध	राहु
शुक्र		२:२४:१८	तुला	चित्रा	३	मंगल	केतु
शनि		१८:३७:०१	सिंह	पू०फाल्गुनि	२	शुक्र	राहु
राहु		२:०८:५१	वृश्चिक	विशाखा	४	गुरु	राहु
केतु		२:०८:५१	वृष	कृतिका	२	सूर्य	गुरु

लग्न कुंडली

गुरु२५° ४
शनि१९° ५
मंगल१०° ६
शुक्र२° ७
राहु२° बुध१५° सूर्य१९° ८
९
१०
११
१२
१ चन्द्र१०°
२ केतु२°
३

बुध विंशोत्तरी शनि		उ० योगिनी सि०	
से: ११/०७/२०१७	से: १२/०७/१९९८	से:०३/११/१९९७	से: ०३/११/२००३
तक: १२/०७/२०३४	तक: ११/०७/२०१७	तक: ०३/११/२००३	तक: ०३/११/२०१०
बुध ०८/१२/२०१९	शनि १४/०७/२००१	उ० ०३/११/१९९८	सि० १५/०३/२००५
केतु ०४/१२/२०२०	बुध २३/०३/२००४	सि० ०३/०१/२०००	सं० ०४/१०/२००६
शुक्र ०५/१०/२०२३	केतु ०२/०५/२००५	सं० ०४/०५/२००१	मं० १४/१२/२००६
सूर्य ११/०८/२०२४	शुक्र ०२/०७/२००८	मं. ०४/०७/२००१	पिं० ०५/०५/२००७
चन्द्र १०/०१/२०२६	सूर्य १४/०६/२००९	पिं० ०३/११/२००१	धा० ०४/१२/२००७
मंगल ०७/०१/२०२७	चन्द्र १३/०१/२०११	धा० ०५/०५/२००२	भ्रा० १३/०९/२००८
राहु २७/०७/२०२९	मंगल २२/०२/२०१२	भ्रा० ०३/०१/२००३	भ० ०३/०९/२००९
गुरू ०१/११/२०३१	राहु २९/१२/२०१४	भ० ०३/११/२००३	उ० ०३/११/२०१०
शनि १२/०७/२०३४	गुरू ११/०७/२०१७		

JYOTI BASU

जन्म तिथि ०८/०७/१९१४ जन्म समय ११:००:०० स्थान Calcutta अक्षांश २२:३०:० उत्तर रेखांश ८८:२०:० पूर्व मध्य रेखांश ८८:२०:० पूर्व अयनांश २२:३९:५४

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		७:३७:१९	कन्या	उ०फाल्गुनि	४	सूर्य	केतु
सूर्य		२२:३१:१०	मिथु	पुनर्वसु	१	गुरू	शनि
चन्द्र		०:३२:३०	मकर	उत्तराषाढ़ा	२	सूर्य	केतु
मंगल		१४:२४:००	सिंह	पू०फाल्गुनि	१	शुक्र	शुक्र
बुध	–व	५:३१:४७	कर्क	पुष्य	१	शनि	बुध
गुरू	–व	२८:३०:१८	मकर	धनिष्ठा	२	मंगल	शनि
शुक्र		२८:४१:४४	कर्क	आश्लेषा	४	बुध	शनि
शनि		२:११:२५	मिथु	मृगशिरा	३	मंगल	केतु
राहु	–व	१४:१७:५४	कुम्भ	शतभिषा	३	राहु	बुध
केतु	–व	१४:१७:५४	सिंह	पू०फाल्गुनि	१	शुक्र	शुक्र

लग्न कुंडली
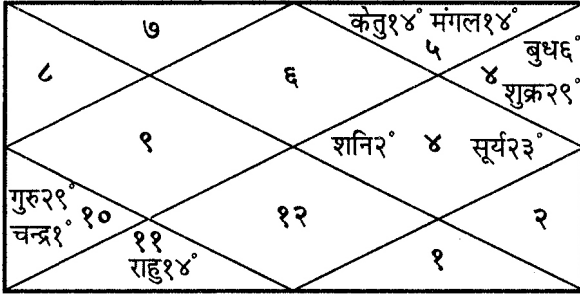
केतु	विंशोत्तरी भ०	भ्रा०	योगिनी भ०
से: ०९/१०/२००५	से: ०९/१०/१९८८	से: ११/०३/१९९८	से: ११/०३/२००२
तक: ०९/१०/२०१२	तक: ०९/१०/२००५	तक: ११/०३/२००२	तक: ११/०३/२००७
केतु ०७/०३/२००६	बुध ०८/०३/१९९१	भ्रा० २१/०८/१९९८	भ० २०/११/२००२
शुक्र ०९/०५/२००७	केतु ०४/०३/१९९२	भ० ११/०३/१९९९	उ० २०/०९/२००३
सूर्य १२/०९/२००७	शुक्र ०३/०१/१९९५	उ० १०/११/१९९९	सि००९/०९/२००४
चन्द्र १२/०४/२००८	सूर्य ०९/११/१९९५	सि० २०/०८/२०००	सं० २०/१०/२००५
मंगल ०९/०९/२००८	चन्द्र १०/०४/१९९७	सं० ११/०७/२००१	मं० १०/१२/२००५
राहु २७/०९/२००९	मंगल ०७/०४/१९९८	मं० २०/०८/२००१	पिं० २१/०३/२००६
गुरू ०३/०९/२०१०	राहु २४/१०/२०००	पिं० ०९/११/२००१	धा० २१/०८/२००६
शनि १३/१०/२०११	गुरू ३०/०१/२००३	धा० ११/०३/२००२	भ्रा० ११/०३/२००७
बुध ०९/१०/२०१२	शनि ०९/१०/२००५		

BALA SAHIB THAKRE

जन्म तिथि २३/०१/१९२७ जन्म समय ०७:००:०० स्थान Poona
अक्षांश १८:३४:० उत्तर रेखांश ७३:५८:० पूर्व मध्य रेखांश ८३:३०:० पूर्व
अयनांश २२:५०:०२

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		५:४२:४२	मकर	उत्तराषाढ़ा	३	सूर्य	बुध
सूर्य		९:१२:४६	मकर	उत्तराषाढ़ा	४	सूर्य	शुक्र
चन्द्र		६:११:५५	कन्या	उ०फाल्गुनि	३	सूर्य	बुध
मंगल		२३:०३:५८	मेष	भरणी	३	शुक्र	शनि
बुध	अ	५:३१:२९	मकर	उत्तराषाढ़ा	३	सूर्य	बुध
गुरू		८:११:२३	कुम्भ	शतभिषा	१	राहु	राहु
शुक्र		२४:१०:५६	मकर	धनिष्ठा	१	मंगल	राहु
शनि		१२:२९:२४	वृश्चिक	अनुराधा	३	शनि	मंगल
राहु	-व	१४:०२:०८	मिथु	आर्द्रा	३	राहु	बुध
केतु	-व	१४:०२:०८	धनु	पूर्वाषाढ़ा	१	शुक्र	शुक्र

लग्न कुंडली

गुरु८° ११
१०
केतु१४° ९
१२
सूर्य९°
बुध६°
शुक्र२४°
८ शनि१२°
मंगल२३° १
७
२
४
६ चन्द्र६°
३ राहु१४°
५
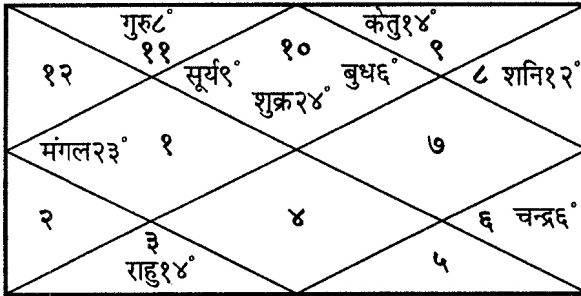
केतु	विंशोत्तरी बुध	सि०	योगिनी सं०
से: ०९/१०/२०१५	से: ०९/१०/१९९८	से: २१/०१/१९९४	से: २१/०१/२००१
तक: ०९/१०/२०२२	तक: ०९/१०/२०१५	तक: २१/०१/२००१	तक: २१/०१/२००९
केतु ०७/०३/२०१६	बुध ०७/०३/२००१	सि० ०२/०६/१९९५	सं० ०१/११/२००२
शुक्र ०७/०५/२०१७	केतु ०४/०३/२००२	सं० २१/१२/१९९६	मं० २१/०१/२००३
सूर्य ११/०९/२०१७	शुक्र०२/०१/२००५	मं० ०२/०३/१९९७	पिं० ०३/०७/२००३
चन्द्र १३/०४/२०१८	सूर्य ०८/११/२००५	पिं० २२/०७/१९९७	धा० ०२/०३/२००४
मंगल ०९/०९/२०१८	चन्द्र १०/०४/२००७	धा० २०२/१९९८	भ्रा० २१/०१/२००५
राहु २७/०९/२०१९	मंगल ०६/०४/२००८	भ्रा० ०२/१२/१९९८	भ० ०३/०३/२००६
गुरू ०२/०९/२०२०	राहु २४/१०/२०१०	भ० २२/११/१९९९	उ० ०३/०७/२००७
शनि १२/१०/२०२१	गुरू २९/०१/२०१३	उ० २१/०१/२००१	सि० २१/०१/२००९
बुध ०९/१०/२०२२	शनि ०९/१०/२०१५		

BANSHILAL

जन्म तिथि २६/०८/१९२७ जन्म समय ०६:००:०० स्थान Bhiwani
अक्षांश २८:५०:० उत्तर रेखांश ७६:१०:० पूर्व मध्य रेखांश ८२:३०:० पूर्व
अयनांश २२:५०:३१

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		८:१५:०१	सिंह	मघा	३	केतु	गुरू
सूर्य		८:५६:३४	सिंह	मघा	३	केतु	गुरू
चन्द्र		२४:२८:४४	कर्क	आश्लेषा	३	बुध	राहु
मंगल		२७:०९:००	सिंह	उ०फाल्गुनि	१	सूर्य	सूर्य
बुध	अ	१:१८:५६	सिंह	मघा	१	केतु	शुक्र
गुरू	-व	९:००:२२	मीन	उ०भाद्रपद	२	शनि	शुक्र
शुक्र	-व	१:३३:२६	कन्या	उ०फाल्गुनि	२	सूर्य	गुरू
शनि		८:३०:३७	वृश्चि	अनुराधा	२	शनि	शुक्र
राहु	-व	२:५०:५०	मिथु	मृगशिरा	३	मंगल	शुक्र
केतु	-व	२:५०:५०	धनु	मूल	१	केतु	शुक्र

लग्न कुंडली

गुरू विंशोत्तरी	राहु	भ्रा० योगिनी	भ०
से: ०९/०९/२००२	से: ०८/०९/१९८४	से: २२/०४/१९९७	से: २२/०४/२००१
तक: ०९/०९/२०१८	तक: ०९/०९/२००२	तक: २२/०४/२००१	तक: २२/०४/२००६
गुरू २७/१०/२००४	राहु २३/०५/१९८७	भ्रा० ०१/१०/१९९७	भ० ३१/१२/२००१
शनि १०/०५/२००७	गुरू १५/१०/१९८९	भ० २२/०४/१९९८	उ० ०१/११/२००२
बुध १५/०८/२००९	शनि २१/०८/१९९२	उ० २१/१२/१९९८	सि० २२/१०/२००३
केतु २२/०७/२०१०	बुध ११/०३/१९९५	सि० ०२/१०/१९९९	सं० ०१/१२/२००४
शुक्र २२/०३/२०१३	केतु २९/०३/१९९६	सं० २१/०८/२०००	मं० २०/०१/२००५
सूर्य ०८/०१/२०१४	शुक्र २९/०३/१९९९	मं० ०१/१०/२०००	पिं० ०२/०५/२००५
चन्द्र १०/०५/२०१५	सूर्य २०/०२/२०००	पिं०२१/१२/२०००	धा० ०१/१०/२००५
मंगल १५/०४/२०१६	चन्द्र२१/०८/२००१	धा० २२/०४/२००१	भ्रा०२२/०४/२००६
राहु ०९/०९/२०१८	मंगल ०९/०९/२००२		

BILL CLINTON

जन्म तिथि १९/०८/१९४६ जन्म समय ०५:००:०० स्थान Arkansas

अक्षांश ३३:४८: ० उत्तर रेखांश –९१:३:५९ पश्चिम मध्य रेखांश –७५: ०: ०

पश्चिम अयनांश २३:०६:२५

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		१३:३६:२९	कर्क	पुष्य	४	शनि	राहु
सूर्य		२:४१:५९	सिंह	मघा	१	केतु	शुक्र
चन्द्र		२४:२०:५९	मेष	भरणी	४	शुक्र	बुध
मंगल		१३:०७:०२	कन्या	हस्त	१	चन्द्र	राहु
बुध		१४:२०:१३	कर्क	पुष्य	३	शनि	राहु
गुरू		०:०४:५४	तुला	चित्रा	३	मंगल	बुध
शुक्र		१७:४७:४४	कन्या	हस्त	३	चन्द्र	बुध
शनि		९:००:१२	कर्क	पुष्य	२	शनि	शुक्र
राहु	–व	२५:०६:०१	वृष	मृगशिरा	१	मंगल	राहु
केतु	–व	२५:०६:०१	वृश्चिक	ज्येष्ठा	३	बुध	राहु

लग्न कुंडली

सूर्य३° ५
मंगल१३° शुक्र१८° ६
बुध१४° ४ शनि९°
३
२ राहु२५°
गुरु०° ७
१ चन्द्र२४°
केतु२५° ८
१०
१२
९
११

शनि	विंशोत्तरी गुरू	सं०	योगिनी मं०
से: ०८/०२/२००७	से: ०८/०२/१९९१	से: ०१/०७/१९९६	से: ०१/०७/२००४
तक: ०८/०२/२०२६	तक: ०८/०२/२००७	तक: ०१/०७/२००४	तक: ०२/०७/२००५
शनि ११/०२/२०१०	गुरू २९/०३/१९९३	सं० १२/०४/१९९८	मं० ११/०७/२००४
बुध २१/१०/२०१२	शनि १०/१०/१९९५	मं० ०२/०७/१९९८	पिं० ०१/०८/२००४
केतु ३०/११/२०१३	बुध १५/०१/१९९८	पिं० ११/१२/१९९८	धा० ३१/०८/२००४
शुक्र ३०/०१/२०१७	केतु २२/१२/१९९८	धा० १२/०८/१९९९	भ्रा० ११/१०/२००४
सूर्य १२/०१/२०१८	शुक्र २२/०८/२००१	भ्रा० ०१/०७/२०००	भ० ०१/१२/२००४
चन्द्र १३/०८/२०१९	सूर्य १०/०६/२००२	भ० ११/०८/२००१	उ० ३०/०१/२००५
मंगल २१/०९/२०२०	चन्द्र १०/१०/२००३	उ० ११/१२/२००२	सि० ११/०४/२००५
राहु २९/०७/२०२३	मंगल १५/०९/२००४	सि० ०१/०७/२००४	सं० ०२/०७/२००५
गुरू ०८/०२/२०२६	राहु ०८/०२/२००७		

DAYNA

जन्म तिथि ०१/०७/१९६१ जन्म समय १७:००:०० स्थान England

अक्षांश ५५: ०: ० उत्तर रेखांश -२: ०: ० पश्चिम मध्य रेखांश ०: ०: ० पूर्व

अयनांश २३:१९:००

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		२:४४:३५	वृश्चि	विशाखा	४	गुरू	राहु
सूर्य		१६:१६:३४	मिथु	आर्द्रा	३	राहु	शुक्र
चन्द्र		०:३८:११	कुम्भ	धनिष्ठा	३	मंगल	बुध
मंगल		८:१७:०७	सिंह	मघा	३	केतु	गुरू
बुध	-व अ	९:५५:१४	मिथु	आर्द्रा	१	राहु	गुरू
गुरू	-व अ	११:४७:१७	मकर	श्रवण	१	चन्द्र	मंगल
शुक्र		१:००:२८	वृष	कृतिका	२	सूर्य	राहु
शनि	-व	४:३०:०८	मकर	उत्तराषाढ़ा	३	सूर्य	शनि
राहु	-व	४:४२:०२	सिंह	मघा	२	केतु	चन्द्र
केतु	-व	४:४४:०२	कुम्भ	धनिष्ठा	४	मंगल	शुक्र

लग्न कुंडली

बुध विंशोत्तरी	शनि	धा० योगिनी	भ्रा०
से :३१/०८/२०१७	से :३१/०८/१९९८	से :२८/०५/१९८	से :२७/०५/२००१
तक :३१/०८/२००४	तक :३१/०८/२०१७	तक :२७/०५/२००१	तक :२७/०५/२००५
बुध २७/०१/२०२०	शनि ०३/०९/२००१	धा० २७/०८/१९९८	भ्रा० ०६/११/२००१
केतु २४/०१/२००१	बुध १३/०५/२००४	भ्रा० २७/१२/१९९८	भ० २८/०५/२००२
शुक्र २५/११/२०२३	केतु २२/०६/२००५	भ० २८/०५/१९९९	उ० २६/०१/२००३
सूर्य ३०/०९/२०२४	शुक्र २१/०८/२००८	उ० २६/११/१९९९	सि० ०६/११/२००३
चन्द्र ०१/०३/२०२६	सूर्य ०३/०८/२००९	सि० २७/०६/२०००	सं० २६/०९/२००४
मंगल २७/०२/२०२७	चन्द्र ०५/०३/२०११	सं० २५/०२/२००१	मं० ०५/११/२००४
राहु १५/०९/२०२९	मंगल १३/०४/२०१२	मं० २७/०३/२००१	पिं०२६/०१/२००५
गुरू २२/१२/२०३१	राहु १७/०२/२०१५	पिं० २७/०५/२००१	धा० २७/०५/२००५
शनि३१/०८/२०३४	गुरू ३१/०८/२०१७		

GEORGE FERNANDIZ

जन्म तिथि ०३/०६/१९३० जन्म समय ०४:२५:०० स्थान Mangalore
अक्षांश १२:५४:०० उत्तर रेखांश ७४:५१: ० पूर्व मध्य रेखांश ८२:३०: ० पूर्व
अयनांश २२:५२:५७

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		२२:४५:५३	मेष	भरणी	३	शुक्र	शनि
सूर्य		१८:४५:५१	वृष	रोहिणी	३	चन्द्र	बुध
चन्द्र		६:०५:५८	सिंह	मघा	२	केतु	राहु
मंगल		६:५८:५४	मेष	अश्विनी	३	केतु	राहु
बुध		०:५७:५६	वृष	कृतिका	२	सूर्य	राहु
गुरू		१:३७:३६	मिथु	मृगशिरा	३	मंगल	बुध
शुक्र		१७:४१:११	मिथु	आर्द्रा	४	राहु	सूर्य
शनि	-व	१७:३८:२४	धनु	पूर्वाषढ़ा	२	शुक्र	मंगल
राहु	-व	९:१०:२५	मेष	अश्विनी	३	केतु	गुरू
केतु	-व	९:१०:२५	तुला	स्वाति	१	राहु	गुरू

लग्न कुंडली

सूर्य१९° बुध१° २
गुरु२° शुक्र१८° ३
मंगल७° १ राहु९°
१२
११
४
१०
चन्द्र६° ५
केतु९° ७
९ शनि१८°
६
८

शनि	विंशोत्तरी गुरू	भ्रा०	योगिनी भ०
से : २१/०३/२०११	से : २१/०३/१९९५	से : १८/०२/१९९६	से : १८/०२/२०००
तक : २१/०३/२०३०	तक : २१/०३/२०११	तक : १८/०२/२०००	तक : १७/०२/२००५
शनि २४/०३/२०१४	गुरू ०८/०५/१९९७	भ्रा० ३०/०७/१९९६	भ० २९/१०/२०००
बुध ०१/१२/२०१६	शनि २०/११/१९९९	भ० १७/०२/१९९७	उ० २९/०८/२००१
केतु १०/०१/२०१८	बुध २४/०२/२००२	उ० १९/१०/१९९७	सि० १९/०८/२००२
शुक्र ११/०३/२०२१	केतु ३१/०१/२००३	सि० ३०/०७/१९९८	सं० २९/०९/२००३
सूर्य २३/०९/२०२३	सूर्य २१/०७/२००६	सं० २०/०६/१९९९	मं० १९/११/२००६
मंगल ०१/११/२०२४	चन्द्र २०/११/२००७	मं० ३०/०७/१९९९	पिं० २८/०२/२००४
राहु ०८/०९/२०२७	मंगल २५//१०/२००८	पिं० १९/१०/१९९९	धा० ३०/०७/२००४
गुरू २१/०३/२०३०	राहु २१/०३/२०११	धा० १८/०२/२०००	भ्रा० १७/०२/२००५

KANSHI RAM

जन्म तिथि १२/०४/१९३२ जन्म समय ०७:३०:०० स्थान Abohar

अक्षांश ३०: ९: ० उत्तर रेखांश ७४:११: ० पूर्व मध्य रेखांश ८२:३०: ० पूर्व

अयनांश २२:५४:४१

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		२३:५७:१७	मेष	भरणी	४	शुक्र	शनि
सूर्य		२९:०२:३५	मीन	रेवती	४	बुध	शनि
चन्द्र		५:०८:०९	मिथु	मृगशिरा	४	मंगल	सूर्य
मंगल	अ	१३:५४:४३	मीन	उ०भाद्रपद	४	शनि	राहु
बुध	-व पू	२६:११:३९	मीन	रेवती	३	बुध	गुरू
गुरू		१९:४२:३८	कर्क	आश्लेषा	१	बुध	शुक्र
शुक्र		१४:२८:२५	वृष	रोहिणी	२	चन्द्र	गुरू
शनि		१०:५९:२५	मकर	श्रवण	१	चन्द्र	चन्द्र
राहु	-व	२:५६:३८	मीन	पू०भाद्रपद	४	गुरू	राहु
केतु	-व	२:५६:३८	कन्या	उ०फाल्गुनि	२	सूर्य	गुरू

लग्न कुंडली

केतु	विंशोत्तरी बुध	सं०	योगिनी मं०
से : ३१/०१/२००३	से : ३१/०१/१९८६	से : १३/०३/१९९७	से : १३/०३/२००५
तक : ३१/०१/२०१०	तक : ३१/०१/२००३	तक : १३/०३/२००५	तक : १४/०३/२००६
केतु २९/०६/२००३	बुध २८/०६/१९८८	सं० २३/१२/१९९८	मं० २३/०३/२००५
शुक्र २८/०८/२००४	केतु २५/०६/१९९८	मं० १४/०३/१९९९	पिं० १३/०४/२००५
सूर्य ०३/०१/२००५	शुक्र २५/०४/१९९२	पिं० २३/०८/१९९९	धा० १३/०५/२००५
चन्द्र ०४/०८/२००५	सूर्य ०२/०३/१९९३	धा० २३/०४/२०००	भ्रा० २३/०६/२००५
मंगल ३१/१२/२००५	चन्द्र ०१/०८/१९९४	भ्रा० १३/०३/२००१	भ० १२/०८/२००५
राहु १९/०१/२००७	मंगल २९/०७/१९९५	भ० २३/०४/२००२	उ० १२/१०/२००५
गुरू २६/१२/२००७	राहु १५/०२/१९९८	उ० २३/०८/२००३	सि० २२/१२/२००५
शनि ०२/०२/२००९	गुरू २३/०५/२०००	सि० १३/०३/२००५	सं० १४/०३/२००६
बुध ३१/०१/२०१०	शनि ३१/०१/२००३		

MADHAV RAO SINDHIYA

जन्म तिथि ०९/०३/१९४५ जन्म समय २४:००:०० स्थान Gwalior

अक्षांश २४:५४: ० उत्तर रेखांश ७४:५५: ० पूर्व मध्य रेखांश ८२:३०: ० पूर्व

अयनांश २३:०५:१३

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		२५:२९:१६	तुला	विशाखा	२	गुरू	बुध
सूर्य		२५:४१:५७	कुम्भ	पू०भाद्रपद	२	गुरू	बुध
चन्द्र		२५:५९:४९	धनु	पूर्वाषाढ़ा	४	शुक्र	केतु
मंगल		२४:५५:२७	मकर	धनिष्ठा	१	मंगल	राहु
बुध	अ	३:५३:५१	मीन	उ०भाद्रपद	१	शनि	शनि
गुरू	-व	२९:५८:४७	सिंह	उ०फाल्गुनि	१	सूर्य	राहु
शुक्र		६:०२:२८	मेष	अश्विनी	२	केतु	राहु
शनि		१०:४५:२८	मिथु	आर्द्रा	२	राहु	शनि
राहु	-व	२३:२५:००	मिथु	पुनर्वसु	२	गुरू	शनि
केतु	-व	२३:२५:००	धनु	पूर्वाषाढ़ा	४	शुक्र	शनि

लग्न कुंडली

८
६
चन्द्र२६° ९
केतु२३°
७
५ गुरु३०°
मंगल२५° १०
४
सूर्य२६° ११
शुक्र६°
१
राहु२३°
३
शनि११°
१२
बुध४°
२
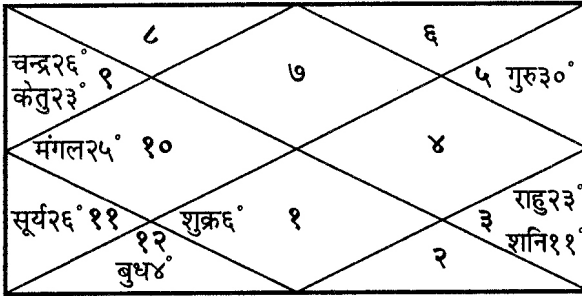
शनि	विंशोत्तरी	गुरू		भ०	योगिनी	उ०

से : १२/०३/२००३	से : १२/०३/१९८७	से : १६/०७/१९९९	से : १६/०७/२००४
तक : ११/०३/२०२२	तक : १२/०३/२००३	तक : १६/०७/२००४	तक : १६/०७/२०१०
शनि १४/०३/२००६	गुरू २९/०४/१९८९	भ० २६/०३/२०००	उ० १६/०७/२००५
बुध २२/११/२००८	शनि १०/११/१९९१	उ० २४/०१/२००१	सि० १५/०९/२००६
केतु २१/१२/२००९	बुध १५/०२/१९९४	सि० १५/०१/२००२	सं० १५/०१/२००८
शुक्र ०२/०३/२०१३	केतु २२/०१/१९९५	सं० २४/०२/२००३	मं० १६/०३/२००८
सूर्य १२/०२/२०१४	शुक्र २२/०९/१९९७	मं० १६/०४/२००३	पिं० १६/०७/२००८
चन्द्र १३/०९/२०१५	सूर्य ११/०७/१९९८	पिं० २७/०७/२००३	धा० १४/०१/२००९
मंगल २२/१०/२०१६	चन्द्र १०/११/१९९९	धा० २६/१२/२००३	भ्रा० १५/०९/२००९
राहु २९/०८/२०१९	मंगल १६/१०/२०००	भ्रा० १६/०७/२००४	भ० १५/०७/२०१०
गुरू ११/०३/२०२२	राहु १२/०३/२००३		

ELIZABETH-II

जन्म तिथि २१/०४/१९२६ जन्म समय ०२:००:०० स्थान England
अक्षांश ५४: ०: ० उत्तर रेखांश -२: ०: ० पश्चिम मध्य रेखांश ०: ०: ० पूर्व
अयनांश २२:४९:२२

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		११:३७:४२	धनु	मूल	४	केतु	बुध
सूर्य		७:२१:१९	मेष	अश्विनी	३	केतु	राहु
चन्द्र		१८:५७:५४	कर्क	आश्लेषा	१	बुध	केतु
मंगल		२८:०१:२२	मकर	धनिष्ठा	२	मंगल	शनि
बुध		११:४९:२३	मीन	उ०भाद्रपद	३	शनि	चन्द्र
गुरू		२९:४०:५६	मकर	धनिष्ठा	२	मंगल	शनि
शुक्र		२१:०६:१८	कुम्भ	पू०भाद्रपद	१	गुरू	गुरू
शनि	-व	१:३७:२५	वृश्चि	विशाखा	४	गुरू	राहु
राहु	-व	२७:१८:१३	मिथु	पुनर्वसु	३	गुरू	शुक्र
केतु	-व	२७:१८:१३	धनु	उत्तराषाढ़ा	१	सूर्य	सूर्य

लग्न कुंडली
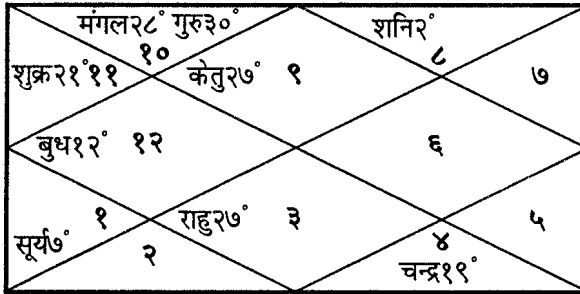
गुरू विंशोत्तरी	राहु	भ्रा० योगिनी	भ०
से : १६/०५/२००८	से : १६/०५/१९९०	से : १२/०८/१९९७	से : १२/०८/२००१
तक : १६/०५/२०२४	तक : १६/०५/२००८	तक : १२/०८/२००१	तक : १२/०८/२००६
गुरू ०४/०७/२०१०	राहु २६/०१/१९९३	भ्रा० २१/०१/१९९८	भ० २२/०४/२००२
शनि १४/०१/२०१३	गुरू २२/०६/१९९५	भ० १२/०८/१९९८	उ० २१/०२/२००३
बुध २२/०४/२०१५	शनि २८/०४/१९९८	उ० १२/०४/१९९९	सि० ११/०२/२००४
केतु २८/०३/२०१६	बुध १४/११/२०००	सि० १२/०१/२०००	सं० २३/०३/२००५
शुक्र २७/११/२०१८	केतु ०३/१२/२००१	सं० ११/१२/२०००	मं० १२/०५/२००५
सूर्य १५/०९/२०१९	शुक्र ०२/१२/२००४	मं० २१/०१/२००१	पिं० २२/०८/२००५
चन्द्र १४/०१/२०२१	सूर्य २७/१०/२००५	पिं० १२/०४/२००१	धा० २१/०१/२००६
मंगल २१/१२/२०२१	चन्द्र २८/०४/२००७	धा० १२/०८/२००१	भ्रा० १२/०८/२००६
राहु १६/०५/२०२४	मंगल १६/०५/२०२८		

BHAJAN LAL

जन्म तिथि ०६/१०/१९३० जन्म समय १७:४०:०० स्थान Hissar
अक्षांश २९:१०: ० उत्तर रेखांश ७५:४५: ० पूर्व मध्य रेखांश ८२:३०: ० पूर्व
अयनांश २२:५३:१६

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		१०:५८:०२	मीन	उ०भाद्रपद	३	शनि	सूर्य
सूर्य		१९:३७:३२	कन्या	हस्त	३	चन्द्र	बुध
चन्द्र		५:१४:११	मीन	उ०भाद्रपद	१	शनि	शनि
मंगल		२९:५७:३३	मिथु	पुनर्वसु	३	गुरू	चन्द्र
बुध		१:४५:२१	कन्या	उ०फाल्गुनि	२	सूर्य	गुरू
गुरू		२५:५६:२३	मिथु	पुनर्वसु	२	गुरू	केतु
शुक्र		३:१८:०५	वृश्चि	विशाखा	४	गुरू	राहु
शनि		१२:५६:३१	धनु	मूल	४	केतु	बुध
राहु	-व	०:५१:१२	मेष	अश्विनी	१	केतु	शुक्र
केतु	-व अ	०:५१:१२	तुला	चित्रा	३	मंगल	बुध

लग्न कुंडली

मंगल	विंशोत्तरी चन्द्र	भ्रा०	योगिनी भ०
से : १९/०१/२००७	से : १९/०१/१९९७	से : १९/०१/१९९८	से : १९/०१/२००२
तक : १९/०१/२०१४	तक: १९/०१/२००७	तक : १९/०१/२००२	तक : १९/०१/२००७
मंगल १८/०६/२००७	चन्द्र १९/११/१९९७	भ्रा० ३०/०६/१९९८	भ० २९/०९/२००२
राहु ०५/०७/२००८	मंगल २०/०६/१९९८	भ० १९/०१/१९९९	उ० ३१/०७/२००३
गुरू ११/०६/२००९	राहु २०/१२/१९९९	उ० १९/०९/१९९९	सि० २०/०७/२००४
शनि २१/०७/२०१०	गुरू २०/०४/२००१	सि० २९/०६/२०००	सं० ३०/०८/२००५
बुध १८/०७/२०११	शनि २०/११/२००२	सं० २०/०५/२००१	मं० १९/१०/२००५
केतु १४/१२/२०११	बुध २०/०४/२००४	मं० ३०/०६/२००१	पिं० २९/०१/२००६
शुक्र १२/०२/२०१३	केतु१९/११/२००४	पिं० १९/०९/२००१	धा० ३०/०६/२००६
सूर्य २०/०६/२०१३	शुक्र २१/०७/२००६	धा० १९/०१/२००२	भ्रा० १९/०१/२००७
चन्द्र १९/०१/२०१४	सूर्य १९/०१/२००७		

V.C. SHUKLA

जन्म तिथि ०२/०८/१९२७ जन्म समय १९:१५:०० स्थान Raipur

अक्षांश २३: १: ० उत्तर रेखांश ७२:३६: ० पूर्व मध्य रेखांश ८२:३०: ० पूर्व

अयनांश २२:५०:२८

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		१५:४४:५८	मकर	श्रवण	२	चन्द्र	शनि
सूर्य		१६:२५:१४	कर्क	पुष्य	४	शनि	गुरू
चन्द्र		११:३९:०५	कन्या	हस्त	१	चन्द्र	मंगल
मंगल		१२:१९:०४	सिंह	मघा	४	केतु	बुध
बुध		२९:२१:५०	मिथु	पुनर्वसु	३	गुरू	सूर्य
गुरू	-व	१०:३२:४१	मीन	उ०भाद्रपद	३	शनि	सूर्य
शुक्र		२६:४७:०९	सिंह	उ०फाल्गुनि	१	सूर्य	सूर्य
शनि	-व	८:११:२३	वृश्चि	अनुराधा	२	शनि	शुक्र
राहु	-व	४:११:३५	मिथु	मृगशिरा	४	मंगल	शुक्र
केतु	-व	४:११:३५	धनु	मूल	२	केतु	चन्द्र

लग्न कुंडली
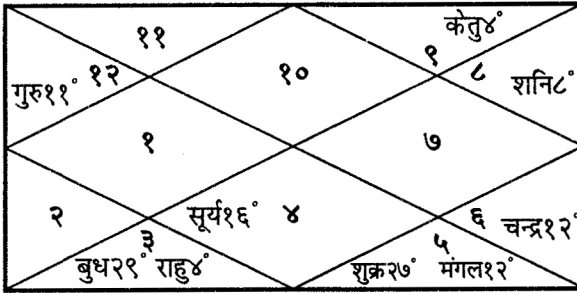
केतु	विंशोत्तरी बुध	सं०	योगिनी मं०
से : ०७/०५/२०१३	से : ०६/०५/१९९६	से : ०५/०८/१९९८	से : ०५/०८/२००६
तक : ०६/०५/२०२०	तक : ०७/०५/२०१३	तक : ०५/०८/२००६	तक : ०६/०८/२००७
केतु ०३/१०/२०१३	बुध ०३/१०/१९९८	सं० १६/०५/२०००	मं० १६/०८/२००६
शक्र ०३/१२/२०१४	केतु ३०/०९/१९९९	मं० ०५/०८/२०००	पिं० ०५/०९/२००६
सूर्य १०/०४/२०१५	शुक्र ३१/०७/२००२	पिं० १४/०१/२००१	धा० ०५/१०/२००६
चन्द्र ०९/११/२०१५	सूर्य ०७/०६/२००३	धा० १५/०९/२००१	भ्रा० १५/११/२००६
मंगल ०६/०४/२०१६	चन्द्र ०५/११/२००४	भ्रा० ०५/०८/२००२	भ० ०५/०१/२००७
राहु २४/०४/२०१७	मंगल ०२/११/२००५	भ० १५/०९/२००३	उ० ०६/०३/२००७
गुरू ३१/०३/२०१८	राहु २२/०५/२००८	उ० १४/०१/२००५	सि० १६/०५/२००७
शनि १०/०५/२०१९	गुरू २८/०८/२०१०	सि० ०५/०८/२००६	सं० ०६/०८/२००७
बुध ०६/०५/२०२०	शनि ०७/०५/२०१३		

N.D. TIWARI

जन्म तिथि १८/१०/१९२५ जन्म समय १६:००:०० स्थान Nainital
अक्षांश २९:२३: ० उत्तर रेखांश ७९:२७: ० पूर्व मध्य रेखांश ८२:३०: ० पूर्व
अयनांश २२:४८:५८

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		२७:३७:०१	कुम्भ	पू०भाद्रपद	३	गुरू	शुक्र
सूर्य		१:४२:३२	तुला	चित्रा	३	मंगल	बुध
चन्द्र	अ	१०:०७:३७	तुला	स्वाति	२	राहु	गुरू
मंगल	अ	१९:५७:०२	कन्या	हस्त	३	चन्द्र	केत
बुध	अ	९:१४:३८	तुला	स्वाति	१	राहु	गुरू
गुरू		२२:१३:२९	धनु	पूर्वाषाढ़ा	३	शुक्र	शनि
शुक्र		१५:०६:२०	वृश्चिक	अनुराधा	४	शनि	गुरू
शनि		२१:३२:०२	तुला	विशाखा	१	गुरू	गुरू
राहु	-व	७:४३:०७	कर्क	पुष्य	२	शनि	केतु
केतु	-व	७:४३:०७	मकर	उत्तराषाढ़ा	४	सूर्य	केतु

लग्न कुंडली
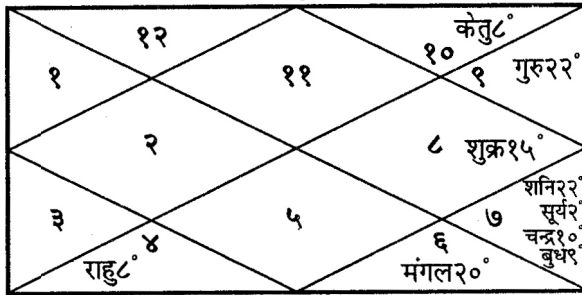
सूर्य विंशोत्तरी	शुक्र	धा० योगिनी	भ्रा०
से : १५/०२/२०१८	से : १५/०२/१९९८	से : १२/०४/१९९९	से : १२/०४/२००२
तक : १६/०२/२०२४	तक : १५/०२/२०१८	तक : १२/०४/२००२	तक : १२/०४/२००६
सूर्य ०५/०६/२०१८	शुक्र १७/०६/२००१	धा० १२/०७/१९९९	भ्रा० २१/०९/२००२
चन्द्र ०४/१२/२०१८	सूर्य १७/०६/२००२	भ्रा० ११/११/१९९९	भ० १२/०४/२००३
मंगल ११/०४/२०१९	चन्द्र १६/०२/२००४	भ० ११/०४/२०००	उ० १२/१२/२००३
राहु ०५/०३/२०२०	मंगल १७/०४/२००५	उ० ११/१०/२०००	सि० २१/०९/२००४
गुरू २२/१२/२०२०	राहु १७/०४/२००८	सि० १२/०५/२००१	सं० ११/०८/२००५
शनि ०४/१२/२०२१	गुरू १७/१२/२०१०	सं० ११/०१/२००२	मं० २१/०९/२००५
बुध ११/१०/२०२२	शनि १५/०२/२०१४	मं० १०/०२/२००२	पिं० ११/१२/२००५
केतु १५/०२/२०२३	बुध १६/१२/२०१६	पिं० १२/०४/२००२	धा० १२/०४/२००६
शुक्र १६/०२/२०२४	केतु १५/०२/२०१८		

BENAZIR BHUTTO

जन्म तिथि २१/०६/१९५३ जन्म समय २०:१५:०० स्थान Karachi

अक्षांश २४:५३: ० उत्तर रेखांश ६७: ०: ० पूर्व मध्य रेखांश ९०: ०: ० पूर्व

अयनांश २३:१२:३९

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		५:३१:४०	धनु	मूल	२	केतु	मंगल
सूर्य		६:४०:४५	मिथु	आर्द्रा	१	राहु	राहु
चन्द्र		२९:४७:०९	कन्या	चित्रा	२	मंगल	शनि
मंगल	अ	११:४४:५०	मिथु	आर्द्रा	२	राहु	शनि
बुध		१:१२:५२	कर्क	पुनर्वसु	४	गुरू	मंगल
गुरू		१६:४७:२०	वृष	रोहिणी	३	चन्द्र	शनि
शुक्र		२०:५९:२३	मेष	भरणी	३	शुक्र	गुरू
शनि	-व	२७:२०:४०	कन्या	चित्रा	२	मंगल	चन्द्र
केतु	-व	१०:३२:३५	कर्क	पुष्य	३	शनि	सूर्य

लग्न कुंडली

बुध	विंशोत्तरी शनि	भ०	योगिनी उ०
से : ३१/०१/२०१०	से : ३१/०१/१९९१	से : २७/१२/१९९८	से : २७/१२/२००३
तक : ३१/०१/२०२७	तक : ३१/०१/२०१०	तक : २७/१२/२००३	तक : २७/१२/२००९
बुध २९/०६/२०१२	शनि ०३/०२/१९९४	भ० ०७/०९/१९९९	उ० २७/१२/२००४
केतु २६/०६/२०१३	बुध १३/१०/१९९६	उ० ०७/०७/२०००	सि० २६/०२/२००६
शुक्र २६/०४/२०१६	केतु २२/११/१९९७	सि० २७/०६/२००१	सं० २८/०६/२००७
सूर्य ०२/०३/२०१७	शुक्र २२/०१/२००१	सं० ०७/०८/२००२	मं० २८/०८/२००७
चन्द्र ०२/०८/२०१८	सूर्य ०४/०१/२००२	मं० २७/०९/२००२	पिं० २७/१२/२००७
मंगल ३०/०७/२०१९	चन्द्र ०५/०८/२००३	पिं० ०६/०१/२००३	धा० २७/०६/२००८
राहु १५/०२/२०२२	मंगल १३/०९/२००४	धा० ०७/०६/२००३	भ्रा० २५/०२/२००९
गुरू २३/०५/२०२४	राहु २१/०७/२००७	भ्रा० २७/१२/२००३	भ० २७/१२/२००९
शनि ३१/०१/२०२७	गुरू ३१/०१/२०१०		

MANMOHAN SINGH

जन्म तिथि २६/०९/१९३२ जन्म समय १४:००:०० स्थान Jhelum

अक्षांश ३१:५०: ० उत्तर रेखांश ७२:१०: ० पूर्व मध्य रेखांश ८२:३०: ० पूर्व

अयनांश २२:५५:०७

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		१५:३१:०५	धनु	पूर्वाषाढ़ा	१	शुक्र	शुक्र
सूर्य		१०:०६:४८	कन्या	हस्त	१	चन्द्र	चन्द्र
चन्द्र		१९:०७:१५	कर्क	आश्लेषा	१	बुध	केतु
मंगल		१०:२४:५५	कर्क	पुष्य	३	शनि	सूर्य
बुध	पू	७:३७:५०	कन्या	उ०फाल्गुनि	४	सूर्य	केतु
गुरू		१७:००:०४	सिंह	पू०फाल्गुनि	२	शुक्र	चन्द्र
शुक्र		२५:०७:१४	कर्क	आश्लेषा	३	बुध	राहु
शनि	-व	५:१३:५१	मकर	उत्तराषाढ़ा	३	सूर्य	बुध
राहु		२४:१६:०१	कुम्भ	पू०भाद्रपद	२	गुरू	बुध
केतु		२४:१६:०१	सिंह	पू०फाल्गुनि	४	शुक्र	बुध

लग्न कुंडली
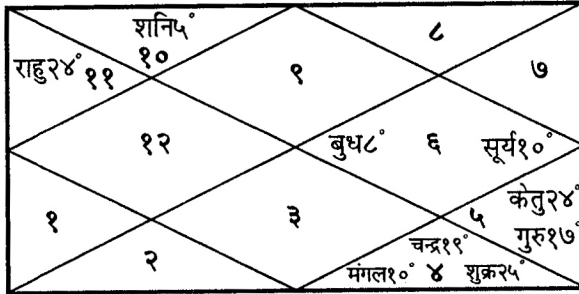
गुरू विंशोत्तरी	राहु	पिं० योगिनी	धा०
से : १०/०८/२०१४	से : १०/०८/१९९६	से : ०१/०१/१९९९	से : ३१/१२/२०००
तक : १०/०८२०३०	तक : १०/०८/२०१४	तक : ३१/१२/२०००	तक : ०१/०१/२००४
गुरू २८/०९/२०१६	राहु २३/०४/१९९९	पिं० ११/०२/१९९९	धा० ०२/०४/२००१
शनि ११/०४/२०१९	गुरू १६/०९/२००१	धा० १२/०४/१९९९	भ्रा० ०१/०८/२००१
बुध १७/०७/२०२१	शनि २३/०७/२००४	भ्रा० ०३/०७/१९९९	भ० ०१/०१/२००२
केतु २३/०६/२०२२	बुध ०९/०२/२००७	भ० १२/१०/१९९९	उ० ०२/०७/२००२
शुक्र २१/०२/२०२५	केतु २८/०२/२००८	उ० ११/०२/२०००	सि० ३१/०१/२००३
सूर्य १०/१२/२०२५	शुक्र २७/०२/२०११	सि० ०२/०७/२०००	सं० ०२/१०/२००३
चन्द्र ११/०४/२०२७	सूर्य २२/०१/२०१२	सं० ११/१२/२०००	मं० ०१/११/२००३
मंगल १७/०३/२०२८	चन्द्र २३/०७/२०१३	मं० ३१/१२/२०००	पिं० ०१/०१/२००४
राहु १०/०८/२०३०	मंगल १०/०८/२०१४		

RAMKRISHAN HEGRE

जन्म तिथि २९/०८/१९२६ जन्म समय १२:१५:०० स्थान Bangalore
अक्षांश १३: ०: ० उत्तर रेखांश ७७:३५: ० पूर्व मध्य रेखांश ८२:३०: ० पूर्व
अयनांश २२:४९:४१

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		९:४७:३२	वृश्चि	अनुराधा	२	शनि	शुक्र
सूर्य		१२:२०:२०	सिंह	मघा	४	केतु	बुध
चन्द्र		१:०५:२२	वृष	कृतिका	२	सूर्य	राहु
मंगल		२०:२२:१०	मेष	भरणी	३	शुक्र	गुरू
बुध		२४:४७:०९	कर्क	आश्लेषा	३	बुध	राहु
गुरू	-व	२७:३९:५८	मकर	धनिष्ठा	२	मंगल	गुरू
शुक्र		२०:४१:३२	कर्क	आश्लेषा	२	बुध	शुक्र
शनि		२७:३६:३१	तुला	विशाखा	३	गुरू	शुक्र
राहु	-व	२२:१२:१२	मिथु	पुनर्वसु	१	गुरू	शनि
केतु	-व	२२:१२:१२	धनु	पूर्वाषाढ़ा	३	शुक्र	शनि

लग्न कुंडली
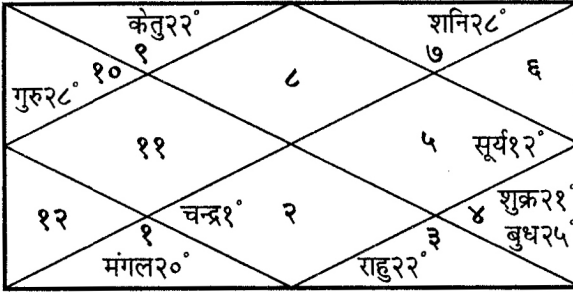
बुध	विंशोत्तरी शनि	उ०	योगिनी सि०
से : ०१/०९/२०००	से : ०१/०९/१९८१	से : ०१/०९/१९९६	से : ०२/०९/२००२
तक : ०१/०९/२०१७	तक : ०१/०९/२०००	तक : ०२/०९/२००२	तक : ०१/०९/२००९
बुध २९/०१/२००३	शनि ०४/०९/१९८४	उ० ०१/०९/१९९७	सि० १२/०१/२००४
केतु २६/०१/२००४	बुध १५/०५/१९८७	सि० ०१/११/१९९८	सं० ०२/०८/२००५
शुक्र २६/११/२००६	केतु २३/०६/१९८८	सं० ०२/०३/२०००	मं० १२/१०/२००५
सूर्य ०२/१०/२००७	शुक्र २४/०८/१९९१	मं० ०२/०५/२०००	पिं० ०३/०३/२००६
चन्द्र ०३/०३/२००९	सूर्य ०५/०८/१९९२	पिं० ०१/०९/२०००	धा० ०२/१०/२००६
मंगल २८/०२/२०१०	चन्द्र ०६/०३/१९९४	धा० ०३/०३/२००१	भ्रा० १३/०७/२००७
राहु १६/०९/२०१२	मंगल १५/०४/१९९५	भ्रा० ०१/११/२००१	भ० ०२/०७/२००८
गुरू २३/१२/२०१४	राहु १९/०२/१९९८	भ० ०२/०९/२००२	उ० ०१/०९/२००९
शनि ०१/०९/२०१७	गुरू ०१/०९/२०००		

ROMESH BHANDARI

जन्म तिथि २९/०३/१९२८ जन्म समय २०:३०:०० स्थान

अक्षांश ३०:४२: ० उत्तर रेखांश ७६:२९: ० पूर्व मध्य रेखांश ८२:३०: ० पूर्व

अयनांश २२:५१:००

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		१०:०३:२४	तुला	स्वाति	२	राहु	गुरू
सूर्य		१५:४९:३९	मीन	उ०भाद्रपद	४	शनि	गुरू
चन्द्र		२९:५५:३८	मिथु	पुनर्वसु	३	गुरू	चन्द्र
मंगल		०:१६:३०	कुम्भ	धनिष्ठा	३	मंगल	बुध
बुध		१९:०७:३३	कुम्भ	शतभिषा	४	राहु	चन्द्र
गुरू	अ	२१:४६:०७	मीन	रेवती	२	बुध	सूर्य
शुक्र		२१:१५:१५	कुम्भ	पू०भाद्रपद	१	गुरू	गुरू
शनि	-व	२६:१६:४९	वृश्चिक	ज्येष्ठा	३	बुध	गुरू
राहु	-व	१८:५५:५२	वृष	रोहिणी	३	चन्द्र	बुध
केतु	-व	१८:५५:५२	वृश्चिक	ज्येष्ठा	१	बुध	केतु

लग्न कुंडली
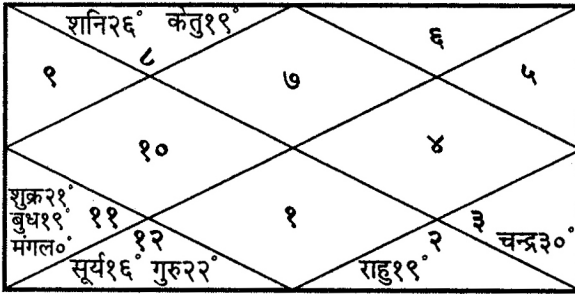
चन्द्र	विंशोत्तरी सूर्य	पिं०	योगिनी धा०
से : ३०/०४/२००१	से : ०१/०५/१९९५	से : ०२/१०/१९९८	से : ०२/१०/२०००
तक : ०१/०५/२०११	तक : ३०/०४/२००१	तक : ०२/१०/२०००	तक: ०३/१०/२००३
चन्द्र ०१/०३/२००२	सूर्य १९/०८/१९९५	पिं० १२/११/१९९८	धा० ०१/०१/२००१
मंगल ३०/०९/२००२	चन्द्र १७/०२/१९९६	धा० १२/०१/१९९९	भ्रा० ०३/०५/२००१
राहु ३१/०३/२००४	मंगल २४/०६/१९९६	भ्रा० ०३/०४/१९९९	भ० ०२/१०/२००१
गुरू ३१/०७/२००५	राहु १९/०५/१९९७	भ० १४/०७/१९९९	उ० ०३/०४/२००२
शनि ०१/०३/२००७	गुरू ०७/०३/१९९८	उ० १२/११/१९९९	सि० ०२/११/२००२
बुध ३१/०७/२००८	शनि १७/०२/१९९९	सि० ०२/०४/२०००	सं० ०३/०७/२००३
केतु ०१/०३/२००९	बुध २४/१२/१९९९	सं० १२/०९/२०००	मं० ०३/०८/२००३
शुक्र ३०/१०/२०१०	केतु ३०/०४/२०००	मं० ०२/१०/२०००	पिं० ०३/१०/२००३
सूर्य ०१/०५/२०११	शुक्र ३०/०४/२००१		

SUBRAMANYAM SWAMI

जन्म तिथि १६/०९/१९३९ जन्म समय ०४:३०:०० स्थान Chennai

अक्षांश १३: ५: ० उत्तर रेखांश ८०:१८: ० पूर्व मध्य रेखांश ८२:३०: ० पूर्व

अयनांश २३:०१:०२

ग्रह	वक्री	अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न			६:५४:००	सिंह	मघा	३	केतु	राहु
सूर्य			२९:१०:२१	सिंह	उ०फाल्गुनि	१	सूर्य	मंगल
चन्द्र			३:३३:५०	तुला	चित्रा	४	मंगल	शुक्र
मंगल			४:२०:०८	मकर	उत्तराषाढ़ा	३	सूर्य	शनि
बुध		अ	२३:१८:२८	सिंह	पू०फाल्गुनि	३	शुक्र	शनि
गुरू	-व		१२:१८:३६	मीन	उ०भाद्रपद	३	शनि	मंगल
शुक्र		पू	१:५३:५२	कन्या	उ०फाल्गुनि	२	सूर्य	गुरू
शनि	-व		७:२०:२९	मेष	अश्विनी	३	केतु	राहु
राहु	-व		६:४१:४३	तुला	स्वाति	१	राहु	राहु
केतु	-व		६:४१:४३	मेष	अश्विनी	३	केतु	राहु
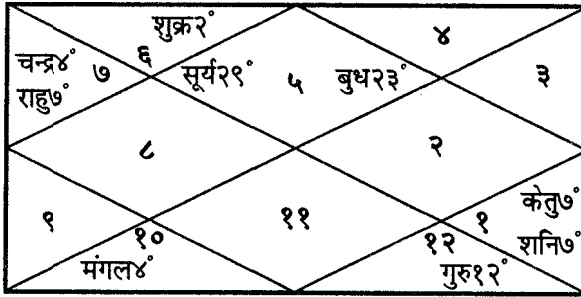
केतु	विंशोत्तरी बुध	सि०	योगिनी सं०
से : ०३/०५/२०११	से : ०३/०५/१९९४	से : १०/१२/१९९५	से : ०९/१२/२००२
तक : ०३/०५/२०१८	तक : ०३/०५/२०११	तक : ०९/१२/२००२	तक : ०९/१२/२०१०
केतु २९/०९/२०११	बुध २९/०९/१९९६	सि० २०/०४/१९९७	सं० १९/०९/२००४
शुक्र २८/११/२०१२	केतु २६/०९/१९९७	सं० ०९/११/१९९८	मं० ०९/१२/२००४
सूर्य ०५/०४/२०१३	शुक्र २७/०७/२०००	मं० १९/०१/१९९९	पिं० २०/०५/२००५
चन्द्र ०४/११/२०१३	सूर्य ०२/०६/२००१	पिं० १०/०६/१९९९	धा० १९/०१/२००६
मंगल ०२/०४/२०१४	चन्द्र ०२/११/२००२	धा० ०९/०१/२०००	भ्रा० ०९/१२/२००६
राहु २१/०४/२०१५	मंगल ३०/१०/२००३	भ्रा० १९/१०/२०००	भ० १९/०१/२००८
गुरू २७/०३/२०१६	राहु १८/०५/२००६	भ० ०९/१०/२००१	उ० २०/०५/२००९
शनि ०६/०५/२०१७	गुरू २३/०८/२००८	उ० ०९/१२/२००२	सि० ०९/१२/२०१०
बुध ०३/०५/२०१८	शनि ०३/०५/२०११		

JOHN MAJOR

जन्म तिथि २९/०३/१९४३ जन्म समय ०३:००:०० स्थान England

अक्षांश ५४: ०: ० उत्तर रेखांश -२: ०: ० पश्चिम मध्य रेखांश ०: ०: ० पूर्व

अयनांश २३:०३:४०

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		४:१२:०१	धनु	मूल	२	केतु	चन्द्र
सूर्य		१४:२६:५२	मीन	उ०भाद्रपद	४	शनि	राहु
चन्द्र		१४:३०:४९	धनु	पूर्वाषाढ़ा	१	शुक्र	शुक्र
मंगल		२२:२०:४६	मकर	श्रवण	४	चन्द्र	शुक्र
बुध	अ	८:०६:५७	मीन	उ०भाद्रपद	२	शनि	शुक्र
गुरू		२२:३४:२०	मिथु	पुनर्वसु	१	गुरू	शनि
शुक्र		१५:३७:०४	मेष	भरणी	१	शुक्र	सूर्य
शनि		१४:४८:५६	वृष	रोहिणी	२	चन्द्र	गुरू
राहु		१:०१:०७	सिंह	मघा	१	केतु	शुक्र
केतु		१:०१:०७	कुम्भ	धनिष्ठा	३	मंगल	बुध

लग्न कुंडली

मंगल२२° १०
केतु१° ११
चन्द्र१५° ९
८
७
सूर्य१४° १२ बुध८°
६
शुक्र१६° १
२ शनि१५°
गुरु२३° ३
४
५ राहु१°
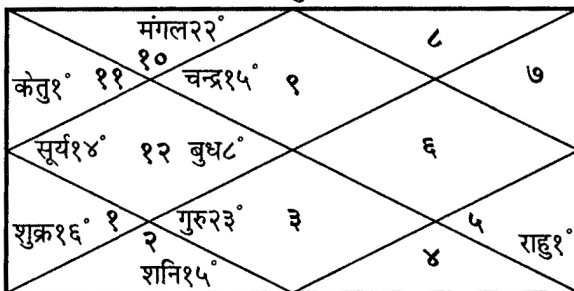
गुरू	विंशोत्तरी राहु	भ्रा०	योगिनी भ
से : २०/०६/२००२	से : २०/०६/१९८४	से : १५/०८/१९९९	से : १५/०८/२००३
तक : २०/०६/२०१८	तक : २०/०६/२००२	तक : १५/०८/२००३	तक : १४/०८/२००८
गुरू ०७/०८/२००४	राहु ०३/०३/१९८७	भ्रा० २४/०१/२०००	भ० २४/०४/२००४
शनि १९/०२/२००७	गुरू २६/०७/१९८९	भ० १४/०८/२०००	उ० २३/०२/२००५
बुध २७/०५/२००९	शनि ०१/०६/१९९२	उ० १४/०४/२००१	सि० १३/०२/२००६
केतु ०३/०५/२०१०	बुध २०/१२/१९९४	सि० २३/०१/२००२	सं० २५/०३/२००७
शुक्र ०१/०१/२०१३	केतु ०७/०१/१९९६	सं० १४/१२/२००२	मं० १५/०५/२००७
सूर्य २०/१०/२०१३	शुक्र ०७/०१/१९९९	मं० २४/०१/२००३	पिं० २५/०८/२००७
चन्द्र १९/०२/२०१५	सूर्य ०२/१२/१९९९	पिं० १५/०४/२००३	धा० २४/०१/२००८
मंगल २६/०१/२०१६	चन्द्र ०२/०६/२००१	धा० १५/०८/२००३	भ्रा० १४/०८/२००८
राहु २०/०६/२०१८	मंगल २०/०६/२००२		

MARGRET THECHAR

जन्म तिथि १३/१०/१९२५ जन्म समय ०९:००:०० स्थान England
अक्षांश ५४: ०: ० उत्तर रेखांश -२: ०: ० पश्चिम मध्य रेखांश ०: ०: ० पूर्व
अयनांश २४:४८:५८

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		२०:५२:४२	तुला	विशाखा	१	गुरू	गुरू
सूर्य		२६:४१:०७	कन्या	चित्रा	२	मंगल	गुरू
चन्द्र		५:४८:३४	सिंह	मघा	२	केतु	राहु
मंगल	अ	१६:३८:४६	कन्या	हस्त	२	चन्द्र	शनि
बुध	अ	०:५७:५६	तुला	चित्रा	३	मंगल	बुध
गुरू		२१:४०:१८	धनु	पूर्वाषाढ़ा	३	शुक्र	गुरू
शुक्र		९:१५:१६	वृश्चि	अनुराधा	२	शनि	शुक्र
शनि		२०:५७:२५	तुला	विशाखा	१	गुरू	गुरू
राहु	-व	८:३३:१६	कर्क	पुष्य	२	शनि	शुक्र
केतु	-व	८:३३:१६	मकर	उत्तराषाढ़ा	४	सूर्य	शुक्र

लग्न कुंडली
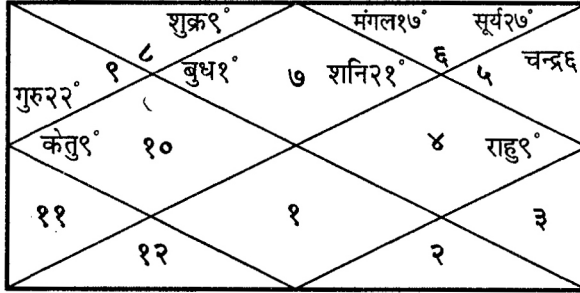
शनि विंशोत्तरी	गुरू	भ० योगिनी	उ०
से : २५/०९/२००६	से : २५/०९/१९९०	से : ०९/०८/१९९५	से : ०८/०८/२०००
तक : २५/०९/२०२५	तक: २५/०९/२००६	तक : ०८/०८/२०००	तक : ०९/०८/२००६
शनि २८/०९/२००९	गुरू १२/११/१९९२	भ० १९/०४/१९९६	उ० ०९/०८/२००१
बुध ०७/०६/२०१२	शनि २६/०५/१९९५	उ० १७/०२/१९९७	सि० ०९/१०/२००२
केतु १७/०७/२०१३	बुध ३१/०८/१९९७	सि० ०७/०२/१९९८	सं० ०८/०२/२००४
शुक्र १५/०९/२०१६	केतु ०७/०८/१९९८	सं० २०/०३/१९९९	मं० ०९/०४/२००४
सूर्य २८/०८/२०१७	शुक्र ०७/०४/२००१	मं० १०/०५/१९९९	पिं० ०८/०८/२००४
चन्द्र ३०/०३/२०१९	सूर्य २४/०१/२००२	पिं० १९/०८/१९९९	धा० ०७/०२/२००५
मंगल ०७/०५/२०२०	चन्द्र २६/०५/२००३	धा० १८/०१/२०००	भ्रा० ०९/१०/२००५
राहु १४/०३/२०२३	मंगल ०१/०५/२००४	भ्रा० ०८/०८/२०००	भ० ०९/०८/२००६
गुरू २५/०९/२०२५	राहु २५/०९/२००६		

H.D. DEVGORA

जन्म तिथि १८/०५/१९३३ जन्म समय ११:००:०० स्थान Hassan
अक्षांश १३: १: ० उत्तर रेखांश ७६: ३: ० पूर्व मध्य रेखांश ८२:३०: ० पूर्व
अयनांश २२:५५:४२

ग्रह	वक्री	अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न			१३:११:३६	कर्क	पुष्य	३	शनि	राहु
सूर्य			३:५३:०७	वृष	कृतिका	३	सूर्य	शनि
चन्द्र			२४:१८:५३	कुम्भ	पू०भाद्रपद	२	गुरू	बुध
मंगल			१४:३८:१४	सिंह	पू०फाल्गुनि	१	शुक्र	शुक्र
बुध		अ	२१:४२:४२	मेष	भरणी	३	शुक्र	गुरू
गुरू			२०:२७:१२	सिंह	पू०फाल्गुनि	३	शुक्र	गुरू
शुक्र		अ	१०:५४:०३	वृष	रोहिणी	१	चन्द्र	चन्द्र
शनि			२३:२३:१२	मकर	धनिष्ठा	१	मंगल	मंगल
राहु	–व		११:०५:०६	कुम्भ	शतभिषा	२	राहु	शनि
केतु	–व		११:०५:०६	सिंह	मघा	४	केतु	शनि

लग्न कुंडली
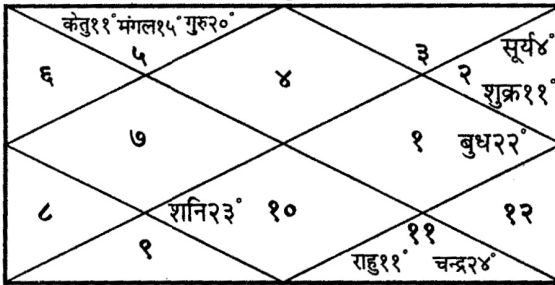
सूर्य	विंशोत्तरी शुक्र	पिं०	योगिनी धा०
से : १४/०३/२००७	से : १४/०३/१९८७	से : ३१/०१/१९९९	से : ३०/०१/२००१
तक : १४/०३/२०१३	तक : १४/०३/२००७	तक : ३०/०१/२००१	तक : ३१/०१/२००४
सूर्य ०२/०७/२००७	शुक्र १४/०७/१९९०	पिं० १२/०३/१९९९	धा० ०२/०५/२००१
चन्द्र ०१/०१/२००८	सूर्य १४/०७/१९९१	धा० १२/०५/१९९९	भ्रा० ३१/०८/२००१
मंगल ०८/०५/२००८	चन्द्र १४/०३/१९९३	भ्रा० ०२/०८/१९९९	भ० ३१/०१/२००२
राहु ०१/०४/२००९	मंगल १४/०५/१९९४	भ० ११/११/१९९९	उ० ०१/०८/२००२
गुरू १८/०१/२०१०	राहु १४/०५/१९९७	उ० १२/०३/२०००	सि० ०२/०३/२००३
शनि ३१/१२/२०१०	गुरू १३/०१/२०००	सि० ०१/०८/२०००	सं० ०१/११/२००३
बुध ०७/११/२०११	शनि १४/०३/२००३	सं० १०/०१/२००१	मं० ०१/१२/२००३
केतु १४/०३/२०१२	बुध १२/०१/२००६	मं० ३०/०१/२००१	पिं० ३१/०१/२००४
शुक्र १४/०३/२०१३	केतु १४/०३/२००७		

KARAN SINGH

जन्म तिथि ०९/०३/१९३१ जन्म समय १६:१५:०० स्थान Cannes

अक्षांश ४३:३२: ० उत्तर रेखांश ७: ०: ० पूर्व मध्य रेखांश ०: ०: ० पूर्व

अयनांश २२:५३:४१

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		०:२०:२३	सिंह	मघा	१	केतु	केतु
सूर्य		२५:११:४८	कुम्भ	पू०भाद्रपद	२	गुरू	बुध
चन्द्र		५:४९:४२	वृश्चिक	अनुराधा	१	शनि	बुध
मंगल		४:३२:३१	कर्क	पुष्य	१	शनि	शनि
बुध	अ	१९:२५:१६	कुम्भ	शतभिषा	४	राहु	मंगल
गुरू		१७:३३:४६	मिथु	आर्द्रा	४	राहु	सूर्य
शुक्र		११:२१:२७	मकर	श्रवण	१	चन्द्र	मंगल
शनि		२८:०१:५२	धनु	उत्तराषाढ़ा	१	सूर्य	चन्द्र
राहु		२१:३९:२०	मीन	रेवती	२	बुध	सूर्य
केतु		२१:२९:२०	कन्या	हस्त	४	चन्द्र	शुक्र

लग्न कुंडली

केतु२२° ६
मंगल५° ४
७
५
३ गुरु१८°
चन्द्र६° ८
२
शनि२८° ९
सूर्य२५° ११
बुध१९°
१
१०
शुक्र११°
१२
राहु२२°

मंगल	विंशोत्तरी चन्द्र	धा०	योगिनी भ्रा०
से : १८/०८/२००६	से : १८/०८/१९९६	से : ०९/०६/१९९९	से : ०९/०६/२००२
तक : १८/०८/२०१३	तक : १८/०८/२००६	तक : ०९/०६/२००२	तक : ०९/०६/२००६
मंगल १५/०१/२००७	चन्द्र १८/०६/१९९७	धा० ०८/०९/१९९९	भ्रा० १८/११/२००२
राहु ०२/०२/२००८	मंगल १७/०१/१९९८	भ्रा० ०८/०१/२०००	भ० ०९/०६/२००३
गुरू ०८/०१/२००९	राहु १९/०७/१९९९	भ० ०८/०६/२०००	उ० ०८/०२/२००४
शनि १७/०२/२०१०	गुरू १७/११/२०००	उ० ०८/१२/२०००	सि० १८/११/२००४
बुध १४/०२/२०११	शनि १८/०६/२००२	सि० ०९/०७/२००१	सं० ०८/१०/२००५
केतु १३/०७/२०११	बुध १८/११/२००३	सं० ०९/०३/२००२	मं० १८/११/२००५
शुक्र ११/०९/२०१२	केतु १८/०६/२००४	मं० ०९/०४/२००२	पिं० ०७/०२/२००६
सूर्य १७/०१/२०१३	शुक्र १७/०२/२००६		
चन्द्र १८/०८/२०१३	सूर्य १८/०८/२००६		

MENAKA GANGHI

जन्म तिथि २६/०८/१९५६ जन्म समय ५:००:०० स्थान Delhi

अक्षांश २८:३९: ० उत्तर रेखांश ७७:१३: ० पूर्व मध्य रेखांश ८२:३०: ० पूर्व

अयनांश २३:१५:२१

ग्रह	वक्री	अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न			२६:३४:५२	कर्क	आश्लेषा	३	बुध	गुरू
सूर्य			९:२६:४४	सिंह	मघा	३	केतु	शनि
चन्द्र			०:२२:२९	मेष	अश्विनी	१	केतु	केतु
मंगल	-व		२८:५२:२६	कुम्भ	पू०भाद्रपद	३	गुरू	सूर्य
बुध			६:०४:२२	कन्या	उ०फाल्गुनि	३	सूर्य	बुध
गुरू		अ	१६:४३:५२	सिंह	पू०फाल्गुनि	२	शुक्र	चन्द्र
शुक्र			२३:४५:०६	मिथु	पुनर्वसु	२	गुरू	शनि
शनि			३:२७:४६	वृश्चिच	अनुराधा	१	शनि	शनि
राहु	-व		१०:०९:५७	वृश्चिच	अनुराधा	३	शनि	शुक्र
केतु	-व		१०:०९:५७	वृष	रोहिणी	१	चन्द्र	चन्द्र

लग्न कुंडली

सूर्य९° गुरु१७° ५
बुध६° ६
४
शुक्र२४° ३
२ केतु१०°
७
१ चन्द्र०°
राहु१०° शनि३° ८
९
१०
११ मंगल२९°
१२

राहु	विंशोत्तरी मंगल	भ०	योगिनी उ०
से : १५/०६/२००६	से : १६/०६/१९९९	से : १६/०७/१९९६	से : १६/०७/२००१
तक : १५/०६/२०२४	तक : १५/०६/२००६	तक : १६/०७/२००१	तक : १६/०७/२००७
राहु २६/०२/२००९	मंगल १२/११/१९९९	भ० २६/०३/१९९७	उ० १६/०७/२००२
गुरू २२/०७/२०११	राहु २९/११/२०००	उ० २५/०१/१९९८	सि० १५/०९/२००३
शनि २८/०५/२०१४	गुरू ०५/११/२००१	सि० १५/०१/१९९९	सं० १४/०१/२००५
बुध १४/१२/२०१६	शनि १५/१२/२००२	सं० २५/०२/२०००	मं० १६/०३/२००५
केतु ०२/०१/२०१८	बुध १२/१२/२००३	मं० १५/०४/२०००	पिं० १६/०७/२००५
शुक्र ०२/०१/२०२१	केतु ०९/०५/२००४	पिं० २६/०७/२०००	धा० १५/०१/२००६
सूर्य २६/११/२०२१	शुक्र ०९/०७/२००५	धा० २५/१२/२०००	भ्रा० १५/०९/२००६
चन्द्र २८/०५/२०२३	सूर्य १४/११/२००५	भ्रा० १६/०७/२००१	भ० १६/०७/२००७
मंगल १५/०६/२०२४	चन्द्र १५/०६/२००६		

RAMVILAS PASWAN

जन्म तिथि ०५/०७/१९४६ जन्म समय १२:००:०० स्थान Madhubani

अक्षांश २६:२७: ० उत्तर रेखांश ८५: ८: ० पूर्व मध्य रेखांश ८२:३०: ० पूर्व

अयनांश २३:०६:१९

ग्रह	वक्री	अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न			२०:३४:५१	कन्या	हस्त	४	चन्द्र	शुक्र
सूर्य			१९:३१:२४	मिथु	आर्द्रा	४	राहु	मंगल
चन्द्र			८:३३:२१	कन्या	उ०फाल्गुनि	४	सूर्य	शुक्र
मंगल			१५:२९:३६	सिंह	पू०फाल्गुनि	१	शुक्र	शुक्र
बुध			१५:३४:४२	कर्क	पुष्य	४	शनि	गुरू
गुरू			२४:५७:५४	कन्या	चित्रा	१	मंगल	राहु
शुक्र			२६:५८:५४	कर्क	आश्लेषा	४	बुध	गुरू
शनि		अ	३:१४:४४	कर्क	पुनर्वसु	४	गुरू	राहु
राहु	-व		२७:३०:४८	वृष	मृगशिरा	२	मंगल	गुरू
केतु	-व		२७:३०:४८	वृश्चि	ज्येष्ठा	४	बुध	गुरू

लग्न कुंडली
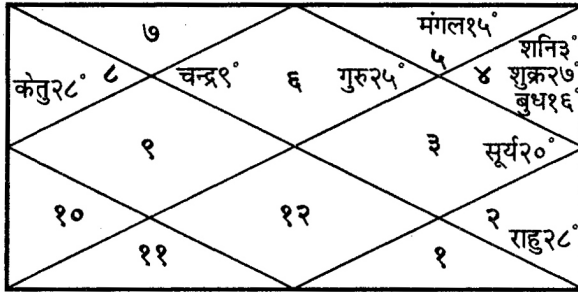
बुध	विंशोत्तरी शनि	भ्रा०	योगिनी भ०
से : २७/०२/२०१७	से : २७/०२/१९९८	से : ०७/०४/१९९७	से : ०७/०४/२००१
तक : २७/०२/२०३४	तक : २७/०२/२०१७	तक : ०७/०४/२००१	तक : ०८/०४/२००६
बुध २७/०७/२०१९	शनि ०२/०३/२००१	भ्रा० १७/०९/१९९७	भ० १७/१२/२००१
केतु २३/०७/२०२०	बुध १०/११/२००३	भ० ०८/०४/१९९८	उ० १७/१०/२००२
शुक्र २४/०५/२०२३	केतु १९/१२/२००४	उ० ०७/१२/१९९८	सि० ०८/१०/२००३
सूर्य २९/०३/२०२४	शुक्र १८/०२/२००८	सि० १७/०९/१९९९	सं० १६/११/२००४
चन्द्र २८/०८/२०२५	सूर्य ३०/०१/२००९	सं० ०७/०८/२०००	मं० ०६/०१/२००५
मंगल २६/०८/२०२६	चन्द्र ०१/०९/२०१०	मं० १७/०९/२०००	पिं०१८/०४/२००५
राहु १४/०३/२०२९	मंगल ११/१०/२०११	पिं० ०७/१२/२०००	धा० १७/०९/२००५
गुरू २०/०६/२०३१	राहु १७/०८/२०१४	धा० ०७/०४/२००१	भ्रा० ०८/०४/२००६
शनि २७/०२/२०३४	गुरू २७/०२/२०१७		

M.GORWACHAYA

जन्म तिथि ०२/०३/१९३१ जन्म समय १३:४५:०० स्थान Stavropol
अक्षांश ४५: ५: ० उत्तर रेखांश ४२: ०: ० पूर्व मध्य रेखांश ३०: ०: ० पूर्व
अयनांश २२:५३:४०

ग्रह	वक्री	अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न			१२:२६:०४	कर्क	पुष्य	३	शनि	मंगल
सूर्य			१८:०२:४१	कुम्भ	शतभिषा	४	राहु	सूर्य
चन्द्र			२०:१८:३२	कर्क	आश्लेषा	२	बुध	शुक्र
मंगल	-व		४:४६:००	कर्क	पुष्य	१	शनि	शनि
बुध		अ	६:४१:४४	कुम्भ	शतभिषा	१	राहु	राहु
गुरू	-व		१७:३५:३६	मिथु	आर्द्रा	४	राहु	सूर्य
शुक्र			३:१४:०६	मकर	उत्तराषाढ़ा	२	सूर्य	शनि
शनि			२७:२५:२६	धनु	उत्तराषाढ़ा	१	सूर्य	चन्द्र
राहु	-व		२१:५१:१६	मीन	रेवती	२	बुध	सूर्य
केतु	-व		२१:५१:१६	कन्या	हस्त	४	चन्द्र	शुक्र

लग्न कुंडली
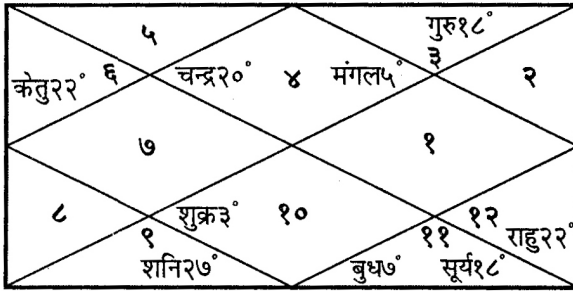
गुरू	विंशोत्तरी राहु	धा०	योगिनी भ्रा०
से : १०/०७/२०११	से : १०/०७/१९९३	से : २७/०१/१९९९	से : २७/०१/२००२
तक : १०/०७/२०२७	तक : १०/०७/२०११	तक : २७/०१/२००२	तक : २७/०१/२००६
गुरू २७/०८/२०१३	राहु २२/०३/१९९६	धा० २९/०४/१९९९	भ्रा० ०८/०७/२००२
शनि १०/०३/२०१६	गुरू १५/०८/१९९८	भ्रा० २८/०८/१९९९	भ० २७/०१/२००३
बुध १५/०६/२०१८	शनि २१/०६/२००१	भ० २७/०१/२०००	उ० २८/०९/२००३
केतु २२/०५/२०१९	बुध ०९/०१/२००४	उ० २८/०७/२०००	सि० ०८/०७/२००४
शुक्र २०/०१/२०२२	केतु २६/०१/२००५	सि० २६/०२/२००१	सं० २८/०५/२००५
सूर्य ०९/११/२०२२	शुक्र २७/०१/२००८	सं० २८/१०/२००१	मं० ०८/०७/२००५
चन्द्र १०/०३/२०२४	सूर्य २१/१२/२००८	मं० २७/११/२००१	पिं० २७/०९/२००५
मंगल १३/०२/२०२५	चन्द्र २२/०६/२०१०	पिं० २७/०१/२००२	धा० २७/०१/२००६
राहु १०/०७/२०२७	मंगल १०/०७/२०११		

G.L.NANDA

जन्म तिथि ०४/०७/१८९८ जन्म समय ००:३०:०० स्थान Sialkot
अक्षांश ३२:३२: ० उत्तर रेखांश ७४:३०: ० पूर्व मध्य रेखांश ७४:३०: ० पूर्व
अयनांश २२:२६:३९

ग्रह	वक्री	अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न			५:५८:५२	मेष	अश्विनी	२	केतु	राहु
सूर्य			१९:२२:१७	मिथु	आर्द्रा	४	राहु	मंगल
चन्द्र			१८:२२:५८	धनु	पूर्वाषाढ़ा	२	शुक्र	राहु
मंगल			२६:४८:२३	मेष	कृतिका	१	सूर्य	सूर्य
बुध		अ	२३:३४:१२	मिथु	पुनर्वसु	२	गुरू	शनि
गुरू			९:५२:५९	कन्या	उ०फाल्गुनि	४	सूर्य	शुक्र
शुक्र			२३:४६:३४	कर्क	आश्लेषा	३	बुध	मंगल
शनि	–व		१४:१४:२५	वृश्चि	अनुराधा	४	शनि	राहु
राहु			२५:१४:५७	धनु	पूर्वाषाढ़ा	४	शुक्र	बुध
केतु		अ	२५:१४:५७	मिथु	पुनर्वसु	२	गुरू	बुध

लग्न कुंडली
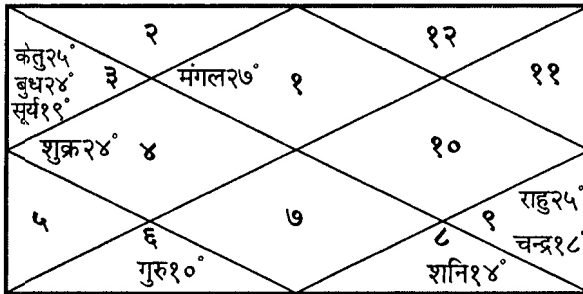
केतु	विंशोत्तरी बुध	उ०	योगिनी सि०
से : ०७/१२/२००३	से : ०७/१२/१९८६	से : ०९/११/१९९७	से : ०९/११/२००३
तक : ०७/१२/२०१०	तक : ०७/१२/२००३	तक : ०९/११/२००३	तक : ००/००/००००
केतु ०४/०५/२००४	बुध ०५/०५/१९८९	उ० ०९/११/१९९८	सि० २०/०३/२००५
शुक्र ०५/०७/२००५	केतु ०२/०५/१९९०	सि० ०९/०१/२०००	सं० ००/००/००००
सूर्य ०९/११/२००५	शुक्र ०२/०३/१९९३	सं० १०/०५/२००१	मं० ००/००/००००
चन्द्र १०/०६/२००६	सूर्य ०६/०१/१९९४	मं० १०/०७/२००१	पिं० ००/००/००००
मंगल ०७/११/२००६	चन्द्र ०८/०६/१९९५	पिं० ०९/११/२००१	धा० ००/००/००००
राहु २५/११/२००७	मंगल ०४/०६/१९९६	धा० १०/०५/२००२	भ्रा० ००/००/००००
गुरू ३१/१०/२००८	राहु २२/१२/१९९८	भ्रा० ०९/०१/२००३	भ० ००/००/००००
शनि १०/१२/२००९	गुरू २९/०३/२००१	भ० ०९/११/२००३	उ० ००/००/००००
बुध ०७/१२/२०१०	शनि ०७/१२/२००३		

T.N.SHESHAN

जन्म तिथि १५/१२/१९३२ जन्म समय ०८:००:०० स्थान Palghat
अक्षांश १०:४६: ० उत्तर रेखांश ७६:४२: ० पूर्व मध्य रेखांश ८२:३०: ० पूर्व
अयनांश २२:५५: ०

ग्रह	वक्री अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न		१९:०९:२९	धनु	पूर्वाषाढ़ा	२	शुक्र	राहु
सूर्य		०:००:१८	धनु	मूल	१	केतु	केतु
चन्द्र		२२:१८:५२	मिथु	पुनर्वसु	१	गुरू	शनि
मंगल		२०:१६:३९	सिंह	पू०फाल्गुनि	३	शुक्र	गुरू
बुध		११:२५:५६	वृश्चिक	अनुराधा	३	शनि	चन्द्र
गुरू		२९:२६:२८	सिंह	उ०फाल्गुनी	१	सूर्य	राहु
शुक्र		२९:२२:११	तुला	विशाखा	३	गुरू	सूर्य
शनि		९:१८:००	मकर	उत्तराषाढ़ा	४	सूर्य	शुक्र
राहु	-व	१८:०९:३६	कुम्भ	शतभिषा	४	राहु	चन्द्र
केतु	-व	१८:०९:३६	सिंह	पू०फाल्गुनि	२	शुक्र	राहु
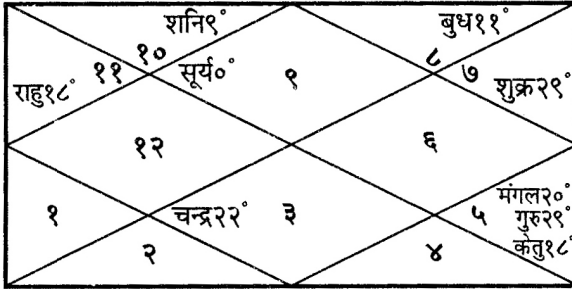
सूर्य	विंशोत्तरी शुक्र	सं०	योगिनी मं०
से : ०६/०३/२००९	से : ०६/०३/१९८९	से : ११/०८/१९९५	से : ११/०८/२००३
तक : ०७/०३/२०१५	तक : ०६/०३/२००९	तक : ११/०८/२००३	तक :१०/०८/२००४
सूर्य २४/०६/२००९	शुक्र ०६/०७/१९९२	सं० २१/०५/१९९७	मं० २१/०८/२००३
चन्द्र २३/१२/२००९	सूर्य ०६/०७/१९९३	मं० १०/०८/१९९७	पिं० १०/०९/२००३
मंगल ३०/०४/२०१०	चन्द्र ०७/०३/१९९५	पिं० २०/०१/१९९८	धा० ११/१०/२००३
राहु २५/०३/२०११	मंगल ०६/०५/१९९६	धा० २०/०९/१९९८	भ्रा० २०/११/२००३
गुरू ११/०१/२०१२	राहु ०७/०५/१९९९	भ्रा० ११/०८/१९९९	भ० १०/०१/२००४
शनि २३/१२/२०१२	गुरू ०५/०१/२००२	भ० २०/०९/२०००	उ० ११/०३/२००४
बुध ३०/१०/२०१३	शनि ०६/०३/२००५	उ० २०/०१/२००२	सि० २१/०५/२००४
केतु ०६/०३/२०१४	बुध ०५/०१/२००८	सि० ११/०८/२००३	सं० १०/०८/२००४
शुक्र ०७/०३/२०१५	केतु ०६/०३/२००९		

RAMJETHMALANI

जन्म तिथि १४/०९/१९२३ जन्म समय ०२:३०:०० स्थान Hyderabad
अक्षांश १०:४६: ० उत्तर रेखांश ७८:४२: ० पूर्व मध्य रेखांश ८२:३०: ० पूर्व
अयनांश २२:४७:२३

ग्रह	वक्री	अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न			२:५६:२२	कर्क	पुनर्वसु	४	गुरू	राहु
सूर्य			२७:१४:१८	सिंह	उ०फाल्गुनि	१	सूर्य	सूर्य
चन्द्र			८:३४:००	तुला	स्वाति	१	राहु	राहु
मंगल		अ	१५:२२:२९	सिंह	पू०फाल्गुनि	१	शुक्र	शुक्र
बुध			२०:४२:०२	कन्या	हस्त	४	चन्द्र	शुक्र
गुरू			२२:३२:५९	तुला	विशाखा	१	गुरू	शनि
शुक्र		पू	२८:०९:४१	सिंह	उ०फाल्गुनि	१	सूर्य	चन्द्र
शनि			२६:१६:५६	कन्या	चित्रा	१	मंगल	गुरू
राहु	-व	अ	१८:४६:४१	सिंह	पू०फाल्गुनि	२	शुक्र	राहु
केतु	-व		१८:४६:४१	कुम्भ	शतभिषा	४	राहु	चन्द्र

लग्न कुंडली

शुक्र२८° सूर्य२७° मंगल१५°
५ राहु१९°
३
बुध२१°
शनि२६° ६
४
२
चन्द्र९° ७ गुरु२३°
१
८
१०
१२
९
११
केतु१९°
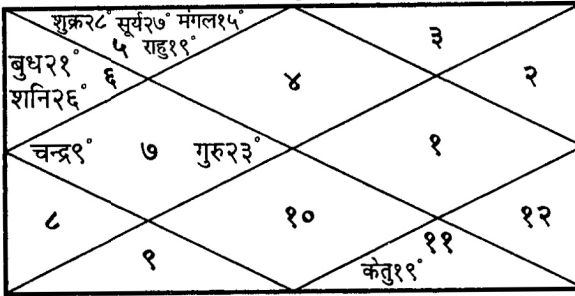
सूर्य विंशोत्तरी	शुक्र	धा० योगिनी	भ्रा०
से : १९/०२/२०१८	से : १९/०२/१९९८	से : ०१/०६/१९९७	से : ०१/०६/२०००
तक : १९/०२/२०२४	तक : १९/०२/२०१८	तक : ०१/०६/२०००	तक : ०१/०६/२००४
सूर्य ०९/०६/२०१८	शुक्र २०/०६/२००१	धा० ३१/०८/१९९७	भ्रा० १०/११/२०००
चन्द्र ०८/१२/२०१८	सूर्य २१/०६/२००२	भ्रा० ३१/१२/१९९७	भ० ०१/०६/२००१
मंगल १५/०४/२०१९	चन्द्र १९/०२/२००४	भ० ०१/०६/१९९८	उ० ३१/०१/२००२
राहु ०९/०३/२०२०	मंगल २१/०४/२००५	उ० ०१/१२/१९९८	सि० ११/११/२००२
गुरू २६/१२/२०२०	राहु २०/०४/२००८	सि० ०२/०७/१९९९	सं० ०१/१०/२००३
शनि ०८/१२/२०२१	गुरू २०/१२/२०१०	सं० ०१/०३/२०००	मं० ११/११/२००३
बुध १४/१०/२०२२	शनि १९/०२/२०१४	मं० ०१/०४/२०००	पिं० ३१/०१/२००४
केतु १९/०२/२०२३	बुध २०/१२/२०१६	पिं ०१/०६/२०००	धा० ०१/०६/२००४
शुक्र १९/०२/२०२४	केतु १९/०२/२०१८		

INDIRA GANDHI

जन्म तिथि १९/११/१९१७ जन्म समय २३:१५:०० स्थान Allahabad
अक्षांश २५:५७: ० उत्तर रेखांश ८१:५०: ० पूर्व मध्य रेखांश ८२:३०: ० पूर्व
अयनांश २२:४२:५२

ग्रह	वक्री	अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न			२८:२२:२२	कर्क	आश्लेषा	४	बुध	शनि
सूर्य			४:०७:४०	वृश्चि	अनुराधा	१	शनि	शनि
चन्द्र			५:३७:१३	मकर	उत्तराषाढ़ा	३	सूर्य	बुध
मंगल			१६:२२:३४	सिंह	पू०फाल्गुनि	१	शुक्र	चन्द्र
बुध		अ	१३:१३:५९	वृश्चि	अनुराधा	३	शनि	राहु
गुरू	-व		१५:००:०६	वृष	रोहिणी	२	चन्द्र	गुरू
शुक्र			२१:००:२९	धनु	पूर्वाषाढ़ा	३	शुक्र	गुरू
शनि			२१:४७:१४	कर्क	आश्लेषा	२	बुध	सूर्य
राहु			९:१८:३८	धनु	मूल	३	केतु	गुरू
केतु			९:१८:३८	मिथु	आर्द्रा	१	राहु	गुरू

लग्न कुंडली

केतु	विंशोत्तरी बुध	भ्रा०	योगिनी भ०
से : ०९/११/२००६	से : ०९/११/१९८९	से : ०७/०७/१९९८	से : ०७/०७/२००२
तक : ०९/११/२०१३	तक : ०९/११/२००६	तक : ०७/०७/२००२	तक : ०७/०७/२००७
केतु ०७/०४/२००७	बुध ०६/०४/१९९२	भ्रा० १६/१२/१९९८	भ० १७/०३/२००३
शुक्र ०६/०६/२००८	केतु ०४/०४/१९९३	भ० ०७/०७/१९९९	उ० १६/०१/२००४
सूर्य १२/१०/२००८	शुक्र ०३/०२/१९९६	उ० ०७/०३/२०००	सि० ०५/०१/२००५
चन्द्र १३/०५/२००९	सूर्य ०९/१२/१९९६	सि० १६/१२/२०००	सं० १५/०२/२००६
मंगल ०९/१०/२००९	चन्द्र १०/०५/१९९८	सं० ०५/११/२००१	मं० ०६/०४/२००६
राहु २८/१०/२०१०	मंगल ०८/०५/१९९९	मं० १६/१२/२००१	पिं०१७/०७/२००६
गुरू ०४/१०/२०११	राहु २४/११/२००१	पिं० ०७/०३/२००२	धा० १६/१२/२००६
शनि १२/११/२०१२	गुरू ०१/०३/२००४	धा० ०७/०७/२००२	भ्रा० ०७/०७/२००७
बुध ०९/११/२०१३	शनि ०९/११/२००६		

SHATRUGHAN SINHA

जन्म तिथि ०९/१२/१९४५ जन्म समय १७:२०:०० स्थान Patna

अक्षांश २५:३७: ० उत्तर रेखांश ८५:१२: ० पूर्व मध्य रेखांश ८२:३०: ० पूर्व

अयनांश २३:०५:४९

ग्रह	वक्री	अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न			१५:१०:११	वृष	रोहिणी	२	चन्द्र	गुरू
सूर्य			२३:५५:२१	वृश्चि	ज्येष्ठा	३	बुध	मंगल
चन्द्र			१७:०५:४४	मकर	श्रवण	३	चन्द्र	शनि
मंगल	-व		९:५९:३८	कर्क	पुष्य	२	शनि	शुक्र
बुध	-व	अ	१९:०७:३०	वृश्चि	ज्येष्ठा	१	बुध	केतु
गुरू			२८:३१:०८	कन्या	चित्रा	२	मंगल	शनि
शुक्र			१०:५७:२२	वृश्चि	अनुराधा	३	शनि	सूर्य
शनि	-व		०:४९:४२	कर्क	पुनर्वसु	४	गुरू	मंगल
राहु			६:५४:५६	मिथु	आर्द्रा	१	राहु	राहु
केतु		अ	६:५४:५६	धनु	मूल	३	केतु	राहु

लग्न कुंडली
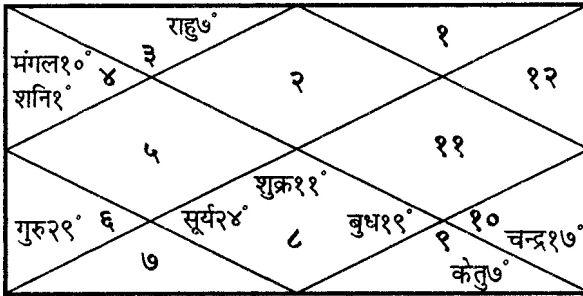
बुध	विंशोत्तरी शनि	उ०	योगिनी सि०
से : १४/०८/२०१०	से : १४/०८/१९९१	से : २९/०५/१९९६	से : २९/०५/२००२
तक : १४/०८/२०२७	तक : १४/०८/२०१०	तक : २९/०५/२००२	तक : २९/०५/२००९
बुध १०/०१/२०१३	शनि १७/०८/१९९४	उ० २९/०५/१९९७	सि० ०८/१०/२००३
केतु ०७/०१/२०१४	बुध २६/०४/१९९७	सि० २९/०७/१९९८	सं०२८/०४/२००५
शुक्र ०७/११/२०१६	केतु ०५/०६/१९९८	सं० २८/११/१९९९	मं० ०८/०७/२००५
सूर्य १३/०९/२०१७	शुक्र ०५/०८/२००१	मं० २८/०१/२०००	पिं० २७/११/२००५
चन्द्र १३/०२/२०१९	सूर्य १८/०७/२००२	पिं० २९/०५/२०००	धा० २९/०६/२००६
मंगल १०/०२/२०२०	चन्द्र १६/०२/२००४	धा० २७/११/२०००	भ्रा० ०९/०४/२००७
राहु २९/०८/२०२२	मंगल २७/०३/२००५	भ्रा० २९/०७/२००१	भ० २९/०३/२००८
गुरू ०४/१२/२०२४	राहु ०१/०२/२००८	भ० २९/०५/२००२	उ० २९/०५/२००९
शनि १४/०८/२०२७	गुरू १४/०८/२०१०		

ATAL BIHARI

जन्म तिथि २५/१२/१९२४ जन्म समय ०३:००:०० स्थान Gwalior
अक्षांश २६:१२: ० उत्तर रेखांश ७८: ९: ० पूर्व मध्य रेखांश ८२:३०: ० पूर्व
अयनांश २२:४८:२१

ग्रह	वक्री	अस्त	अंश	राशि	नक्षत्र	पद	स्वामी	अ०
लग्न			१६:०४:०८	तुला	स्वाति	३	राहु	शुक्र
सूर्य			१०:०१:४१	धनु	मूल	४	केतु	शनि
चन्द्र			२२:०१:३९	वृश्चिक	ज्येष्ठा	२	बुध	सूर्य
मंगल			१०:२७:५५	मीन	उ०भाद्रपद	३	शनि	सूर्य
बुध	-व	अ	१५:५०:१५	धनु	पूर्वाषाढ़ा	१	शुक्र	सूर्य
गुरू		पू	८:४२:५२	धनु	मूल	३	केतु	गुरू
शुक्र			१०:५९:५७	वृश्चिक	अनुराधा	३	शनि	सूर्य
शनि			१८:३८:५४	तुला	स्वाति	४	राहु	चन्द्र
राहु	-व		२१:३६:५१	कर्क	आश्लेषा	२	बुध	सूर्य
केतु	-व		२१:३६:५१	मकर	श्रवण	४	चन्द्र	शुक्र

लग्न कुंडली
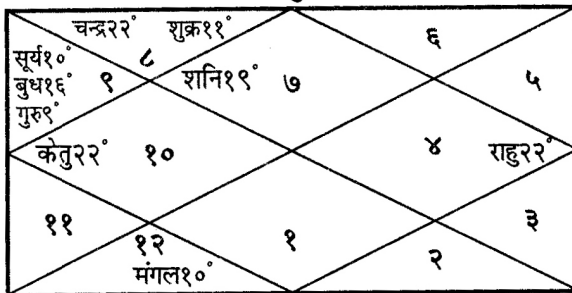
गुरू	विंशोत्तरी राहु	उ०	योगिनी सि०
से : २३/०२/२००३	से : २३/०२/१९८५	से : २२/१२/१९९९	से : २१/१२/२००५
तक : २३/०२/२०१९	तक : २३/०२/२००३	तक : २१/१२/२००५	तक : २१/१२/२०१२
गुरू १३/०४/२००५	राहु ०६/११/१९८७	उ० २१/१२/२०००	सि० ०२/०५/२००७
शनि २५/१०/२००७	गुरू ०१/०४/१९९०	सि० २०/०२/२००२	सं० २०/११/२००८
बुध ३०/०१/२०१०	शनि ०५/०२/१९९३	सं० २२/०६/२००३	मं० ३०/०१/२००९
केतु ०६/०१/२०११	बुध २५/०८/१९९५	मं० २२/०८/२००३	पिं० २१/०६/२००९
शुक्र ०६/०९/२०१३	केतु ११/०९/१९९६	पिं० २२/१२/२००३	धा० २१/०१/२०१०
सूर्य २५/०६/२०१४	शुक्र १२/०९/१९९९	धा० २१/०६/२००४	भ्रा० ०१/११/२०१०
चन्द्र २५/१०/२०१५	सूर्य ०६/०८/२०००	भ्रा० २०/०२/२००५	भ० २२/१०/२०११
मंगल ३०/०९/२०१६	चन्द्र ०५/०२/२००२	भ० २१/१२/२००५	उ० २१/१२/२०१२
राहु २३/०२/२०१९	मंगल २३/०२/२००३		